नाचे मन मोरा

सामाजिक रोचक उपन्यास

मूल लेखक
श्री दौलत भट्ट
अनुवादक
श्री शिवचरण मंत्री

अनुराग प्रकाशन, अजमेर

प्रकाशक :
वी. एल. मिश्रा
अनुराग प्रकाशन
ब्रह्मपुरी,
अजमेर।

•

मूल्य :
पन्द्रह रुपये मात्र

•

मुद्रक :
प्रतापसिंह लूणिया
जॉब प्रिंटिंग प्रेस,
ब्रह्मपुरी,
अजमेर।

भूमिका

गुजराती साहित्य के प्रमुख उपन्यासकार श्री दौलत भट्ट के लोकप्रिय उपन्यास 'नाचे मन नां मोर' का हिन्दी रूपान्तर 'नाचे मन मोरा' पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे अतीव हर्ष हो रहा है।

गत वर्षों से मैं बराबर किसी नई भाषा को सीखने के लिये इच्छुक था। इस हेतु मैंने अपने भूतपूर्व प्रधानाध्यापक श्री इकबाल बहादुर वर्मा से प्रेरणा पाकर गुजराती भाषा सीखना प्रारम्भ किया तथा प्रस्तुत उपन्यास आपके सामने प्रस्तुत है।

उपन्यासकार श्री दौलत भट्ट के प्रति मैं अपना हार्दिक आभार प्रदर्शित करता हूँ कि जिन्होंने मुझ जैसे नव अनुवादक को बिना किसी प्रकार की हिचकिचाहट के अपने उपन्यास 'नाचे मन ना मोर' का हिन्दी रूपान्तर करने की अनुमति प्रदान की। साथ ही अनुराग प्रकाशन का भी मैं आभारी हूँ कि जिन्होंने मुझमे नव लेखक का उत्साह बढाने के लिए पुस्तक प्रकाशित करवाने का प्रबंध किया। उपन्यास का अनुवाद करते समय भाषा-सबंधी कठिनाइयों को दूर करने मे सहायता देने वाली श्रीमती सरला राठी का मैं हार्दिक आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर पुस्तक के अनुवाद करने म अपना अमूल्य समय ही नही दिया अपितु गुजराती तथा अन्य भाषाएँ सीखने के लिए भी मुझे प्रेरित किया है। अपने परम मित्र श्री महेशचन्द्र वर्मा के प्रति आभार प्रदर्शित करने को मेरे पास कोई शब्द नही जिन्होने पुस्तक प्रकाशन के सम्बन्ध मे मेरी सबसे अधिक सहायता की। अन्त में मैं उन सभी मित्रो एव स्वजनो का आभारी हूँ जिन्होने प्रत्यक्ष या परोक्षरूप में अनुवाद या प्रकाशन में मेरी सहायता की है।

मूल पुस्तक सी रोचकता व सरलता प्रस्तुत अनुवाद में कहाँ तक आ सकी है उसका मूल्यांकन तो पाठक ही कर सकते हैं।

—शिवचरण मंत्री

भट

पाँचाल प्रदेश मे अँधेरा छा गया। वर्षा के वियोगी बादल परस्पर आलिंगन कर रहे हैं। आकाश मे भैंस की पीठ जैसे काले बादल मँडरा रहे हैं।

ऐसे समय मे ताल्लुके से तेजपुर जाने के लिए एक नौजवान बादली घोड़ी पर सवार हुआ। युवक की आँखो मे खुमारी तैर रही है। यौवन खिल रहा है। पच्चीस वर्ष के उस युवक के दिल मे किसी प्रकार का कोई भय नही। ऐसी रात्रि तो क्या इससे भी भयंकर राते इस युवक ने अपने जीवन मे देखी है। वास्तव मे जितानी पड़ी हैं।

युवक भलीभाँति समझता था कि पितामह द्वारा प्रदत्त इस विस्तृत ऐश्वर्य की रक्षा करनी होगी, इस ऐश्वर्य को सदा अपने चरणो मे लोटते देखने के लिए डरने से काम नही चल सकता है और इस बात का निश्चय करने के पश्चात् उसने कभी भी समय व परिस्थिति का विचार नही किया। उसका विश्वास था कि समय व परिस्थिति मानव स्वयं बनाता है। कदाचित यह दृष्टिकोण उसके जीवन के लिए अनुकूल भी था।

ताल्लुके से तेजपुर दस कोस दूर था। इस दस कोस के रास्ते मे न तो कोई गाँव ही था और न कोई टीला ही था। रास्ते की भयङ्कर घाटी को पार

करने में दिन में ही मानव का कलेजा कांपे, ऐसी भयंकरता इस घाटी में व्याप्त रहती थी।

यदि इस घाटी की जबान खुले तो, इसकी आँखों के सामने हुई भयंकर लड़ाइयों की दारुण कथाएँ व्याकुल हृदय से कहे विना नहीं रह सकती है। तरशींगडा का इतिहास भयंकरता से भरपूर है। इस घाटी में कई योद्धाओं का पानी उतर गया है। इस घाटी में कई व्यक्तियों का घमंड चूरचूर हो गया है, तथा कई निर्दोष मानवों का रक्त भी यह घाटी गटगट पी गई है।

पिशाचनियों का सा आवास बन कर सदा ही नृत्य करने वाली यह घाटी मनुष्यों को अपने सारे ही रास्ते में भयभीत बनाती रहती। किन्तु वज्र-हृदय के अडिग व्यक्ति इस पिशाचनी के खुले वक्ष को रौंदते हुए अवश्य आगे बढ़ जाते थे। ऐसे युवकों का कभी बाल भी बाँका नहीं होता, किन्तु जब कभी वैमनस्यता का प्रतिशोध लेने को इस घाटी का आश्रय लेते तो तब कदाचित् ऐसे युवकों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता था।

इस घाटी में दोपहर दिन में बरातें लूट ली जातीं तथा एक दो यात्रियों को तो डरा-धमकाकर जो भी उनके पास होता ले लिया जाता था।

पूरे एक कोस में फैली इस घाटी की चौड़ाई इतनी थी कि एक साथ दो ऊँट इसकी गहराई में एक साथ चल सकें। इस घाटी में दिन भी अँधेरा रहता था। घाटी के ठीक मध्य में एक खोखला स्थान था। इस खोखलेपन में एक साथ पाँच आदमी सालेमान पर्वत तक जा सकते थे और वहाँ से चले हुए मनुष्य यहाँ आ जाते थे। घाटी को यह खोखलापन और भयंकर बना देता था और इससे घाटी भयंकर लगती थी। वर्षा में इस घाटी में गाड़ियों का आवागमन भी बन्द हो जाता था। इस मौसम में केवल घोड़े ही आ-जा सकते थे। घोड़े के सिवाय कोई घाटी पार नहीं कर सकता था। घुटने तक कीचड़ में एक कोस भूमि पार करना कोई हँसीखेल नहीं था। इसीलिए तेजपुर में पाँचाली घोड़ी को पालना अति आवश्यक था।

असाढ़ की गहन वाली रात्रि चारों ओर फैली हुई थी। चारों ओर सूनसान था। किसी प्रकार की आवाज नहीं सुनाई देती थी। आकाश में सतर्क प्रहरी-से बादल चारों ओर छाए हुए थे जिसके कारण एक भी तारा अपना प्रकाश पृथ्वी तक फैला सकने में असमर्थ था।

ताल्लुके से वेगवान् युवक अपनी मस्ती में झूमता हुआ घाटी में घुसा। युवक के बायें कंधे पर भगवान् शिव के ऊपर सर्पों की माला के समान दो-

नाली बन्दूक लटक रही थी। बन्द गले के कोट के सब बटन बन्द थे। ससुराल से अभी आई बम्बई की धोती युवक की कमर मे बँधी हुई थी। दाहिने हाथ मे मोजा पहने हुए था। दो-नाली की दोनो नालिया मे कारतूस भरे हुए थे। नवयुवक इधर-उधर देखने की अपेक्षा सीधे रास्त को ही देख रहा था।

आधी दूरी तय करके युवक घाटी मे घुसा। पाँचाली बावली रास्ते को भली प्रकार से जानती थी। उसके कदम इस घाटी मे कभी नही डगमगाते थे।

भयकरता का भय जैसे मानव का भयभीत करता है उसी प्रकार पशु भी भयकरता से काँपते हैं। फिर भी बावली एक अच्छे नस्ल की घोडी थी। वह कभी थकना नही जानती थी। धधकती आग म कूद पडे ऐसे दृढ हृदय की बावली को फिर ऐसे सुन्दर सवार का साथ मिल गया। मानो भगवान् ने इसी कारण ही इसको बनाया हो! और इसी कारण से इस युवक की मस्ती म किसी प्रकार की कमी नही आई थी।

घाटी मे रौंदने से हुए आठे-से धूल म टीवा म बावली चौकडी भरती हुई मार्ग तय करने लगी। घाटी के बीचाबीच घुसत ही नीरव शाति को भेदती हुई दूसरे घोडे के टापा की आवाज सुनाई दी। बावली और युवक के कान खडे हो गए। बावली न नथुने फुलाकर काना को सामने की ओर लगाया, सहज म ही सिर उठाने पर उसने देखा कि इस भयकर अधकार म कोई घुडसवार आगे बढ रहा है। घुडसवार का देखते ही युवक न ललकारा

'कौन है?'

'यह तो मैं हूँ 'और यह शब्द इस ऊँचे कगार म शात हो कि इससे पूर्व दूसरा युवक बोल उठा

'ओह, हमीर बोरिचा!'

'हाँ'। उत्तर म हमीर मात्र एक ही शब्द बोला। किन्तु इस शब्द म भारी रोष था। युवक इस क्रोध को समझ गया। उसने बायें कधे पर लटकती हुई दो-नाली बन्दूक को धीमे से हाथ म सम्भाल लिया। चालाक हमीर की दृष्टि से यह परिवर्तन छिप नही सका।

चारो ओर घोर अधकार था। युवक बिना किसी प्रकार के अधियार की भयकरता से डरता हुआ हमीर के सामने खडा था। हमीर के मुँह पर आँख ठहराने का प्रयत्न करते हुए युवक न पूछा

'दूरी से कैसे?'

'मन म आया कि चला, चलकर एक चक्कर लगा लूँ।'

करने में दिन में ही मानव का कलेजा काँपे, ऐसी भयंकरता इस घाटी में व्याप्त रहती थी।

यदि इस घाटी की जबान खुले तो, इसकी आँखों के सामने हुई भयंकर लड़ाइयों की दारुण कथाएँ व्याकुल हृदय से कहे बिना नहीं रह सकती है। नरशींगढ़ा का इतिहास भयंकरता से भरपूर है। इस घाटी में कई योद्धाओं का पानी उतर गया है। इस घाटी में कई व्यक्तियों का घमंड चूर-चूर हो गया है, तथा कई निर्दोष मानवों का रक्त भी यह घाटी गटगट पी गई है।

पिशाचनियों का सा आवास बन कर सदा ही नृत्य करने वाली यह घाटी मनुष्यों को अपने सारे ही रास्ते में भयभीत बनाती रहती। किन्तु वज्र-हृदय के अडिग व्यक्ति इस पिशाचनी के खुले वक्ष को रौंदते हुए अवश्य आगे बढ़ जाते थे। ऐसे युवकों का कभी बाल भी बाँका नहीं होता, किन्तु जब कभी वैमनस्यता का प्रतिशोध लेने को इस घाटी का आश्रय लेते तो तब कदाचित् ऐसे युवकों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता था।

इस घाटी में दोपहर दिन में बरातें लूट ली जातीं तथा एक दो यात्रियों को तो डरा-धमकाकर जो भी उनके पास होता ले लिया जाता था।

पूरे एक कोस में फैली इस घाटी की चौड़ाई इतनी थी कि एक साथ दो ऊँट इसकी गहराई में एक साथ चल सकें। इस घाटी में दिन भी अँधेरा रहता था। घाटी के ठीक मध्य में एक खोखला स्थान था। इस खोखलेपन में एक साथ पाँच आदमी नाकेमान पर्यंत तक जा सकते थे और वहाँ से चले हुए मनुष्य यहाँ आ जाते थे। घाटी को यह खोखलापन और भयंकर बना देता था और इससे घाटी भयंकर लगती थी। वर्षा में इस घाटी में गाड़ियों का आवागमन भी बन्द हो जाता था। इस मौसम में केवल घोड़े ही आ-जा सकते थे। घोड़े के सिवाय कोई घाटी पार नहीं कर सकता था। घुटने तक कीचड़ मे एक कोस भूमि पार करना कोई हँसी-खेल नहीं था। इसीलिए तेजपुर में पाँचाली घोड़ी को पालना अति आवश्यक था।

भादों की गहन काली रात्रि चारों ओर फैली हुई थी। चारों ओर सुनसान था। किसी प्रकार की आवाज नहीं सुनाई देती थी। आकाश में सतर्क प्रहरी से बादल चारों ओर छाए हुए थे जिनके कारण एक भी तारा अपना प्रकाश पृथ्वी पर फैला सकने में असमर्थ था।

तातपुर से वेगवान् युवक अपनी मस्ती में झूमता हुआ घाटी में घुसा। युवक के साथ कंधे पर लटकती सिर के ऊपर नागों की माला के समान दो-

नाली बन्दूक लटक रही थी। बन्द गले के कोट के सब बटन बन्द थे। ससुराल से अभी आई बम्बई की धोती युवक की कमर में बँधी हुई थी। दाहिने हाथ में मोजा पहने हुए था। दो-नाली की दोनों नालियों में कारतूस भरे हुए थे। नवयुवक इधर-उधर देखने की अपेक्षा सीधे रास्ते को ही देख रहा था।

आधी दूरी तय करके युवक घाटी में घुसा। पाँचाली बावली रास्ते को भली प्रकार से जानती थी। उसके कदम इस घाटी में कभी नहीं डगमगाते थे।

भयंकरता का भय जैसे मानव को भयभीत करता है, उसी प्रकार पशु भी भयंकरता से काँपते हैं। फिर भी बावली एक अच्छे नस्ल की घोड़ी थी। वह कभी थकना नहीं जानती थी। धधकती आग में कूद पड़े ऐसे दृढ़ हृदय की बावली को फिर ऐसे सुन्दर सवार का साथ मिल गया। मानो भगवान् ने इसी कारण ही इसको बनाया हो! और इसी कारण से इस युवक की मस्ती में किसी प्रकार की कमी नहीं आई थी।

घाटी में रौंदने से हुए आटे-से धूल के टीबों में बावली चौकड़ी भरती हुई मार्ग तय करने लगी। घाटी के बीचोंबीच घुसते ही नीरव शांति को भेदती हुई दूसरे घोड़े के टापों की आवाज सुनाई दी। बावली और युवक के कान खड़े हो गए। बावली ने नथुने फुलाकर कानों को सामने की ओर लगाया, सहज में ही सिर उठाने पर उसने देखा कि इस भयंकर अंधकार में कोई घुड़सवार आगे बढ़ रहा है। घुड़सवार को देखते ही युवक ने ललकारा :

'कौन है?'

'यह तो मैं हूँ'' · 'और यह शब्द इस ऊँचे कगार में शांत हो कि इससे पूर्व दूसरा युवक बोल उठा :

'ओह, हमीर बोरिचा!'

'हाँ'। उत्तर में हमीर मात्र एक ही शब्द बोला। किन्तु इस शब्द में भारी रोष था। युवक इस क्रोध को समझ गया। उसने बायें कंधे पर लटकती हुई दो-नाली बन्दूक को धीमे से हाथ में सम्भाल लिया। चालाक हमीर की दृष्टि से यह परिवर्तन छिप नहीं सका।

चारों ओर घोर अंधकार था। युवक बिना किसी प्रकार के अँधियारे की भयंकरता से डरता हुआ हमीर के सामने खड़ा था। हमीर के मुँह पर आँख ठहराने का प्रयत्न करते हुए युवक ने पूछा :

'देरी से कैसे?'

'मन में आया कि चलो, चलकर एक चक्कर लगा लूँ।'

'समय-असमय तो देखना चाहिए ?'

'अरे सेठ ! आप क्या कहते हैं ?' हमीर हँस कर बोला ।

'मैंने ठीक ही कहा है ।'

'सेठ ऐसा ही है ? हमें डकैत जाति का कहा जाता है । हमारे लिए क्या दिन और क्या रात ! दोनों एक से ही हैं—'ऐसा कहते हुए उसका स्वर पैना हो गया ।

युवक हमीर बोरिचा की बात को तुरन्त समझ गया । उसने भी तेजी लाते हुए कहा :

'बोरिचा व्यर्थ की डींगें मत हाँक । लोहे के लोहे से टकराने से आग की चिनगारी ही निकलती है ।'

घोर अँधेरी रात बड़ी तेजी से बीतती जा रही थी । इस भयंकर रात्रि में बोरिचा और युवक के बीच वाद-विवाद बराबर बढ़ता जा रहा था ।

युवक के तीखे वचनों से व्याकुल होकर पाड़े की काँध-सी गर्दनवाला हमीर बोरिचा बोला :

'चिनगारियों के चमकने से सूर्य-ग्रहण थोड़े ही होने वाला है ! हमारे लिए यह कोई नई बात नहीं है ! यह तो पुरखों से चला आ रहा है ।'

युवक बात को उड़ाकर समाप्त करता हो, ऐसे बोला :

'बोरिचा, मैं यह बात भलीप्रकार से जानता हूँ ! मैं किसी अन्य स्थान का नहीं रहने वाला हूँ । मैं इसी स्थान पर बड़ा हुआ हूँ और मैंने भी इसी भूमि का दूध पिया है । समय आने पर मैंने अच्छे-अच्छे आदमियों को परखा है, मेरे स्थान से तुम से भी यह बात छिपी नहीं होगी ।'

'सेठ जी, आदमी आदमी में अन्तर होता है ।' हमीर बोला । उसकी बोली में अग्नि झलकती थी ।

मीठी बातों से काम नहीं बनने वाला था, अतः युवक ने भी तेज मिजाज से कहा :

'हमीर बोरिचा, तुम रास्ता भूल रहे हो !'

'सेठ, मैं यदि रास्ता भूल रहा हूँ तो तुम तो सही रास्ते पर हो ?'

'हाँ, मैं ठीक कह रहा हूँ ।'

'क्या ठीक कहते हो ?' हमीर ने पाँवों को पछाड़ते हुए घोड़ी की गर्दन पर अपने विशाल पंजे की एक थपकी देते हुए कहा ।

'मुझे इन्हीं हाथों से रुपया गिनना भी आता है तथा खून की बूँदें भी....' युवक बोला ।

और दोनों की आँखें एक दूसरे से टकरा गईं ।

'तो हम दोनों के लेन-देन का निपटारा हो जाए ।' हमीर बोला ।

'पर इस प्रकार सम्भव नहीं ।'

'तब क्या निश्चय किया है ?'

'इसमें क्या निश्चय करना है ? इज्जत के लिए अँधेरी रात्रि में रुपए गिने है और यह रुपया ब्याज सहित इन्ही हाथों से वापिस लेना है।'

'.....और यदि रुपया नही मिले तब ?'

'मुझे इसके लिए शांति है।'

हमीर ने पूछा : 'यह कैसे ?'

'घर में जहाँ तक मेरी सन्दूक मे इसका दस्तावेज है तब तक दुनियाँ मेरे सामने बकवास करती रहे।'

'ऐ......सा !' हमीर गर्व से बोला

'हाँ ऐसा ही। सात बार ऐसे ही। समझे बोरिचा ? यदि रुपया इसी प्रकार छोड दिया जाए तो पितामह द्वारा प्राप्त यह विरासत कभी की समाप्त हो जाती।' युवक तनिक रुक कर बोला।

'बोरिचा, उस दिन की रात याद करो ! खुली आँखो से देखो ! तुम्हे मेरी तिजोरी को धन्यवाद देना चाहिए कि तुम्हें समय पर रुपया मिला। रुपया लेने के लिए दिया है, धर्मादे मे नही।'

हमीर बोरिचा के सामने दो वर्ष पहले का दृश्य नाच उठा।

***

कैसा कठिन समय था ! उसने अपनी नवोढा पत्नी को मायके मे बुलवाने के लिए अपने छोटे भाई को भेजा, किन्तु पत्नी के पिता ने दो टूक उत्तर दे दिया कि रस्म के पाँच सौ रुपया नकद ले आयो, फिर घर मे पाँव रखना।

भाई को खाली हाथ लौटते देखकर हमीर आगबबूला हो गया। किन्तु क्या किया जाय ? रूपवती पत्नी के स्थान पर यदि कोई और होना तो वह उसे सदा के लिए सुला देता !

हमीर उस दिन बहुत व्याकुल हुआ। अति भयकर गर्मी के मौसम मे कौन पाँच सौ रुपया दे और वह भी हमीर से गर्वीले व्यक्ति को !

मुट्ठीभर रुपयों के कारण मानव-सा मानव हाथ से चला जाए इससे हमीर के मन में आग जल उठी। उसने इधर-उधर नजर दौडाई किन्तु कोई नजर नहीं आया। अन्ततः उसने हिम्मत की, सनातनसेठ के यहाँ जाने की।

आधी रात बीत गई है। सारे गाँव में सुनसान है। किसी प्रकार की आहट नहीं। सारा गाँव मानो गदहे बेचकर सो रहा हो।

ऐसे समय में उसने झेवरसेठ का कुंदा खटखटाया।

आवाज़ के साथ ही गिरि कन्दरा में सोते शेर की भाँति गहरी नींद में सोया हुआ झेवरसेठ का पौत्र सनातन जाग पड़ा और उसने घर का दरवाजा खोला। हमीर बोरिचा को देखते ही उसने पूछा, 'इस समय कैसे ?'

थोड़ी देर हमीर नहीं बोल सका। सनातन ने सोचा कि हमीर कदाचित् परेशानी में है। सनातन ने उसे घर में लाकर शांति से बैठाया और फिर कहा :

'क्या कहना है ? भाई जल्दी से कह दे।'

'आप से एक काम पड़ा है।'

'क्या काम पड़ा है, भाई ?'

'पाँच सौ रुपया चाहिए ?'

'इसी समय ?'

'हाँ !'

'ऐसी क्या जल्दी है ?'

'जल्दी तो कुछ नहीं। अपनी घरवाली को लाना है।'

'तब दो दिन देर से ही सही। इसमें कौनसी आफ़त आ रही है।'

'नहीं सेठ ! ऐसी बात नहीं। अपने भाई को भेजा तो था किन्तु....'

अधूरी बात सनातन मानो समझ गया हो वैसे ही बोला : 'ठीक है मैं समझ गया।'

इतना कहकर उसने तिजोरी की चाबियाँ निकालीं और तिजोरी खोल कर उसमें से रुपयों की थैली निकालकर दे दी। और साथ-ही-साथ इसके लिए दस्तावेज लिखवा लिया और अँगूठे के निशान ले लिए। इस दस्तावेज में उसने हमीर की झोंफली बाड़ी (बगीचा) गिरवी रख ली। दो साल से एक दिन भी बीते कि झोंफलीवाला सेठ का हो जाए।

तत्पश्चात् तो हाँ-ना-हाँ-ना करते-करते दो वर्ष के बाद भी दो महीने ऐसे-वैसे निकल गए। फिर भी हमीर की इच्छा रुपया लौटाने की नहीं हुई। इसलिए हमीर को सनातन ने आठ दिन का और समय दिया और कहा : 'आखिर यदि आठ दिन में सूद सहित रुपया नहीं लौटाएगा तो झोंफली का कब्जा ले लूँगा।'

उस दिन के बाद सनातन हमीर की आँखों में खटकने लगा। उसने मन में सोचा था कि किसी समय नरसीदास की वाटी में यदि भेंट हो जाये तो

पाताडिया वे द्वारे छुडवा दूँ। किन्तु सनातन की मस्ती का आज बोरिचा को ख्याल आया।

हमीर के सोचने के अनुसार यह आसान काम नहीं था। अत उसने बात को बदलते हुए कहा, 'ठीक, तब सेठजी कोई फँसने का उपाय विचारना।'

सनातन ने कहा 'कोई दूसरा हल इसका सम्भव नहीं। हल यही हो सकता है कि ब्याज समेत रुपया गिन दिया जाय। बाकी तो सब व्यर्थ की बातें हैं, व्यर्थ की!' कहकर उसने बावनी को ऐड लगाई और मानो बावली के पख निकल गए।

और हमीर बोरिचा सनातनसेठ को जाते हुए देखता रहा। उस समय रात्रि प्रभात को पकड़ने को अधीर हो रही थी।

●

सनातन सेठ

सनातनसेठ तेजपुर की शोभा थे। वैसे तो तेजपुर एक छोटा-सा गाँव था किन्तु सनातनसेठ ने इसे सारे परगने में प्रसिद्ध कर दिया था।

तेजपुर आसपास के सात गाँवों की मंडी थी, जिसका कारण सनातनसेठ ही थे। इन सातों गाँवो की जमीन सनातनसेठ की दुकान पर किसानों को लाने के लिए बाध्य करती तथा किसान लोग सनातनसेठ की दुकान का हिसाब करके सारा माल खरीदते थे। वैसे इस वैभव का प्रारम्भ करने वाले सनातन के पितामह भैरवसेठ थे। परन्तु भैरवसेठ से भी बढ़ कर इनके इस [illegible] ने [illegible] तक तेजपुर को विख्यात कर दिया था।

इनकी [illegible] सहज व बात करने का ढंग ऐसा था कि अति क्रोधी प्रकृति के आदमी को भी पानी-पानी कर दे तथा इसी कारण से ताल्लुके व प्रान्त भर में सनातनसेठ की धाक थी तथा सभी उनका सम्मान करते थे। उनकी बात को बहुत ही ध्यान से सुना जाता था।

इतने से ही उनका काम पूरा नहीं हो जाता था। तेजपुर के सातों ही [illegible] में कोई भी अधिकारी किसी राजकीय काम से बिना रोकटोक नहीं

जा सकता था। वह दो कोस का चक्कर लगा करके भी तेजपुर होकर जाता था। अधिकारी को काम के लिए सनातनसेठ को अभिप्राय-मन्तव्य बतलाना पडता और इसके बाद कामकाज आगे बढ़ता। फिर भी सेठ किसी भी किसान से किसी प्रकार का लोभ-लालच नही रखते थे तथा किसी भी काम मे उनकी स्वार्थपन की भावना व्यक्त नही होती थी। सनातनसेठ के चरित्र की यह सबसे बडी खूबी थी।

राज्य के अफसरो का पूरा-पूरा आदर-सत्कार किया जाता था। अट्टालिका की छत पर पलग लगाये जाते थे और बहते हुए घी की लपसी खिलाई जाती थी। अधिकारियो को जिस किसी भी वस्तु की आवश्यकता होती वह सनातनसेठ के यहाँ से प्राप्त होती थी।

बम्बई से आई कोई भी कीमती-से-कीमती वस्तु भी यदि किसी अधिकारी को पसन्द आ जाती तो सनातन उसे देने मे कभी नही हिचकिचाता था।

दैनिक उपयोग मे जो सामान बम्बई मे काम मे आता था वही सामान सौराष्ट्र के कोने मे बसे तेजपुर मे सनातनसेठ के यहाँ काम मे आता था। इसमे तनिक भी विलम्ब नही होता था। रेलगाडी मे तेजपुर के सदा ही एक दो पार्सल होते थे। इन पार्सलो मे सौराष्ट्र की चारो दिशाओ मे घूमने पर न मिलने वाली वस्तुएँ निकलती।

इस रियासत के मालिक झवेरसेठ को सनातन-सा उत्तराधिकारी मिलने से बडी शांति थी। वे मन ही-मन कहते थे कि मैंने जो कुछ अथाह परिश्रम से इकट्ठा किया है, इस इकट्ठे किए हुए का सदुपयोग करने को ऐसा अच्छा उत्तराधिकारी भगवान् ने दिया है। अब मन मे शांति है तथा इसी कारण से उन्होने भी धन्धे मे से धीरे-धीरे हाथ खीचना शुरू कर दिया था। कुछ ही दिनो मे उन्होने अपना सारा काम-काज सनातन के हाथो मे सौंप दिया। तदुपरान्त अपने हाथो से एकत्रित की हुई जमावट मे उनको स्वर्गीय आनन्द मिलता था। वे फूले नही समाते थे और जब कोई राज्य का अफसर सनातनसेठ को देखकर पूछता कि कौन भाई है? उस समय उनके हृदय मे एक प्रकार के आनन्द की लहर उठती। ऐसा नही था कि जब तक भाई घर मे न आये तब तक बैठक मे कोई अफसर बैठता नही हो। परन्तु फिर भी सभी इस युवक का सम्मान करते और जब सनातन अपने कमरे से बाहर निकलता अथवा बाहर की बैठक मे पाँव रखता तब सभी बैठक मे बिछे हुए गद्दी-तकियो पर बैठ जाते।

अट्टालिका के आन्तरिक भाग मे रहने के चार कमरे थे और दक्षिण

की ओर कमरे की बगल में रसोईघर था। इस रसोई में रोज दस या पन्द्रह व्यक्ति भोजन करते थे जिनमें प्रायः मेहमानों की संख्या अधिक होती थी। बाहर ड्योढ़ी थी। ड्योढ़ी में एक विशाल बैठक थी। बैठक के ऊपर सुन्दर झरोखा था। भोजन के समय सभी लोग ड्योढ़ी में बैठते। ड्योढ़ी में बैठक में सामने ही दो-नाली बन्दूक लटकती रहती। इसके बिल्कुल नीचे ही सनातन बैठता था। आने वाले मेहमान सामने बैठते। जिनको सामने ही खूंटी पर कारतूसों की माला दिखाई देती थी। वैसे तो बम्बई से रबर की गद्दी वाली कुर्सियाँ भी कभी से मँगवाली गई थीं किन्तु सनातन को ये पसन्द नहीं थीं और इसी कारण उसने दादा के समय से लकड़ी के पट्टे पर गद्दी-तकिए लगाने के रिवाज में कोई परिवर्तन नहीं किया था। साथ ही सनातन को इसमें एक अद्भुत तरह की सूझबूझ दिखाई देती थी। इतना ही नहीं वह इस बैठक को अधिक मर्यादा व सम्मानशाली भी गिनता था।

प्रान्त में आने वाले नए अधिकारी ने इस बैठक की प्रशंसा की। वह सोचता था कि सनातन को यह प्रशंसा अच्छी लगती है और ऐसा करके उसने सेठ से कसीदा निकली हुई सुन्दर काश्मीरी शाल, जो अभी बम्बई से नई आई थी, ले ली। तदुपरान्त भी जितना छोटा-मोटा फायदा वह ले सकता था उसने लिया। सनातन सब समझते हुए भी कुछ नहीं बोला।

एक दिन शाम का भोजन करते हुए भँवरसेठ ने सनातन से पूछा :

'प्रान्त का अधिकारी कौन है?'

'भागवतन का है।'

'किन्तु है बहुत रिश्वत खानेवाला।'

'दादाजी, यह तो होना ही है, अधिकारियों का मन कुत्तों-सा होता है' सनातन बात को टालते हुए बोला।

'किन्तु हमारे यहाँ से किसी भी दिन खाली हाथ नहीं लौटता है।' भँवरसेठ व्यथा से बोले।

'दादाजी, एक दिन मैं यह सब क्षतिपूर्ति पूरी तरह से वसूल कर लूँगा। मैं सब जानता हूँ।'

'किन्तु ज्यादा हेल-मेल ठीक नहीं।'

'दादाजी मेरे हिसाब से तो यह अभी आधा ही ले गया है।'

'ठीक!' कहते हुए भँवरसेठ ने बात बन्द कर दी। वे समझ गए कि सनातन को यह सब मालूम है। उसने जो उद्देश्य निश्चित करके काम करवाने की सोची होगी, सम्भव है उस काम के लिए उसने आधी ही कीमत दी हो।

भँवरसेठ को उस दिन सनातन को इस प्रकार से टोकने के लिए दुःख

हुआ। उनके मन मे यह विचार बराबर बना रहा कि मैंने व्यर्थ ही सनातन को टोका। मोर के अण्डो को पालने की आवश्यकता नही फिर भी मुझमे जल्दी हो गई। वे चुपचाप कमरे मे दुःखी मन से कमरे को बंद करके पलग पर सो गए और दूसरे ही दिन झवेरसेठ को तेज बुखार आ गया।

दादा की सेवा करने के लिए सनातन ने सभी आवश्यक काम एक ओर रख दिए। ताल्लुके से डाक्टर को बुलवाया। सुश्रूषा प्रारम्भ हुई। एक दिन, दो दिन, तीन दिन निकल गए किन्तु बुखार मे कोई अन्तर नही आया। इसलिए भावनगर से सर्जन को बुलवाया गया। ताल्लुके में तार पहुँचने ही भावनगर से सर्जन दौड़े और तेजपुर गाँव मे दोरनी-सी दो मोटरें आ-पहुँची।

सनातन बोला, 'डाक्टर सा'ब मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप दादाजी से मुझे बात मात्र करवा दीजिए। वैसे वृद्धावस्था है। सूरज मे, इस सूरज को वैसे कौन अस्त होने मे रोक सकता है?'

डाक्टर साहब बोले, 'वृद्धावस्था है।'

'मैं जानता हूँ, डाक्टर कि पश्चिम की ओर ढलना सूर्य अन्तत अस्त होता ही है, इसमे सन्देह नही तथा इसी कारण से मुझे इसका दुःख भी नही है। किन्तु मैं केवल आधा घण्टा इनसे बात करना चाहता हूँ आप कृपया इतने समय के लिए इसको होश मे ला दें।'

'ज्वर का प्रभाव कम होने पर ही इनका होश म आना सम्भव है।'

डाक्टरो की सारी रात के अथक् परिश्रम करने के पश्चात् ठीक सुबह के समय मे तेजपुर के इस साहसी झवेरसेठ ने अपनी धँसी हुई आँखो से सनातन को देखा। डाक्टर बाहर आ गए। सनातन ने मुँह को दादाजी की बाजू मे लगाकर पूछा, 'दादाजी आप कैसे है?'

'जा रहा हूँ।'

'ऐसा मत कहो।'

'तू तो जान बूझकर ऐसा ही कहेगा?'

'फिर मेरा कौन?'

'ससार मे कोई किसी का नही है। तेरे माता-पिता मुझे धोखा देकर चले गए इसका कितना भारी दुःख मुझे हुआ होगा यह तो मैं और मेरी अन्तरात्मा ही जानते हैं। बाकी मैं तो मरने योग्य ही हूँ। भरेपूरे घर का तुझे उत्तराधिकारी बनाकर जा रहा हूँ। मन मे किसी प्रकार की चिन्ता नही। मुझे किसी प्रकार की चाह नही है।'

बाजू मे बैठी पखा झलती हुई दादी ओनम-माँ से यह सहन नहीं हो सका। वह तेजी मे रो पड़ी।

सनातन को इस प्रकार से समय का बर्बाद होना अच्छा नहीं लगा

किन्तु वह लाचार था। जिस ओतम-माँ की गोदी में पलकर बड़ा हुआ उसे क्या कहा जाए!

रुदन की आवाज के साथ ही मृत्यु से जूझते हुए झेवरसेठ ने अपने धँसे हुए नेत्रों को अपनी जीवनसंगनी की ओर किया तथा बोले :

'व्यर्थ में समय मत खराब कर। मैं जा रहा हूँ, तुझे भी इसी रास्ते आना है। कर्म के अनुसार पुनः सबका मिलन होगा। जैसा भाग्य में बदा होगा वैसा होकर रहेगा।'

और ओतम-माँ साड़ी में मुँह छिपाकर बिलखबिलखकर रोने लगी तथा झेवरसेठ बात को वहीं छोड़कर सनातन से बात करने लगे।

'भाई!'

सनातन ने यह भाई शब्द लाखों आदमियों से अपने सम्मान के लिए सुना था किन्तु अपने पितामह से पहली व अन्तिम बार यह शब्द सुनकर उसे बड़ी लज्जा आई। दादाजी आगे कहने लगे :

'मुझे अब किसी बात की इच्छा नहीं है। मैंने जीवन में सभी प्रकार का आनन्द लूटा है। मुझे मेरे मन में सब प्रकार का संतोष अनुभव होता है किन्तु एक बात की इच्छा अवश्य रह गई है।'

'वह क्या दादाजी?' यह कहते हुए सनातन ने एक प्रश्नसूचक दृष्टि दादाजी की जर्जर देह पर डाली।

'बम्बई वालों के ऊपर से भार हलका कर जाने की।'

सनातन दादा की सब बात समझ गया। अपने विवाह की बात सुन कर लज्जा से उसका मुँह लाल हो गया। किन्तु फिर गम्भीरता से बात का उत्तर देते हुए वह बोला : 'ठीक दादा!'

'ठीक नहीं। तब भी तू एक बार बम्बई अवश्य जा-आना। उन्होंने न जाने कितने ही पत्र दिए हैं कि एक बार तो दामाद को बम्बई भेजो किन्तु तुझे तो मेरे अंतिम समय तक काम से अवकाश ही नहीं मिला।'

'तुम्हें गुजरात जाना अच्छा नहीं लगता है, दादा?'

'बम्बई में अब ऐसा कुछ भी नहीं रहा है। और तुझे क्या कोई लड़की के पास थोड़े ही जाना है। गुजरात में दो दिन रह कर आ जाए, बस यही ठीक। उनको अच्छा प्रतीत हो। सुना जाता है कि बम्बई में जाने के बाद दो पैसा जमा लिया है, भाई, ठीक है न! उनके पास दो पैसे होने से हमको भी आराम।'

'हमें किस बात का आराम?' सनातन ने दादा के प्रश्न का स्पष्टीकरण किया।

'हमको उनकी कोई अड़चन न हो!'

सनातन को दादा की दृष्टि मे पुन चमक दिखाई दी। उनकी मान्यता थी कि कमजोर सगे-सबन्धियो के होने से घाटा उठाना पड़ता है और लोक-लज्जा से आश्रय देना ही होता है।

'बोल, बम्बई जा-आयेगा न ?'

'किन्तु मुझे यह अच्छा नही लगता है।' सनातन ने आकुलता से कहा।

'अरे भले आदमी तुझे वहाँ कोई आजन्म नही रहना है ! दो चार-दिन बिताकर आ जाना। नया स्थान देखने को मिलेगा तथा सबन्धी के हृदय को भी इससे शाति मिलेगी।

'ठीक, दादा ! जा-आऊँगा !'

'भगवान् तेरी रक्षा करे।'

मानो पौत्र से ये ही अन्तिम शब्द सुनने को इच्छुक हो और इसी कारण से जीवन बचा हो, वैसे ही आशीर्वाद के इन अन्तिम शब्दो के साथ भँवरसेठ ने अन्तिम साँस ली और वे परलोक चले गए। और सनातन ! वरद्हस्त सनातन के सिर से उठ गया।

भँवरसेठ के मृत्यु के समाचार ने सातो गाँवो के ग्रामीणो को, विशेष रूप से किसानो को, झकझोर दिया।

समाचार मिलते ही पच्चीस-पचास आदमियो के झुण्ड-के-झुण्ड शोक प्रकट करने आने लगे और सनातन ने सबको सात्वना देना शुरू किया।

अपने दादा की मृत्यु पर शोक प्रकट करने को बम्बई से उसके सुसराल वाले अपने दो तीन भाई बधो के साथ एक दिन आए और चले गए। क्योकि उनको गाँव मे गरम-गरम लू चलने के कारण जीना जोखिमपूर्ण महसूस हुआ।

रीति-रिवाज के अनुसार द्वादसा तक रुकना चाहिए था किन्तु ऐसे समय मे खैंचा-तान करना अशोभनीय प्रतीत होता है।

जिस समय लौटती गाडी से इन लोगो ने बम्बई की राह ली उस समय सनातन के मन को एक धक्का लगा। किन्तु दादाजी की मृत्यु के दु ख के सामने इस दु ख की कोई गिनती नही थी, अत यह दुःख दीर्घ समय तक नही टिक सका।

●

किन्तु वह लाचार था। जिस ओतम-माँ की गोदी में पलकर बड़ा हुआ उसे क्या कहा जाए !

रुदन की आवाज के साथ ही मृत्यु से जूझते हुए झवेरसेठ ने अपने धँसे हुए नेत्रों को अपनी जीवनसंगनी की ओर किया तथा बोले :

'व्यर्थ में समय मत खराब कर। मैं जा रहा हूँ, तुझे भी इसी रास्ते आना है। कर्म के अनुसार पुनः सबका मिलन होगा। जैसा भाग्य में बदा होगा वैसा होकर रहेगा।'

और ओतम-माँ साड़ी में मुँह छिपाकर बिलखबिलखकर रोने लगी तथा झवेरसेठ बात को वहीं छोड़कर सनातन से बात करने लगे।

'भाई !'

सनातन ने यह भाई शब्द लाखों आदमियों से अपने सम्मान के लिए सुना था किन्तु अपने पितामह से पहली व अन्तिम बार यह शब्द सुनकर उसे बड़ी लज्जा आई। दादाजी आगे कहने लगे :

'मुझे अब किसी बात की इच्छा नहीं है। मैंने जीवन में सभी प्रकार का आनन्द लूटा है। मुझे मेरे मन में सब प्रकार का संतोष अनुभव होता है किन्तु एक बात की इच्छा अवश्य रह गई है।'

'वह क्या दादाजी ?' यह कहते हुए सनातन ने एक प्रश्नसूचक दृष्टि दादाजी की जर्जर देह पर डाली।

'बम्बई वालों के ऊपर से भार हल्का कर जाने की।'

सनातन दादा की सब बात समझ गया। अपने विवाह की बात सुन कर लज्जा से उसका मुँह लाल हो गया। किन्तु फिर गम्भीरता से बात का उत्तर देते हुए वह बोला : 'ठीक दादा !'

'ठीक नहीं। तब भी तू एक बार बम्बई अवश्य जा-आना। उन्होंने न जाने कितने ही पत्र दिए हैं कि एक बार तो दामाद को बम्बई भेजो किन्तु तुझे तो मेरे अंतिम समय तक काम से अवकाश ही नहीं मिला।'

'कुँवारे सुसराल जाना अच्छा नहीं लगता है, दादा ?'

'बम्बई में अब ऐसा कुछ भी नहीं रहा है। और तुझे क्या कोई लड़की के पास थोड़े ही जाना है। सुसराल में दो दिन रह कर आ जाए, बस यही ठीक। उनको अच्छा प्रतीत हो। सुना जाता है कि बम्बई में जाने के बाद दो पैसा कमा लिया है, भाई, ठीक है न ! उसके पास दो पैसे होने से हमको भी आराम।'

'हमें किस बात का आराम ?' सनातन ने दादा के प्रश्न का स्पष्टीकरण किया।

'इससे उनको कोई अड़चन न हो !'

सनातन को दादा की दृष्टि मे पुन चमक दिखाई दी। उनकी मान्यता थी कि कमजोर सगे-सबन्धियो के होने से घाटा उठाना पडता है और लोक-लज्जा से आश्रय देना ही होता है।

'बोल, बम्बई जा-आयेगा न ?'

'किन्तु मुझे यह अच्छा नही लगता है।' सनातन ने आकुलता से कहा।

'अरे भले आदमी तुझे वहाँ कोई आजन्म नही रहना है ! दो चार-दिन बिताकर आ जाना। नया स्थान देखने को मिलेगा तथा सबन्धी के हृदय को भी इससे शांति मिलेगी।

'ठीक, दादा ! जा आऊँगा !'

'भगवान् तेरी रक्षा करे।'

मानो पौत्र से ये ही अन्तिम शब्द सुनने को इच्छुक हो और इसी कारण से जीवन बचा हो, वैसे ही आशीर्वाद के इन अन्तिम शब्दो के साथ झेवरसेठ ने अन्तिम साँस ली और वे परलोक चले गए। और सनातन ! वरद्हस्त सनातन के सिर से उठ गया।

झेवरसेठ के मृत्यु के समाचार ने सातो गाँवो के ग्रामीणो को, विशेष रूप से किसानो को, झकझोर दिया।

समाचार मिलते ही पच्चीस-पचास आदमियो के झुण्ड-के झुण्ड शोक प्रकट करने आने लगे और सनातन ने सबको सात्वना देना शुरू किया।

अपने दादा की मृत्यु पर शोक प्रकट करने को बम्बई से उसके सुसराल वाले अपने दो तीन भाई बधो के साथ एक दिन आए और चले गए। क्योंकि उनको गाँव मे गरम-गरम लू चलने के कारण जीना जोखिमपूर्ण महसूस हुआ।

रीति-रिवाज के अनुसार द्वादशा तक रुकना चाहिए था किन्तु ऐसे समय मे खैचा-तान करना अशोभनीय प्रतीत होता है।

जिस समय लौटती गाडी म इन लोगो ने बम्बई की राह ली उस समय सनातन के मन को एक धक्का लगा। किन्तु दादाजी की मृत्यु के दु ख के सामने इस दु ख की कोई गिनती नही थी, अत यह दु ख दीर्घ समय तक नही टिक सका।

•

किन्तु वह लाचार था। जिस ओतम-माँ की गोदी में पलकर बड़ा हुआ उसे क्या कहा जाए !

रुदन की आवाज के साथ ही मृत्यु से जूझते हुए झवेरसेठ ने अपने धँसे हुए नेत्रों को अपनी जीवनसंगनी की ओर किया तथा बोले :

'व्यर्थ में समय मत खराब कर। मैं जा रहा हूँ, तुझे भी इसी रास्ते आना है। कर्म के अनुसार पुनः सबका मिलन होगा। जैसा भाग्य में बदा होगा वैसा होकर रहेगा।'

और ओतम-माँ साड़ी में मुँह छिपाकर बिलखबिलखकर रोने लगी तथा झवेरसेठ बात को वहीं छोड़कर सनातन से बात करने लगे।

'भाई !'

सनातन ने यह भाई शब्द लाखों आदमियों से अपने सम्मान के लिए सुना था किन्तु अपने पितामह से पहली व अन्तिम बार यह शब्द सुनकर उसे बड़ी लज्जा आई। दादाजी आगे कहने लगे :

'मुझे अब किसी बात की इच्छा नहीं है। मैंने जीवन में सभी प्रकार का आनन्द लूटा है। मुझे मेरे मन में सब प्रकार का संतोष अनुभव होता है किन्तु एक बात की इच्छा अवश्य रह गई है।'

'वह क्या दादाजी ?' यह कहते हुए सनातन ने एक प्रश्नसूचक दृष्टि दादाजी की जर्जर देह पर डाली।

'बम्बई वालों के ऊपर से भार हलका कर जाने की।'

सनातन दादा की सब बात समझ गया। अपने विवाह की बात सुन कर लज्जा से उसका मुँह लाल हो गया। किन्तु फिर गम्भीरता से बात का उत्तर देते हुए वह बोला : 'ठीक दादा !'

'ठीक नहीं। तब भी तू एक बार बम्बई अवश्य जा-आना। उन्होंने न जाने कितने ही पत्र दिए हैं कि एक बार तो दामाद को बम्बई भेजो किन्तु तुझे तो मेरे अंतिम समय तक काम से अवकाश ही नहीं मिला।'

'कुँवारे ससुराल जाना अच्छा नहीं लगता है, दादा ?'

'बम्बई में अब ऐसा कुछ भी नहीं रहा है। और तुझे क्या कोई लड़की के पास छोड़ ही आना है। ससुराल में दो दिन रह कर आ जाए, बस यही ठीक। उनको अच्छा [illegible] हो। सुना जाता है कि बम्बई में जाने के बाद दो पैसा जमा किया है, भाई, ठीक है न ! उसके पास दो पैसे होने से हमको भी आराम।'

'हमें किस बात का आराम ?' सनातन ने दादा के प्रश्न का स्पष्टीकरण किया।

'हमको इसकी कोई अड़चन न हो !'

सनातन को दादा की दृष्टि में पुन चमक दिखाई दी। उनकी मान्यता थी कि कमजोर सगे-सम्बन्धियों के होने से घाटा उठाना पड़ता है और लोक-लज्जा से आश्रय देना ही होता है।

'बोल, बम्बई जा-आयेगा न ?'

'किन्तु मुझे यह अच्छा नही लगता है।' सनातन ने आकुलता से कहा।

'अरे भले आदमी तुझे वहाँ कोई आजन्म नही रहना है! दो चार-दिन बिताकर आ जाना। नया स्थान देखने को मिलेगा तथा सबन्धी के हृदय को भी इससे शांति मिलेगी।

'ठीक, दादा! जा आऊँगा!'

'भगवान् तेरी रक्षा करे।'

मानो पौत्र से ये ही अन्तिम शब्द सुनने को इच्छुक हो और इसी कारण से जीवन बचा हो, वैसे ही आशीर्वाद के इन अन्तिम शब्दो के साथ झेवरसेठ ने अन्तिम सांस ली और वे परलोक चले गए। और सनातन! वरद्हस्त सनातन के सिर से उठ गया।

झेवरसेठ के मृत्यु के समाचार ने सातो गाँवो के ग्रामीणो को, विशेष रूप से किसानो को, झकझोर दिया।

समाचार मिलते ही पच्चीस-पचास आदमियो के झुण्ड-के-झुण्ड शोक प्रकट करने आने लगे और सनातन ने सबको सान्त्वना देना शुरू किया।

अपने दादा की मृत्यु पर शोक प्रकट करने को बम्बई से उसके सुसराल वाले अपने दो तीन भाई बधो के साथ एक दिन आए और चले गए। क्योंकि उनको गाँव में गरम-गरम लू चलने के कारण जीना जोखिमपूर्ण महसूस हुआ।

रीति-रिवाज के अनुसार द्वादसा तक रुकना चाहिए था किन्तु ऐसे समय में खींचा-तान करना अशोभनीय प्रतीत होता है।

जिस समय लौटती गाड़ी से इन लोगो ने बम्बई की राह ली उस समय सनातन के मन को एक धक्का लगा। किन्तु दादाजी की मृत्यु के दु ख के सामने इस दु ख की कोई गिनती नही थी, अत यह दु ख दीर्घ समय तक नही टिक सका।

•

किन्तु वह लाचार था। जिस ओतम-माँ की गोदी में पलकर बड़ा हुआ उसे क्या कहा जाए!

रुदन की आवाज के साथ ही मृत्यु से जूझते हुए झवेरसेठ ने अपने धँसे हुए नेत्रों को अपनी जीवनसंगनी की ओर किया तथा बोले:

'व्यर्थ में समय मत खराब कर। मैं जा रहा हूँ, तुझे भी इसी रास्ते आना है। धर्म के अनुसार पुनः सबका मिलन होगा। जैसा भाग्य में बदा होगा वैसा होकर रहेगा।'

और ओतम-माँ साड़ी में मुँह छिपाकर बिलखबिलखकर रोने लगी तथा झवेरसेठ बात को वहीं छोड़कर सनातन से बात करने लगे।

'भाई!'

सनातन ने यह भाई शब्द लाखों आदमियों से अपने सम्मान के लिए सुना था किन्तु अपने पितामह से पहली व अन्तिम बार यह शब्द सुनकर उसे बड़ी लज्जा आई। दादाजी आगे कहने लगे:

'मुझे अब किसी बात की इच्छा नहीं है। मैंने जीवन में सभी प्रकार का आनन्द लूटा है। मुझे मेरे मन में सब प्रकार का संतोष अनुभव होता है किन्तु एक बात की इच्छा अवश्य रह गई है।'

'वह क्या दादाजी?' यह कहते हुए सनातन ने एक प्रश्नसूचक दृष्टि दादाजी की जर्जर देह पर डाली।

'बम्बई वालों के ऊपर से भार हल्का कर जाने की।'

सनातन दादा की सब बात समझ गया। अपने विवाह की बात सुन कर लज्जा से उसका मुँह लाल हो गया। किन्तु फिर गम्भीरता से बात का उत्तर देते हुए वह बोला: 'ठीक दादा!'

'ठीक नहीं। तब भी तू एक बार बम्बई अवश्य जा-आना। उन्होंने न जाने कितने ही पत्र दिए हैं कि एक बार तो दामाद को बम्बई भेजो किन्तु तुझे तो मेरे अंतिम समय तक काम से अवकाश ही नहीं मिला।'

'कुँवारे सुसराल जाना अच्छा नहीं लगता है, दादा?'

'बम्बई में अब ऐसा कुछ भी नहीं रहा है। और तुझे क्या कोई लड़की के पास थोड़े ही जाना है। सुसराल में दो दिन रह कर आ जाए, बस यही ठीक। उनको अच्छा प्रतीत हो। सुना जाता है कि बम्बई में जाने के बाद दो पैसा जमा लिया है, भाई, ठीक है न! उसके पास दो पैसे होने से हमको भी आराम।'

'हमें किस बात का आराम?' सनातन ने दादा के प्रश्न का स्पष्टीकरण किया।

'हमको इतना कोई अड़चन न हो!'

सनातन को दादा की दृष्टि में पुनः चमक दिखाई दी। उनकी मान्यता थी कि कमजोर सगे-संबन्धियों के होने से घाटा उठाना पड़ता है और लोक-लज्जा से आश्रय देना ही होता है।

'बोल, बम्बई जा-आयेगा न?'

'किन्तु मुझे यह अच्छा नहीं लगता है।' सनातन ने आकुलता से कहा।

'अरे भले आदमी तुझे वहाँ कोई आजन्म नहीं रहना है! दो चार-दिन बिताकर आ जाना। नया स्थान देखने को मिलेगा तथा संबन्धी के हृदय को भी इससे शांति मिलेगी।

'ठीक, दादा! जा-आऊँगा!'

'भगवान् तेरी रक्षा करे।'

मानो पौत्र से ये ही अन्तिम शब्द सुनने को इच्छुक हो और इसी कारण से जीवन बचा हो, वैसे ही आशीर्वाद के इन अन्तिम शब्दों के साथ झेवरसेठ ने अन्तिम साँस ली और वे परलोक चले गए। और सनातन! वरद्हस्त सनातन के सिर से उठ गया।

झेवरसेठ के मृत्यु के समाचार ने सातों गाँवों के ग्रामीणों को, विशेष रूप से किसानों को, झकझोर दिया।

समाचार मिलते ही पच्चीस-पचास आदमियों के झुण्ड-के-झुण्ड शोक प्रकट करने आने लगे और सनातन ने सबको सान्त्वना देना शुरू किया।

अपने दादा की मृत्यु पर शोक प्रकट करने को बम्बई से उसके सुसराल वाले अपने दो-तीन भाई-बंधों के साथ एक दिन आए और चले गए। क्योंकि उनको गाँव में गरम-गरम लू चलने के कारण जीना जोखिमपूर्ण महसूस हुआ।

रीति-रिवाज के अनुसार द्वादसा तक रुकना चाहिए था किन्तु ऐसे समय में खैंचा-तान करना अशोभनीय प्रतीत होता है।

जिस समय लौटती गाड़ी से इन लोगों ने बम्बई की राह ली उस समय सनातन के मन को एक धक्का लगा। किन्तु दादाजी की मृत्यु के दुःख के सामने इस दुःख की कोई गिनती नहीं थी, अतः यह दुःख दीर्घ समय तक नहीं टिक सका।

किन्तु वह लाचार था। जिस ओतम-माँ की गोदी में पलकर बड़ा हुआ उसे क्या कहा जाए !

रुदन की आवाज के साथ ही मृत्यु से जूझते हुए झेवरसेठ ने अपने धँसे हुए नेत्रों को अपनी जीवनसंगनी की ओर किया तथा बोले :

'व्यर्थ में समय मत खराब कर। मैं जा रहा हूँ, तुझे भी इसी रास्ते आना है। कर्म के अनुसार पुनः सबका मिलन होगा। जैसा भाग्य में बदा होगा वैसा होकर रहेगा।'

और ओतम-माँ साड़ी में मुँह छिपाकर बिलखबिलखकर रोने लगी तथा झेवरसेठ बात को वहीं छोड़कर सनातन से बात करने लगे।

'भाई !'

सनातन ने यह भाई शब्द लाखों आदमियों से अपने सम्मान के लिए सुना था किन्तु अपने पितामह से पहली व अन्तिम बार यह शब्द सुनकर उसे बड़ी लज्जा आई। दादाजी आगे कहने लगे :

'मुझे अब किसी बात की इच्छा नहीं है। मैंने जीवन में सभी प्रकार का आनन्द लूटा है। मुझे मेरे मन में सब प्रकार का संतोष अनुभव होता है किन्तु एक बात की इच्छा अवश्य रह गई है।'

'वह क्या दादाजी ?' यह कहते हुए सनातन ने एक प्रश्नसूचक दृष्टि दादाजी की जर्जर देह पर डाली।

'बम्बई वालों के ऊपर से भार हल्का कर जाने की।'

सनातन दादा की सब बात समझ गया। अपने विवाह की बात सुन कर लज्जा से उसका मुँह लाल हो गया। किन्तु फिर गम्भीरता से बात का उत्तर देते हुए वह बोला : 'ठीक दादा !'

'ठीक नहीं। तब भी तू एक बार बम्बई अवश्य जा-आना। उन्होंने न जाने कितने ही पत्र दिए हैं कि एक बार तो दामाद को बम्बई भेजो किन्तु तुझे तो मेरे अंतिम समय तक काम से अवकाश ही नहीं मिला।'

'कुँवारे सुसराल जाना अच्छा नहीं लगता है, दादा ?'

'बम्बई में अब ऐसा कुछ भी नहीं रहा है। और तुझे क्या कोई लड़की के पास थोड़े ही जाना है। सुसराल में दो दिन रह कर आ जाए, बस यही ठीक। उनको अच्छा प्रतीत हो। सुना जाता है कि बम्बई में जाने के बाद दो पैसा जमा किया है, भाई, ठीक है न ! उसके पास दो पैसे होने से हमको भी आराम।'

'हमें किस बात का आराम ?' सनातन ने दादा के प्रश्न का स्पष्टीकरण किया।

'हमको इसकी कोई अड़चन न हो !'

गढका और तेजपुर के बीच बसे हुए गांवों को अपनी दुकान की ओर खींचने को उसने जमीन-आसमान एक कर दिया था तथा दो-एक गाँव उसने भेवरसेठ के हाथ से छीन भी लिए। इससे उसकी हिम्मत बढी और इसलिए उसने अपना काम बढाया। भेवरसेठ को जैसे ही इस बात का पता लगा उसने पूरी तैयारी के साथ एक ही मौसम मे दोसी के सारे व्यापार को धूल मे मिला दिया। इस चोट ने दोसी की कमर तोड डाली। भेवरसेठ ने हाथ को ज्यादा खुला कर दिया। जो धक्का भेवरसेठ की तिजोरी सहन कर सकती थी वह धक्का दुर्लभसेठ की नई नई तिजोरी सहन नही कर सकती थी। तदुपरान्त भी एक बार सामने की टक्कर लेने के विचार से दोसी ने सारा माल रातोरात इकट्ठा करके किसानो का तेजपुर खाली कर दिया।

मुर्खो के साथ करने की दोसी मे शक्ति नही थी और वह भी तेजपुर के सेठ के ग्राहको के सामने, कदापि नही। इस दिन से दोसी बर्बाद होने लगे और एक साल मे तो वे बिल्कुल निर्धन हो गए थे।

नई-नई आमदनी से बनाया हुआ सुन्दर मकान ताल्लुके मे गिरवी रख दिया गया और दूसरे ही वर्ष रकम न चुका सकने के कारण उस मकान को खाली करके पुराने मकान मे सारा सामान रखना पडा। स्वय एक टट्टू पर बैठकर भाई-साहब, पिताजी कह करके दरदर ऋण वसूल करने लगे किन्तु इससे तो रोटियाँ भी मिलना मुश्किल होने लगा।

एक रात दोसी की पत्नी जमीन कुरेदती हुई कहने लगी 'सुना!'

विचारो मे खोये हुए दोसी ने सभलकर अपनी पत्नी की ओर नजर डाली। अब माणिक बेन ने आगे कहना शुरू किया

'यह बच्चा बिना चुपडी रोटी खाता है। अभी भी यह भूखा ही सो गया है।'

और दोसी ने अपने मरे हुए भाई के पाँच वर्ष के मात्र एक पुत्र पर नजर फैकी और हटा ली। साथ ही-साथ उन्होने एक गहरी साँस ली।

थोडी देर के लिए इस कच्चे घर मे नीरव शाति छा गई। कोने मे एक दीपक अपनी मद रोशनी से इस वणिक्-दम्पति की व्यथा को स्पष्ट करता हुआ एक ही गति से जल रहा था।

यदाकदा टूटे खपरेलो मे-से चाँद की किरणें भी दिखाई देती थीं। दोसी के मुँह पर पाँच कोस का रास्ता तय करके आने के कारण अभी भी धूल के कण जमे हुए थे। सदा ही दिन मे दो बार स्नान करने वाले दोनों इस भयकर आपत्ति मे मुँह धोना तक भी भूल जाते थे।

• और इस रमीला को बकरी के दूध मे कँहाँ जाती है। इसको याद का

सम्बन्ध

बम्बई में दुर्लभदास दोसी का लेमिंगटन रोड पर एक आलीशान फ्लैट बना हुआ था। इस फ्लैट में सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। मूडी-बाजार की जोरों की चलने वाली दुकान की आय से दोसी की समृद्धि उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। एक ही दशक में उसने बम्बई की सड़कों पर दौड़ने के लिए मोटर खरीद ली थी। जबकि बम्बई में दोसी को आये मात्र पन्द्रह वर्ष हुये थे। वे जब बम्बई आये थे, रमीला दो वर्ष की थी और दोसी की मान्यता के अनुसार इस समृद्धि का श्रेय रमीला को ही था तथा इसी कारण से पुत्र न होने का उन्हें कोई दुःख नहीं था।

दोसी तेजपुर से दस कोस दूर बसे गढ़का गाँव को भी भूल चुके थे। गढ़का को भूल जाना ही उन्हें अच्छा लगा, क्योंकि पन्द्रह साल पहले गढ़का के निवासियों ने संगठन करके दोसी को उधार की एक पाई भी नहीं दी थी। तथा इससे वे जिस विषम परिस्थिति में फँस गए थे, वे आज भी उस विषम परिस्थिति को नहीं भूल सके थे।

दोसी के पूर्वजों का व्यापार गढ़का में था। पिता की दुकान को सम्भालते हुए उन्होंने पैसा बचाया था। उनकी आन्तरिक इच्छा थी कि तेजपुर के [illegible] के नाम को [illegible] कर दिया जाये। अतः इसके लिए उसने [illegible] करना आरम्भ कर दिये थे।

गढ़वा और तेजपुर के बीच बसे हुए गाँवों को अपनी दुकान की ओर खींचने को उसने जमीन-आसमान एक कर दिया था तथा दो-एक गाँव उसने भेवरसेठ के हाथ से छीन भी लिए। इससे उसकी हिम्मत बढ़ी और इसलिए उसने अपना काम बढ़ाया। भेवरसेठ को जैसे ही इस बात का पता लगा उसने पूरी तैयारी के साथ एक ही मौसम में दोसी के सारे व्यापार को धूल में मिला दिया। इस चोट ने दोसी की कमर तोड़ डाली। भेवरसेठ ने हाथ को ज्यादा खुला कर दिया। जो धक्का भेवरसेठ की तिजोरी सहन कर सकती थी वह धक्का दुर्लभसेठ की नई नई तिजोरी सहन नहीं कर सकती थी। तदुपरान्त भी एक बार सामने की टक्कर लेने के विचार से दोसी ने सारा माल रातोरात इकट्ठा करके किसानों का तेजपुर खाली कर दिया।

कुर्की से काम करने की दोसी में शक्ति नहीं थी और वह भी तेजपुर के सेठ के ग्राहकों के सामने, कदापि नहीं। इस दिन से दोसी बर्बाद होने लगे और एक साल में तो वे बिल्कुल निर्धन हो गए थे।

नई-नई आमदनी से बनाया हुआ सुन्दर मकान ताल्लुके में गिरवी रख दिया गया और दूसरे ही वर्ष रकम न चुका सकने के कारण उस मकान को खाली करके पुराने मकान में सारा सामान रखना पड़ा। स्वयं एक टट्टू पर बैठकर भाई-साहब, पिताजी कह करके दरदर ऋण वसूल करने लगे किन्तु इससे तो रोटियाँ भी मिलना मुश्किल होने लगा।

एक रात दोसी की पत्नी जमीन कुरेदती हुई कहने लगी 'सुना!'

विचारों में खोये हुए दोसी ने सम्भलकर अपनी पत्नी की ओर नजर डाली। अब माणिक-बेन ने आगे कहना शुरू किया

'यह बच्चा बिना चुपड़ी रोटी खाता है। अभी भी यह भूखा ही सो गया है।'

और दोसी ने अपने मरे हुए भाई के पाँच वर्ष के मात्र एक पुत्र पर नजर फैंकी और हटा ली। साथ-ही-साथ उन्होंने एक गहरी साँस ली।

थोड़ी देर के लिए इस कच्चे घर में नीरव शान्ति छा गई। कोने में एक दीपक अपनी मद रोशनी से इस वणिक्-दम्पति की व्यथा को स्पष्ट करता हुआ एक ही गति से जल रहा था।

यदाकदा टूटे खपरेलों में-से चाँद की किरणें भी दिखाई देती थीं। दोसी के मुँह पर पाँच कोस का रास्ता तय करके आने के कारण अभी भी धूल के कण जमे हुए थे। सदा ही दिन में दो बार स्नान करने वाले दोसी इस भयंकर आपत्ति में मुँह धोना तक भी भूल जाते थे।

· और इस रमीला को बकरी के दूध में भी हो जाती है। इसकी गाय का

सम्बन्ध

बम्बई में दुर्लभदास दोसी का लेमिंगटन रोड पर एक आलीशान फ्लैट बना हुआ था। इस फ्लैट में सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। मूडी-बाजार की जोरों की चलने वाली दुकान की आय से दोसी की समृद्धि उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। एक ही दशक में उसने बम्बई की सड़कों पर दौड़ने के लिए मोटर खरीद ली थी। जबकि बम्बई में दोसी को आये मात्र पन्द्रह वर्ष हुये थे। वे जब बम्बई आये थे, रसीला दो वर्ष की थी और दोसी की मान्यता के अनुसार इस समृद्धि का श्रेय रसीला को ही था तथा इसी कारण से पुत्र न होने का उन्हें कोई दुःख नहीं था।

दोसी तेजपुर से दस कोस दूर बसे गढ़का गांव को भी भूल चुके थे। गढ़का को भूल जाना ही उन्हें अच्छा लगा, क्योंकि पन्द्रह साल पहले गढ़का के निवासियों ने संगठन करके दोसी को उधार की एक पाई भी नहीं दी थी। तथा इससे वे जिस विषम परिस्थिति में फँस गए थे, वे आज भी उस विषम परिस्थिति को नहीं भूल सके थे।

दोसी के पूर्वजों का व्यापार गढ़का में था। पिता की दुकान को संभालते हुए उन्होंने पैसा कमाया था। उनकी आन्तरिक इच्छा थी कि तेजपुर [illegible] स्थानान्तरित कर दिया जाये। अतः इसके लिए उसने प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिये थे।

'अब भी आप उस लड़की के पास जाओ। वह थैलियाँ भरभरकर ले गई है। अब इस समय वह मदद करने को आयेगी।'

विपत्ति के समय अपनी पत्नी के मुँह से ऐसे अप्रिय शब्द सुनकर दोसी का हृदय चूरचूर हो गया। किन्तु उसने ये शब्द चुपचाप सहन कर लिये। मुँह पर कृत्रिम हास्य लाते हुए उसने जहर का घूँट पी लिया तथा थोड़ी देर चुप रहकर बोले :

'झेवरसेठ ने बात न मानी तब?'

'ऐसा सम्भव नही।'

'हमने उनको परास्त करने मे कोई कसर नहीं रक्खी थी।'

'तुमने चाहे कुछ भी किया हो किन्तु वे खानदानी घर के हैं, आपकी बात अवश्य मानेंगे।'

'तू मुझे व्यर्थ मे ऊँचा चढा रही है।'

बच्चो का दुःख मुझसे सहन नही हो सकता है। तुमने ही इन दोनो को सिर चढाया है और आज व्यर्थ ही परेशान हो रहे हो। व्यवहार मे, उधार लेने मे किस बात की लज्जा है?'

पत्नी के लगातार माथापच्ची करने पर दोसी ने उसकी बात मान ली तथा दूसरे ही दिन उन्होने घोडी पर जीन कसी और तेजपुर का रास्ता पकड लिया।

झेवरसेठ ड्योढी के कमरे मे बैठे थे। सेठ के आसपास इधर-उधर गाँव के दो-चार व्यक्ति भी बैठे हुए थे। यह सब सम्पन्नता देखकर दोसी ने मन-ही-मन तनिक विचार किया कि यदि पृथ्वी फटे तो उसमे समा जाया जाये किन्तु याचना करने पर सम्मान किसी को नही मिलता है, जो दोसी को कैसे सम्भव था?

दोसी ने कई पैवन्द-लगा कोट और जगह-जगह से सिली धोती पहन रक्खी थी। दाढी बनाए हुए पन्द्रह दिन हो गये थे। पगडी कई दिनों से धुली हुई न होने के कारण ऐसी गन्दी हो रही थी कि घृणा हो।

दोसी पर पाँच मिनट बाद नजर पड़ने ही झेवरसेठ बोले :

'ओहो! दोसी आज तो कई दिनों मे दिखाई दिये!'

दोसी ने नजर नीचे कर ली। वे कुछ भी नहीं बोल सके। मन-ही-मन उनको अपनी पत्नी माणिक पर बहुत गुस्सा आया। किन्तु अब इसका कोई चारा नही था।

मानव पारखी झेवरसेठ दोसी के मन की बात समझ गए। उन्होंने

दूध पीने की आदत है और आज भी रांड को उसकी याद आती है !'

अपने घर की दयनीय स्थिति को बताने वाली पत्नी आगे न बोले इसके लिए चतुर बनिया बोला :

'अरे पागल मत हो, पागल ! यह तो किसी दिन ऐसा ही होता है !'

'इसके लिए मैं कब मना करती हूँ ? भूखे भी रहना पड़े तो मैं इसके लिए तैयार हूँ। किन्तु ये फूल मुरझाते हैं इसका मुझे असीम दुःख है।'

'क्या मुझे इससे दुःख नहीं होता है ?'

'मैं जानती हूँ किन्तु........'

पत्नी को आगे बोलने से टोकने के लिए दोसी बोले, 'भगवान् की दया से कल अच्छे दिन आयेंगे। एक ही झपट्टे में बहुत मालामाल बना देगा। तू अधीर मत बन। तू इस बात का विश्वास रख कि शक्कर खोरे को शक्कर मिलती ही है।'

'किन्तु बिना सहारे बेल कैसे बढ़ सकती है ?'

'सब होकर रहेगा।'

'क्या खाक होकर रहेगा !'—माणिक-बेन के हृदय की वेदना निकल पड़ी।

'तब क्या करूँ ?'

'तेजपुर जाकर के........'

'क्या, मैं ही चलकर झवेरसेठ के पास जाऊँ, ऐसा ही न ?'

'इस प्रकार अधीर मत बनो। पहले मेरी पूरी बात सुन लो।'

'यह तो सुन लिया ?' दोसी का पारा ऊँचा चढ़ा।

'हमें कोई भीख नहीं माँगना है।'

'तब ?'

'प्रतिष्ठा पर लेते हैं न ? हमें उनके रुपये नहीं खाने हैं ? समय आने पर ब्याज समेत चुका देंगे।'

'नहीं, यह सम्भव नहीं।'

'कहती हूँ, मान जाओ। इस प्रकार से यदि जीवन भर रगड़ते रहो तो भी उद्धार होना सम्भव नहीं है।'

'जब सब को सामने खड़े होकर मूँछ पर ताव दिया और आज उसके सामने भीख माँगने जाऊँ ?'—कहते हुए दोसी ने अपनी याचनाभरी आँखों से माणिक-बेन की ओर देखा। उसकी आँखों में करुणा थी। पति की ऐसी स्थिति से माणिक-बेन को कुछ धक्का लगा। फिर भी उसके दिल में शांति नहीं आई और वह कहने लगी :

'अब भी आप उस लड़की के पास जाओ। वह थैलियाँ भरभरकर ले गई है। अब इस समय वह मदद करने को आयेगी।'

विपत्ति के समय अपनी पत्नी के मुँह से ऐसे अप्रिय शब्द सुनकर दोसी का हृदय चूरचूर हो गया। किन्तु उसने ये शब्द चुपचाप सहन कर लिये। मुँह पर कृत्रिम हास्य लाते हुए उसने जहर का घूँट पी लिया तथा थोड़ी देर चुप रहकर बोले

'झेवरसेठ ने बात न मानी तब ?'

'ऐसा सम्भव नही।'

'हमने उनको परास्त करने मे कोई कसर नही रखी थी।'

'तुमने चाहे कुछ भी किया हो किन्तु वे खानदानी घर के हैं, आपकी बात अवश्य मानेंगे।'

'तू मुझे व्यर्थ मे ऊँचा चढ़ा रही है।'

बच्चो का दु ख मुझसे सहन नही हो सकता है। तुमने ही इन दोनो को सिर चढाया है और आज व्यर्थ ही परेशान हो रहे हो। व्यवहार मे, उधार लेने मे किस बात की लज्जा है ?'

पत्नी के लगातार माथापच्ची करने पर दोसी ने उसकी बात मान ली तथा दूसरे ही दिन उन्होने घोडी पर जीन कसी और तेजपुर का रास्ता पकड़ लिया।

झेवरसेठ ड्योढी के कमरे मे बैठे थे। सेठ के आसपास इधर-उधर गाँव के दो-चार व्यक्ति भी बैठे हुए थे। यह सब सम्पन्नता देखकर दोसी ने मन-ही-मन तनिक विचार किया कि यदि पृथ्वी फटे तो उसमें समा जाया जाये किन्तु याचना करने पर सम्मान किसी को नहीं मिलता है, जो दोसी को कैसे सम्भव था ?

दोसी ने कई पैबन्द-लगा कोट और जगह-जगह से सिली धोती पहन रखी थी। दाढी बनाए हुए पन्द्रह दिन हो गये थे। पगडी कई दिनों से धुली हुई न होने के कारण ऐसी गन्दी हो रही थी कि घृणा हो।

दोसी पर पाँच मिनट बाद नजर पड़ते ही झेवरसेठ बोले :

'ओहो ! दोसी आज तो कई दिनों म दिखाई दिये !'

दोसी ने नजर नीचे कर ली। वे कुछ भी नहीं बोल सके। मन-ही-मन उनको अपनी पत्नी मानिक पर बहुत गुस्सा आया। किन्तु अब इसका कोई चारा नही था।

मानव पारखी झेवरसेठ दोसी के मन की बात समझ गए। उन्होने

दूध पीने की आदत है और आज भी रांड को उसकी याद आती है !'

अपने घर की दयनीय स्थिति को बताने वाली पत्नी आगे न बोले इसके लिए चतुर बनिया बोला :

'अरे पागल मत हो, पागल ! यह तो किसी दिन ऐसा ही होता है !'

'इसके लिए मैं कब मना करती हूँ ? भूखे भी रहना पड़े तो मैं इसके लिए तैयार हूँ। किन्तु ये फूल मुरझाते हैं इसका मुझे असीम दुःख है।'

'क्या मुझे इससे दुःख नहीं होता है ?'

'मैं जानती हूँ किन्तु........'

पत्नी को आगे बोलने से टोकने के लिए दोसी बोले, 'भगवान् की दया से कल अच्छे दिन आयेंगे। एक ही झपट्टे में बहुत मालामाल बना देगा। तू अधीर मत बन। तू इस बात का विश्वास रख कि शक्कर खोरे को शक्कर मिलती ही है।'

'किन्तु बिना सहारे बेल कैसे बढ़ सकती है ?'

'सब होकर रहेगा।'

'क्या खाक होकर रहेगा !'—माणिक-बेन के हृदय की वेदना निकल पड़ी।

'तब क्या करूँ ?'

'तेजपुर जाकर के........'

'क्या, मैं ही चलकर झवेरसेठ के पास जाऊँ, ऐसा ही न ?'

'इस प्रकार अधीर मत बनो। पहले मेरी पूरी बात सुन लो।'

'वह भी सुन लिया ?' दोसी का पारा ऊँचा चढ़ा।

'हमें कोई भीख नहीं माँगना है।'

'तब ?'

'प्रतिष्ठा पर लेते हैं न ? हमें उनके रुपये नहीं खाने हैं ? समय आने पर ब्याज समेत चुका देंगे।'

'नहीं, यह सम्भव नहीं।'

'कहती हूँ, मान जाओ। इस प्रकार से यदि जीवन भर रगड़ते रहो तो भी उद्धार होना सम्भव नहीं है।'

'जब तक तो सामने खड़े होकर मूँछ पर ताव दिया और आज उसके सामने भीख माँगने जाऊँ ?'—कहते हुए दोसी ने अपनी याचनाभरी आँखों से माणिक-बेन की ओर देखा। उसकी आँखों में करुणा थी। पति की ऐसी स्थिति से माणिक-बेन को एक धक्का लगा। फिर भी उनके दिल में शांति नहीं आई और यह कहने लगी :

दोसी को बुलवाया। मसनद को पलंग पर रखकर, झूलते हुए पलंग पर अपनी बाजू में दोसीसेठ को बैठाकर सीधा ही प्रश्न किया :

'दोसी, बोलो कितनी रकम दूँ ?'

दोसी की आँखों में लज्जा की ललाई देखकर भैंवरसेठ बोले :

'मुझे क्या गैर समझते हो ?'

'आज दिन तक मेरी ऐसी मान्यता थी, किन्तु अब नहीं।'

'तब ठीक, बताओ, जिससे बात समाप्त हो।'

'दो हजार।'

भैंवरसेठ खड़े हुए। उन्होंने तिजोरी खोली और दो हजार की थैली दोसी के हाथ में सौंप दी।

'कितने दिन का वायदा ?' थैली हाथ में लेते हुए दोसी ने पूछा।

'जब भी इच्छा हो दे जाना। नहीं तो, और आवश्यकता हो तो जरूर ले जाना इसमें चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। यदि शरीर ठीक है तो फिर किसी की चिन्ता नहीं।'

थोड़ी देर पहले मूर्च्छित दोसीसेठ के शरीर में भैंवरसेठ की बातों ने नया जोश पैदा कर दिया और अब वे शक्तिवान् दिखाई देने लगे।

सुपारी को बराबर काटकाट कर मुँह में रखते हुए भैंवरसेठ ने पूछा :

'अब क्या करोगे ?'

'उधार मिले ऐसी सम्भावना नहीं रही सब गुण्डागर्दी करते हैं। कोई कौड़ी देने वाला नहीं और आपके समान मेरी लोगों में साख नहीं है, इसलिए सोचता हूँ बम्बई ही चला जाऊँ।'

सेठजी थोड़ी देर सोचकर बोले

'दोसी, बम्बई में धन तो मिलेगा किन्तु मन मर जायेगा।'

'अरे सेठजी ऐसा कभी सम्भव है !'

'हाँ दोसी मैं ठीक कहता हूँ। यह धरती ही न जाने कैसी खराब है कि मनुष्य मनुष्य को भूल जाता है, मैंने ऐसा सुना है। इसका दोष तो काना को है भई, दोष तो परमात्मा जाने!' और बन्द दरवाजे वाले कमरे में चट-चट झूले की आवाज दोसी और भैंवरसेठ के मध्य गूँजने लगी।

इस बात के तीसरे ही दिन दो वर्ष की रमीला और पाँच वर्ष के बच्चे फूलचन्द को लेकर दोसी ने बम्बई की राह ली।

दोसी ने मूळीबाजार में लगातार पांच वर्ष तक अथक् परिश्रम से दुकान चलाने के बाद एक दिन दिल की बात खोलकर रख दी। भैंवरसेठ के

दोसी को कुछ भी पूछना उचित नहीं समझा और नौकर से कहा, 'दोसी को ऊपर छोड़ आ और स्नान के लिए गरम पानी लगा दे।'

पांच-सात आदमियों की दृष्टि से घिरे हुए दुर्लभ दोसी खड़े हुए और नौकर उनको ऊपर के कमरे में ले गया जहां पर विशेष मेहमान को रक्खा जाता था। दोसी इस बात को समझ गए। फिर भी परिस्थितियों के कारण वे इतने व्याकुल हो गये कि वे गुमसुम हो गये।

दोसी के स्नान कर लेने के बाद झेवरसेठ ने ऊपर के कमरे में अभी बम्बई से नये ही मँगवाये हुए धोती और अंगरखा भिजवा दिये। दोसी को यह सब काटने-सा लगा। फिर भी इनको पहने बिना दोसी के पास कोई उपाय नहीं था।

ड्योढ़ी के कमरे में हो रही बात की ओर दोसी ने कान लगाए। नीचे से स्पष्ट आवाज आ रही थी :

'दोसी बहुत ही तंग हालत में है।'

दोसी आवाज से ही यह जान गये कि बोलने वाले मेथाणा के लँगड़े-महाराज है। सेठ बात का क्या उत्तर देते हैं यह सुनने के लिए दोसी ने अपने कान लगाये।

'महाराज, यह तो सब सम्भव है! यह सब जीवन के खेल हैं। एक दिन अच्छा तो दूसरे दिन बुरा। समय समय की बात है।'

इससे दोसी के हृदय में शांति आई तथा दूसरी ओर अपने शत्रु के ऊँचे खानदान के लिए उनके मन में आदर उत्पन्न हुआ।

बात को बदलते हुए लँगड़े-महाराज बोले, 'किन्तु कहा जाता है कि दोसी ने आपका बहुत मुखावला किया था।'

'नहीं भाई, नहीं। मुझे तो कभी भी ऐसा आभास नहीं हुआ। तुम्हें ऐसा किसने कह दिया?'

झेवरसेठ को बात को मूल से उड़ाते देखकर महाराज को तनिक बुरा लगा।

अभी दोपहर होने में देर थी कि उसी समय आवाज आई, 'भोजन को चलिए।'

....और सभी घर की लम्बी पौल में बिछे हुए पाटों पर भोजन करने बैठ गए। खाना खाते समय कुछ इधर-उधर की बातें हुई। बात का क्रम जाति-बिरादरी से लेकर राज्य के अधिकारियों तक चला। भोजन करके पाँच-सात मेहमानों सहित सब चले गये। तदुपरान्त सेठ अपने कमरे में आये और

अन्तर का भेद

तीन दिनों से गढ़का के चारों ओर बहनेवाली मीणसार नदी के विशाल मैदान में पड़े हुए सक्लीगरों के डेरों में बड़ी हलचल हो रही है। रात्रि में भयंकर आवाजें होती हैं। सभी डेरेवालों के जीव मुट्ठी में आ जाते हैं। किसी को भरपेट रोटी नहीं। ऐसी आपस में खींचतान हो रही है।

मात्र बारह परिवार के इस डेरे में इस झगड़े ने जड़ें जमा ली हैं। गाँव के सामतपटेल ने एकदिन इस भय से कि ये सक्लीगर गाँव की भूमि में आपस में लड़कर, मरकर गाँव की भूमि को अपवित्र करेंगे, दोगीसेठ को मध्यस्तता करने को कहा।

उस दिन सेठ ने कहा 'मुखियाजी, मेरे दो वाक्य कहने से ही यदि किसी को शान्ति मिलती हो तो इससे और क्या कोई अच्छा काम होगा? सक्लीगरों को यहाँ बुलवाकर दो बात मैं कहूँ, कुछ तुम कहो, डाँट-डपट बताओ तो शांति सम्भव है। सक्लीगरों की हैसियत ही क्या है!'

'सेठ, मामला ऐसे तय होने वाला नहीं है। झगड़े की जड़ें गहरी हैं। इसके लिए तो हमें ही वहाँ चलना होगा।'

'तो जाऊँगा। एक बार चौकीदार को भेजकर बुलवाया जाये।'

'ये ऐसे नहीं मानेंगे।'

दो हज़ार रुपए लौटा दिए तथा साथ ही उसने झेवरसेठ को लिख दिया कि अब हम लोगों का सम्बंध टूटना नहीं। मैं रसीला का संबन्ध आपके पुत्र नेमीचन्द के पुत्र सनातन के साथ करता हूँ। अच्छा दिन देखकर आप यहाँ आ जायें।

झेवरसेठ ने इतनी जल्दी के लिए इन्कार करते हुए एक पत्र लिखा। पत्र में झेवरसेठ ने लिखा : 'सनातन अभी बच्चा है। इस पर भी नेमीचन्द को परलोक सिधारे हुए अभी मात्र तीन ही वर्ष हुए हैं, इसलिए हमारा विचार अभी संबन्ध करने का नहीं है।'

पत्र मिलने के दूसरे ही दिन दोसी बम्बई से तेजपुर को रवाना हो गए और अन्त में ओतम-मां को इधर-उधर की बातें समझाकर सनातन व रसीला की मँगनी पक्की कर दी।

इसके बाद ओतम-मां और झेवरसेठ पहली बार जीवन में बम्बई गए और सनातन का संबन्ध पक्का कर आये।

अन्तर का भेद

तीन दिनो से गढका के चारो ओर बहनेवाली मीणसार नदी मे विशाल मैदान मे पडे हुए सकलीगरो के डेरो मे बडी हलचल हो रही है। रात्रि मे भयकर आवाजें होती हैं। सभी डेरेवालों के जीव मुट्ठी मे आ जाते हैं। किसी को भरपेट रोटी नही। ऐसी आपस में खीचतान हो रही है।

मात्र बारह परिवार के इस डगे मे इस झगडे ने जडें जमा ली हैं। गाँव के सामतपटेल ने एकदिन इस भय से कि ये सकलीगर गाँव की भूमि मे आपस मे लडकर, मरकर गाँव की भूमि को अपवित्र करेंगे, दोमीसेठ को मध्यस्तता करने को कहा।

उस दिन सेठ ने कहा 'मुखियाजी, मेरे दो वाक्य कहने से ही यदि किसी को शाति मिलती हो तो इससे और क्या कोई अच्छा काम होगा? सकलीगरो को यहाँ बुलवाकर दो बात मैं कहूँ, कुछ तुम कहो, डाँट-डपट बताओ तो शाति सम्भव है। सकलीगरो की हैसियत ही क्या है।'

'सेठ, मामला ऐसे तय होने वाला नही है। झगडे की जडें गहरी हैं। इसके लिए तो हमे ही वहाँ चलना होगा।'

'तो जाऊँगा। एक बार चौकीदार को भेजकर बुलवाया जाये।'

'वे ऐसे नही मानेंगे।'

'तब ?'

'हमीं लोगों को जाना होगा।'

'ऐसा है तो चलो!' कहते हुए दोनों व्यक्ति डेरों की ओर चल पड़े।

सामने ही दंगल जमा हुआ था। छोटे-छोटे बालक भय से काँपते हुए तम्बू के एक कोने में किनारे पर खड़े हुए टुकर-टुकर देख रहे थे। बाहर बँधे हुए कुत्ते और गधे भी इन चीत्कारों को कान खड़े करके सुन रहे थे तथा मुर्गे अपने परों को फड़फड़ाते हुए गर्दन ऊँची करके एक ओर खड़े थे।

कजियों का मुँह ही काला। इनकी बात ही निराली। फिर वह बालक हो या वृद्ध जिस दिन कजिया जन्म लेता है उस दिन सब प्रसन्न होते हैं। टोले के एक आदमी की नजर जैसे ही मुखिया पर पड़ी वह बोला :

'अरे मूर्खो, कुछ शांत हो जाओ, शांत! मुखियाजी आ रहे हैं।'

जमाना एजेन्सी का था। मुखिया की इस समय इतनी धाक थी कि अच्छे-अच्छे आदमियों को पेशाब आ जाये।

मुखिया का मतलब गाँव का मालिक, शूर-वीरों को भी हथकड़ियाँ पहनाने की इनकी क्षमता होती थी। राज्य का इनको आश्रय था। कानून से इनके पास कोई अधिकार नहीं थे किन्तु ऊपर के अफ़सरों के मन चाहे काम व मन इच्छित वस्तुएँ पहुँचा देने के कारण सामान्य बाबुओं से वे अपने सभी काम करवा लेते थे।

इनको, सभी को आगे होकर सिर झुकाना पड़ता था। और डोम-भंगियों की तो इतनी भी शक्ति नहीं कि इनके सामने एक भी कदम रख सकें। इस प्रकार से रोब और धमकियों का यह साम्राज्य एक ही तरह से चारों ओर फैला हुआ था। इनमें गंटिया, नट, बनजारे, बादी, बेड़वा और सकलीगरों की तो हिम्मत ही क्या थी जो मुखिया के सामने बोल सकें।

'पास में आते ही मुखिया ने ललकारा :

'अरे, यह सब क्या है ?'

'कुछ नहीं, बापू! यह तो हम लोगों का आपसी झगड़ा है।'

'यह झगड़ा-बखेड़ा हमारे गोडिंदा में नहीं चल सकता है। एक-एक को कोठरी में बन्द कर दिया जायेगा।'—यह कहते हुए मुखिया ने अश्लील गालियाँ देनी शुरू करीं थीं। क्यों न करते, आखिर प्रधान जो थे।

मुखिया की कड़क आवाज सुनकर मानो सबको साँप सूँघ गया हो। किसी के कुछ कहने की बात तो दूर किसी प्रकार की हलचल भी नहीं थी।

'हरिराम दोनों बोले, मुखियाजी! पहले इनकी बात तो सुन लो!

'अरे होगा क्या, खाक ? यह तो सब नीच जाति के हैं।'

'किन्तु कोई कारण तो होगा ही ?'

'होगा एक दो मुर्गे या गदहे।'

मामले को कुछ शात हुआ देखकर और विशेषरूप से मुखियाजी का क्रोध शात होते देखकर डगा का एक वृद्ध आदमी दोनो हाथ जोडकर भगवान् से प्रार्थना करते गिडगिडाता हो वैसे ही गिडगिडाता हुआ बोला :

'मालिक, माता भोग चाहती है ?'

'किसका भोग ?'

'यह लछमन शादी कर चुका, इसका।'

'भोग के लिए किसने कहा ?'

बुड्ढा एक ढलती अधेड उम्र के नगे नवयुवक की ओर अँगुली करते हुए कहने लगा : 'इस स्वय ओझा ने।'

—और तुरन्त ही मुखियाजी ने उसको बहुत ध्यान से देखा और कहने लगे, 'अरे मूर्ख, किसका भोग।'

'इसका विवाह हुआ, चुडैल माँगती है।'

माता और वह भी भूत-प्रेतो की माता से सदा ही डरते रहने वाले मुखियाजी बोले :

'लछमनिया कहाँ है ?'

'हुजूर, वह तो बीमार है।'

'तब फिर तुम लोग भोग किससे माँगते हो ?'

'इसकी पत्नी से !'

'वह कहाँ से दे ?'

'हुजूर, बहुत छिपाकर रख रखा है।'

'तब फिर क्यो नही देती है ?'

'हुजुर, बस मात्र गुण्डापन।'

बीच मे बात काटते हुए दोसी बोले, 'अरे ! यह भोग न चढाए तो इससे तुम लोगो को क्या परेशानी है ?'

'चुडैल तो भोग माँगती है।'

'किसके पास से ?'

'मुझे स्वप्न मे आकर कहा है कि यदि आठ दिन के अन्दर मुझे भोग नही चढाया गया तो मै डगा को नष्ट कर दूँगी।' पुजारी ने स्पष्ट बात कह दी। इसकी पुष्टि करते हुए बुड्ढा कहने लगा -

'वापू वात विल्कुल ठीक है।'

मुखिया ने आदेश दिया' 'लछमनियाँ की घर वाली कहाँ है ?'

'अरे! उसे हुजूर के सामने हाजिर करो'—वुड्ढा एक स्त्री की ओर देखते हुए मुखिया सी अदा में वोल उठा।

डेरे के तम्बू के पीछे से छिपकर सारी वात सुन रही लड़की मुखिया के सामने आने की वात सुनकर कलप-कलप कर रोने लगी किन्तु लड़की का रुदन अरण्य-रोदन-सा था।

'एक स्त्री ने जोर से आवाज दी।'

'अरी मूर्खा, सामने आ!'

और अभी की नव विवाहिता लड़की पल्ले को छाती पर डाल कर सामने हाजिर हो गई!

पीले रंग की ओढ़नी से स्वर्ण-सा तपा रंग ढका हुआ था। कंचुकी में कसा उसका मदमाता यौवन यौवन के पहरेदार की भाँति पहरा दे रहा था। उसके स्तन किसी पहाड़ी की चोटी से शोभायमान हो रहे थे। गठे हुए स्वस्थ हाथों में चूड़ा शोभा दे रहा था। लड़की के आधे खुले हुए घूंघट में-से आधा मुँह दिखाई दे रहा था। इस सोने रूपी दिखाई देने वाले मुँह पर नीले रंग का गुदे गालों के काम के कारण उसका सौन्दर्य और अधिक शोभनीय हो रहा था। इन गुदे काम पर से आंसू वह रहे थे। वहते हुए आँसू ऐसे लगते थे मानो इस गुदे हुए काम को नष्ट कर डालेंगे। इस पर भी आँसुओं ने मानो इसको धो न डालेंगे ऐसा निर्णय कर लिया हो और इस कारण वे विना गुदे काम से टकराये आगे नहीं वढ़ पा रहे थे।

लड़की के वाहर आते ही मुखिया जी वोले :

'अरी यह सव क्या गड़वड़ है ?'

घूँघट में से ही हिचकी की आवाज सुनाई दी और फिर लड़की वोली :

'हुजूर, भोग देने की मेरी शक्ति नहीं!'

'किन्तु माँ के भोग चढ़ाने में क्या वाधा है ?'

'मैं माँ के पाँवों की रज हूँ। मैं अभिमान नहीं करती। जिस दिन मेरा पति सकुशल लौट आयेगा मैं उस दिन माँ को भोग चढ़ा दूँगी। वाकी इस समय……' कहते हुए उसकी हिचकियाँ शुरू हो गईं।

'किन्तु हम इसके लिए रुपया देते हैं।'

[illegible] ने [illegible] करते हुए कहा।

'पगली! इसमें तुझे क्या वाधा है ? मुखिया ने तुरन्त ही पूछा।

'नहीं, हुजूर! मुझे ऐसा रुपया नहीं चाहिए।'

के कहे को सुना-अनसुना करके दृढ़ता से अपना शरीर बचा रही थी। किन्तु अब सहनशक्ति मर्यादा लांघ कर भाग चुकी थी।

लछमनियाँ ने गत सात दिनों से उसी दिन खाट पकड़ ली जिस दिन वह उनके साथ डंगा में आई थी। किसको मालूम उसे क्या हो गया जिसके कारण वह स्वस्थ ही नहीं हो रहा था और तब से उसने पुजारी के यहाँ चक्कर लगाना शुरू कर दिया था।

सीधी अँगुली घी न निकलते देखकर पुजारी ने भोग के नाम से यह नया षड्यंत्र रचा और विगत तीन दिनों से रूड़ी को झंझट में डाल दिया।

'अरी मूर्खा ! सेठ के पास से पैसे ले लेना और जो अब तूने नया तूफ़ान रचा तो इसकी तेरी स्वयं की जिम्मेदारी होगी।'

ऐसा रौब बताते हुए मुखिया और सेठ वहाँ से चल पड़े। उस समय संध्या अपनी सप्तरंग की चुनरी के पल्ले से मोहकता बिखेरती हुई भागी जा रही थी। उस डूबती संध्या के रंगों को अनिमेष नेत्रों से देखते हुए रूड़ी अपने अन्दर की वेदना को न जाने कितनी देर तक भूलती हुई खड़ी देखती रही।

'जा, बाई जा सेठ के पास से रुपया ले आ।'

रूड़ी अपनी विचार तंद्रा से जागी और वह गाँव की ओर चल पड़ी। अपनी महीन साड़ी समेटकर संध्या अब बीत चुकी थी। आकाश से चारों ओर अंधकार फैल रहा था। नदी का कलकल जो दिन की हलचल के कारण सुनाई नहीं देता था वह रात्रि की शांति के कारण स्पष्ट सुनाई दे रहा था।

वह थोड़ी देर ठहरी किन्तु इस सारे झंझट से मुक्ति पाने का उसके पास यही एक मार्ग था।

थोड़ी ही देर में उसने कदम बढ़ाकर सेठ के घर का दरवाजा खटखटाया। दोनों कमरे में बैठे मानो खटखटाहट की ही प्रतिक्षा कर रहे थे। उसी प्रकार खटखटाहट सुनकर उन्होंने जल्दी से दरवाजा धीरे से खोला और रूड़ी अन्दर घुस गई।

क्षणिक देर दोनों की आँखें टकराई और जैसा उन्माद इस टकराहट से उत्पन्न होना चाहिये था, वह हुआ।

प्रसूति के कारण से माणिक-बेन के मायके जाने से घर में कोई नहीं था। सारी अँधेरी रात थी। विगत एक माह से पत्नी का वियोग सहन करने वाले सेठजी के अन्दर के तार उसी समय झनझना उठे जब उन्होंने रूड़ी को डंगे में पहली ही बार देखा था।

सेठजी ने रूड़ी के हाथ में रुपयों की थैली दी और एक हृदय-भेदक दृष्टिपात किया। रूड़ी का कलेजा धड़क-धड़क करने लगा।

रूड़ी ने सुरेश के सामने देखा, ध्यासभरी नजर देखकर वह बोली :

से कई प्रश्न पूछते हुए वे सब सनातन के पास ही खड़े रहे ।

स्टेशन मास्टर ने आगे होकर ही पहले दर्जे का टिकिट सनातन के हाथ में थमा दिया । उसी समय सनातन ने कोट की जेब में से खनखन की आवाज करता क्रूम का बटुआ निकाला ।

स्टेशन मास्टर कहने लगा : 'क्या जल्दी है, भाई ? मैं यह तेजपुर से मँगा लूँगा ।

ऐसा नहीं चल सकता । नहीं तो बच्चों का पेट काटकर हिसाब में रखने होंगे, मुझ पर तो परमात्मा की कृपा है ।'—कहते हुए सनातन ने दस रुपये के नये कड़कदार नोट स्टेशन मास्टर के हाथ में रख दिए तथा रेजगारी की बचती रकम को जेब में डालने की उसने परवाह नहीं की ।

एक तेज सीटी की आवाज के साथ गाड़ी इस पर्वतस्टेशन पर आकर रुकी ही थी कि उसने दूसरी सीटी दी क्योंकि गाड़ी के ड्राइवर को यह मालूम नहीं था कि आज उसकी गाड़ी में तेजपुर का बेताज का बादशाह बैठने को है तथा इसके लिए उसे गाड़ी दो मिनट के स्थान पर चार मिनिट रोकनी है । गार्ड भी बेताज बादशाह के साथ दो बात करने पर ही सीटी लगाने वाले थे ।

भाई को प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठाकर गार्डसाहब ने हरी झण्डी दिखलाते हुए सीटी मारी और गाड़ी चल दी ।

सनातन ने डिब्बे में बैठकर एक ओर की खिड़की खोली और बाहर देखने लगा । पांचाल के पर्वत श्रेणियों के बीच सूर्यास्त की केसरी रंग की चूँदड़ी लहरा रही थी । जंगल निकल रहा था । पशु सुस्ते चर रहे थे । गायों के पाँवों के खुरों से गोधूलि के बादल उमड रहे थे ।

ऐसी ही एक सन्ध्या उसके दादा भैरवसेठ को निगल चुकी थी तथा सूर्य को जैसे अंधकार छिपा देता है उसी प्रकार की एक सन्ध्या ने उसके दादा को सदा के लिए छिपा लिया था । उसने गहरा श्वास लिया । सारा डिब्बा गूँज उठा । सौभाग्य से डिब्बे में कोई दूसरा यात्री अब तक नहीं था । जबकि सदा ही आदमियों के बीच में रहने वाले सनातन को यह एकान्तता खल रही थी, व्याकुल बना रही थी । पहले दर्जे को छोड़कर सनातन का मन तीसरे दर्जे में जाकर बैठने को हुआ किन्तु प्रतिष्ठा का प्रश्न मुँह फाड़े सामने खड़ा हो गया और वह प्रथम दर्जे के डिब्बे में ही बैठा रहा । अन्दर का भेदने को सनातन में शक्ति नहीं थी ।

वैसे तो सनातन इससे पहले भी एक-दो बार बम्बई आ चुका था ।

'सनातन इसमें एक वस्तु और नोट कर ले। यह वस्तु भी लानी ही है।'

'माँ! यह तो नौकर-चाकरों की याददास्ती है, घर की याददास्ती तो अलग ही है।'

'यह मुझे मालूम है। इसमें ही एक वस्तु बाकी रह गई है।'

'क्या?' कहते हुए सनातन ने अपना नये मॉडल का पार्कर पैन निकाला।

'इसमें लिख, किसन की बहू के काँच की पाँच जोड़ी चूड़ियाँ लाना।' ओतम-माँ ने कहा।

'बीवी का गुलाम किसना गया कहाँ है?'

सनातन के पारे को ठंडा करते हुए ओतम-माँ बोली। 'वह भी मनुष्य है। उसकी भी अभिलाषायें हैं। जैसा तुझमें है वैसा ही स्त्रियों में भी है। वह इस समय युवा है, उसके ये खाने-पीने के दिन हैं, तू व्यर्थ में ही क्यों अधीर होता है?'

और सनातन ने ओतम-माँ की बात मानकर किसना की स्त्री के लिए पाँच जोड़ी काँच की चूड़ियाँ लाने की बात को अपनी याददास्ती में लिख लिया। सभी तैयारियाँ हो गईं। बिस्तर और बैग भी जमा दिये गये थे।

तेजपुर से तीन मील दूर रेलवे स्टेशन तक आने-जाने वाले मेहमानों को लाने ले जाने के लिए किराये पर रक्खी हुई घोड़ा-गाड़ी को किसन तैयार कर रहा था।

गाड़ी को बाहर निकाल कर किसन ने उसमें सब सामान रख दिया तथा सनातन ने घोड़े की लगाम अपने हाथ में ले ली। 'जल्दी लौटना,' 'जल्दी लौटना' और 'जल्दी आना' के बीच गाड़ी स्टेशन की ओर दौड़ने लगी। तेजस्वी घोड़ी को तीन मील का रास्ता काटने कितना समय लगता? दो-एक बार मोड़ मुड़ने में ही स्टेशन की लाल बत्तियाँ दिखाई देने लगीं।

स्टेशन पर बैठे अन्य यात्रियों ने दूर से ही घोड़े के घुँघरुओं की आवाज़ सुनकर यह मालूम कर लिया कि सनातन की घोड़ा-गाड़ी आ रही है, किन्तु किसी को भी यह बिल्कुल ध्यान नहीं आया कि सदा ही मेहमानों को आने-जाने वाली घोड़ा-गाड़ी में आज स्वयं भाई ही होगा! नहीं तो अब तक [illegible] जाने बढ़ चुके होते।

[illegible] सनातन को देखते ही उन्होंने [illegible] घेरा [illegible] उसके [illegible]। 'कब आओगे? कितने दिन ठहरोगे?' इसी प्रकार

साथियों से दिल खोलकर खूब बातचीत की। कम से-कम शब्दों में सभी सम्भावित सलाह-सूचनायें देने मे भी सनातन ने कमी नहीं की। जिससे लाल आँख से बात करनी थी उसे लाल आँख करके बात की तथा जिसको प्यार-दुलार से समझाना था उसे प्यार दुलार से समझाया कि उसकी पन्द्रह दिनों की अनुपस्थिति का चित्र उसके सामने आ जाये।

इन सब बातों के उपरान्त उसने सबसे पूछा : 'अरे ! तुम लोगों के लिए मैं बम्बई से क्या लाऊँ ?'

यह सुनकर वहाँ बैठे पैंतीस आदमियों का एक काफिला चुप हो गया। सभी विचार करने लगे बम्बई से क्या मँगवाया जाये।

एक नवयुवक ने अपनी नवोढा को प्रसन्न करने के लिए चूड़ियाँ मँगवाने का विचार किया किन्तु भाई के सामने यह बात कैसे कही जा सकती है !

सबको एकदम चुप्पी साधे देखकर वह समझ गया कि ये लोग मुझसे शरमा रहे हैं। अत वह अपने मुनीम मेहता से कहने लगा. 'मेहताजी आप इन सब लोगों की एक याददास्त बना लो। एक-एक व्यक्ति से पूछते जाना जिसे जो मनभाये वह मँगवाये।' इतना कहकर सनातन दूसरे आदमियों से बातचीत करने में व्यस्त हो गया।

सूखे कपाल पर किसान की धोती लपेटे हुए ओझा मेहता ने कलम-दवात उठाई और समूह के बीच में बैठकर अपने साढ़े तीन नम्बर के चश्मे को धोती से साफ किया और बोले

'अब आप सब लिखवाओ।'

एक के बाद एक ने लिखवाना शुरू किया। किसी ने रेशमी रूमाल लिखवाया तो किसी ने चमड़े का पैसा रखने का बटुआ लिखवा दिया। किसी ने कपडों में टाँगने के गोल गोल काँच के टुकड़े मँगवाये। इतने में एक ने जाकर मेहता को धीमे से कहा

'एक वस्तु लिख लीजिये ।'

कान में शब्द पहुँचते ही मेहताजी का पारा चढ़ गया। वे बोले, छोटे मुँह बडी बात !'

तथा इतने पर सभी व्यक्तियों का ध्यान युवा किसन की ओर खिंच गया। सभी तुरन्त समझ गये कि नवोढा को भेंट करने के लिए कुछ मँगवाना चाहता है। इस पर वह शर्मिन्दा होकर पत्थर की नाईं खड़ा हो गया।

यह बात कैसे और कब गोतम-माँ के पास पहुँच गई इसको तो भगवान् जाने, किन्तु जब मेहताजी ने याददास्त भाई को दी तो तुरन्त ही गोतम-माँ बोलीं :

बम्बई की ओर

जब सनातन ने बम्बई का एक चक्कर लगा-आने की तैयारी की तो उस समय ओनम-माँ के हृदय में तनिक दुःख हुआ। वैसे तो सनातन की भी बम्बई जाने की हार्दिक इच्छा नहीं थी। सनातन को तो अपनी दिनोंदिन प्रगतिशील हो रही रियासत को समृद्धशील बनाने का विचार आ रहा था। इसके अतिरिक्त उसे किसी भी काम में रुचि नहीं थी। जीवन में अटपटी बाजियाँ खेलते तथा अनेक प्रकार के दावों में अपनी शक्ति लगाकर उनमें सफलता प्राप्त कर लेने में उसने अपना जीवन समर्पित कर दिया था।

किन्तु दादा को दिए हुए वचनों के कारण उसे बम्बई जाना था। उसे अपने दादा को उनकी मृत्यु-शय्या पर दिए गये वचन याद थे, इसलिए बिना बम्बई का चक्कर लगा-आने के उनके पास कोई उपाय नहीं था।

सेठ के बम्बई जाने की बात ने सारे परगने में खलबली मचा दी। कई व्यक्तियों ने मन-ही-मन विचार किया कि कदाचित् सेठ बम्बई जाकर कुछ नया व्यवसाय करेंगे किन्तु वास्तविकता कोई नहीं जान सका। केवल दो ही व्यक्तियों को इस बात की जानकारी थी कि सनातन को अपनी ससुराल बम्बई का एक चक्कर लगा-आने का आदेश स्वयं केवरसेठ अपनी मृत्यु-शय्या पर दे चुके थे और इसी कारण उसे बम्बई की यात्रा करनी थी।

बम्बई जाने से एक दिन पहले सनातनसेठ ने अपने नौकर-चाकर तथा

'सनातन इसमें एक वस्तु और नोट कर ले। यह वस्तु भी लानी ही है।'

'माँ! यह तो नौकर-चाकरों की याददास्ती है, घर की याददास्ती तो अलग ही है।'

'यह मुझे मालूम है। इसमें ही एक वस्तु बाकी रह गई है।'

'क्या?' कहते हुए सनातन ने अपना नये मॉडल का पार्कर पैन निकाला।

'इसमें लिख, किसन की बहू के काँच की पाँच जोड़ी चूड़ियाँ लाना।' ओतम-माँ ने कहा।

'बीवी का गुलाम किसना गया कहाँ है?'

सनातन के पारे को ठंडा करते हुए ओतम-माँ बोली। 'वह भी मनुष्य है। उसकी भी अभिलाषायें हैं। जैसा तुझमें है वैसा ही स्त्रियों में भी है। वह इस समय युवा है, उसके ये खाने-पीने के दिन हैं, तू व्यर्थ में ही क्यों अधीर होता है?'

और सनातन ने ओतम-माँ की बात मानकर किसना की स्त्री के लिए पाँच जोड़ी काँच की चूड़ियाँ लाने की बात को अपनी याददास्ती में लिख लिया। सभी तैयारियाँ हो गईं। बिस्तर और बैग भी जमा दिये गये थे।

तेजपुर से तीन मील दूर रेलवे स्टेशन तक आने-जाने वाले मेहमानों को लाने ले जाने के लिए किराये पर रक्खी हुई घोड़ा-गाड़ी को किसन तैयार कर रहा था।

गाड़ी को बाहर निकाल कर किसन ने उसमें सब सामान रख दिया तथा सनातन ने घोड़े की लगाम अपने हाथ में ले ली। 'जल्दी लौटना,' 'जल्दी लौटना' और 'जल्दी आना' के बीच गाड़ी स्टेशन की ओर दौड़ने लगी। [illegible] घोड़ी को तीन मील का रास्ता काटते कितना समय लगता? दो-एक बार [illegible] करने में ही स्टेशन की लाल बत्तियाँ दिखाई देने लगीं।

स्टेशन पर बैठे अन्य यात्रियों ने दूर से ही घोड़े के घुँघरुओं की आवाज सुनकर यह महसूस कर लिया कि सनातन की घोड़ा-गाड़ी आ रही है, किन्तु किसी को भी यह बिल्कुल ध्यान नहीं आया कि सदा ही मेहमानों को लाने-ले-जाने वाली घोड़ा-गाड़ी में आज स्वयं भाई ही होगा! नहीं तो अब तक सभी [illegible] के लिए दो कदम आगे बढ़ चुके होते।

किन्तु गाड़ी में से सनातन को [illegible] ही उन्होंने उसको देखा तथा उसके [illegible]। 'कब आवेंगे?' 'कितने दिन ठहरेंगे?' इसी प्रकार

लाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। परन्तु क्षणक्षण मे परिवर्तित होने वाली कल्पनाओ के बीच मे वास्तविकता को जान लेने का काम उसे अत्यन्त कठिन लगा।

जिसका होना अच्छा नही लगता तथा जो नही था फिर भी विचारो मे तल्लीन एक प्रकार के मधुर आनन्द-सागर मे डुबकियाँ लेने वाला सनातन एक बडे जक्शन के आते ही स्वस्थ हो गया। उसके कानो मे जक्शन के यात्रियो के उतरने-चढने का कोलाहल गूँज उठा। गाडी का इजन पृथक् हो गया। इसने कई डिब्बो को इधर-उधर कर दिया तथा इसके बाद पुन गाडी मे जोड दिया गया और गाडी अपनी रफ्तार पकडने लगी। चारो ओर अधकार छाने लगा। आकाश फूल-सा साफ था और आकाश के आवरण से तारे सिर निकालकर हँस रहे थे।

गाडी तेजपुर के सनातनसेठ को लेकर बम्बई को बडी तेजी से दौड रही थी। गाडी भी मानो किसी अद्भुत उत्साह मे आकर तेजी से भाग रही थी।

सनातन पुनः रसीला के विचारो मे तल्लीन हो गया। न जाने आज रसीला उसको क्योकर पीडा कर रही थी। घास पर बिखरे शहद-बिन्दुओ के स्वाद के लोभ मे जैसे मृग आगे बढता जाकर शिकारी के जाल मे फँस जाता है उसी प्रकार सनातन भी पुन रसीला की सुखद कल्पना मे खो गया।

एक स्टेशन आया तथा गाडी रुक गई। कोट-पैंट पहने हुए एक अपटूडेट साहब इस स्टेशन से गाडी मे बैठे। इन साहब के साथ एक सिर पर गठरी रखे आदमी भी गाडी मे चढा। बाहरी साज-सज्जा से वह साहब के मुशी-सा लग रहा था। साहब कभी सनातनसेठ के यहाँ नही पधारे थे अत तालुके के इन साहब से उनका परिचय नही था। इसका सनातन को तनिक क्षोभ हुआ। फिर थोडी देर मे उसे ख्याल आया कि इस ससार मे इस प्रकार के साहबो की कोई कमी नही है। ये सब साहब तेजपुर की हवेली के मेहमान नही बनने वाले थे, और इस क्षणिक विचार को उसने शीघ्र ही निकाल फेका।

गाडी बराबर आगे बढ रही थी। रात्रि भी गाडी की प्रतिस्पर्द्धा करते हुए तेजी से आगे बढती जा रही थी। मोगरे का फूल अब मध्यरात्रि के कारण मुरझाने लगा। ऐसे समय मे भूरसी स्टेशन पर गाडी आकर ठहरी तथा दूसरे ही क्षण गाडी ने चलने की सीटी बजाई उसी समय स्टेशन पर ठहरे एक कोली दाम्पत्य, जो युवा था, गाडी मे चढने को उतावला होने लगा। साथ मे थोडा बहुत घर-गृहस्थी का भी सामान था। अत यह जोडा स्टेशन पर इधर-उधर अधिक नही घूम सका। स्त्री की गोद मे एक दूध पीता बालक भी था।

किन्तु जरूरी काम के कारण एक दिन ही ठहर कर चला आया। उसे समय की बर्बादी पसन्द नहीं थी। उस दिन भी उसे दादा ने एक हल्की डाँट दी थी। किन्तु आज-सी उसमें तेजी नहीं थी। आज तो सनातन बिना किसी काम के मात्र दादा को दिया वचन पूरा करने को बम्बई जा रहा था।

तालुके से उसने अपने श्वसुर दुर्लभदास दोसी को तार दे दिया था अतः स्टेशन पर कोई-न-कोई तो आयेगा ही यह बात मन में आते ही उसने अपनी नजर के सामने अपनी वाग्दत्ता को लाने का प्रयत्न किया किन्तु जिसका उसने कभी मुँह नहीं देखा उसकी कल्पना-मूर्ति कैसे वह चित्रित करे? इसमें उसे सदा निष्फलता मिली और इसका उसे थोड़ा क्षोभ हुआ।

इक्कीस साल की उम्र हो जाने पर भी उसे अभी तक विवाह करने की जल्दी नहीं थी। फिर इसकी वाग्दत्ता रसीला को याद करने का कोई प्रश्न नहीं था।

बचपन से ही उसने अपनी भावी पत्नी का नाम बार-बार सुना था इसलिए यह सम्भव था कि इस नाम से उसे घृणा हो। फिर भी कौन जाने अब तक भी उसके मन में रसीला से मिलने, उसके साथ बात करने की या विवाह करके मौज उड़ाने की उत्कण्ठा नहीं हुई थी।

दादा के वंश को उज्ज्वल करने के लिए उसने अपने जीवन के मीठे पल व क्षणों को अदृश्य तरह से खोया था। इस कारण से यदि यह भी मान लिया जाये कि वह इस प्रवाह में बहता जा रहा था तो भी कोई आपत्ति नहीं होगी।

किन्तु आज तेजपुर से अलग होते ही सनातन की आँखों के सामने उसकी वाग्दत्ता की कल्पित मूर्ति आगई जिसका लालन-पालन गत दस वर्षों से बम्बई-सी मायामयी नगरी में हो रहा है। उसने इसकी कल्पना करने का प्रयत्न किया।

'वह मुझे क्या पहचान सकेगी' मैं तो उसे अवश्य पहचान-परख लूँगा। वह चाहे कितनी ही स्त्रियों के समुदाय में क्यों न बैठी हो? उसकी लज्जापूर्ण मुखमुद्रा ही उसके अस्तित्व को बता देगी। जिस लज्जा के साधन से वह अपने आपको छिपाना चाहेगी वही लज्जा का साधन उसकी पोल खोल देगा।

सनातन की दृष्टि चकोर-सी थी। सदा से ही गाँव में रहने पर भी उसका [illegible] था। इतनी सब परेशानियों के उपरान्त भी वह समय निकाल कर [illegible] पुस्तकें पढ़ लेता था। इधर-उधर के विचारों में गोता मार लेने के [illegible] में सनातन रसीला के मदमस्त यौवन की अपनी कल्पना में

'ठीक !' कहकर सनातन नीचे उतरा और टिकट कलेक्टर के पास जाकर दो प्रथम श्रेणी के टिकट खरीदकर चुपचाप आकर खड़ा हो गया।

धड़कते दिल से कोली बोला, 'सेठजी हम अब किसी दूसरे डिब्बे में चले जायें ?'

'नहीं तुम लोगों को अहमदाबाद तक इसी डिब्बे में बैठे रहना है'

सनातन ने जैसे ही अपनी बात पूरी की कि डिब्बे में बैठे हुए दूसरे साहब किसी शहर पर तोप दागने की अदा में गार्ड को साथ लेकर आ पहुँचे।

फटी ओढनी और कितने डिब्बियों सहित बैठे इस कोली दाम्पत्य को लाल आँखें दिखलाते हुए गार्ड गर्जे 'चलो नीचे उतरो !'

सनातन धीरे से बोला, 'नहीं उतरेंगे।'

'कारण ?'

कारण में सनातन ने अहमदाबाद तक के दो प्रथम श्रेणी के टिकट बता दिए।

'सोरी प्लीज'—कहकर गार्ड चला गया और साहब मूर्ख से, डिब्बे में बैठे रहे।



उन्होंने एक-दो डिब्बों में बैठने का जब प्रयास किया तो अन्दर से आवाज आई, 'आगे के डिब्बे में जाओ, यहाँ खाली जगह नहीं है' इसी समय गाड़ी चलने को तैय्यार हो गई। इस प्रकार की आवाज आते ही सनातन ने प्रथम श्रेणी के डिब्बे का दरवाजा खोला और गर्दन बाहर निकालकर उसने आवाज दी, यहाँ आजाओ, इधर, तथा स्त्री अपने पति व घर-गृहस्थी के साथ वहाँ आ पहुँची। सनातन ने सामान उठाकर रखा न रखा कि इंजन चल दिया। तथा बन्दर जैसे वृक्ष पर कुदक कर इधर-उधर जाता है, इसी प्रकार पत्नी के गाड़ी में बैठ जाने के बाद पति भी फुदककर अन्दर आ पहुँचा। किन्तु डिब्बे में पांव रखते ही उनका कलेजा कांप उठा—यह तो बुरा हुआ। सनातन इस प्रकार की घबराहट का कारण समझ गया। वह बोला चिन्ता मत करो; मैं बैठा हूँ।

'किन्तु सेठजी! गार्ड या टीटीसाहब कचूमर निकाल देंगे।'

इसी समय पास में बैठे हुए दूसरे साहब खड़े हुए और गर्जने लगे, चलो चलो नीचे उतरो! तुम्हें मालूम है यह फर्स्ट क्लास का डिब्बा है। और इस गर्जना से कोमी स्त्री कबूतर-सी फड़क उठी।

स्त्री को सान्त्वना बँधाते हुए सनातन ने कहा, 'बहिन चिन्ता मत करो। मैं जो बैठा हूँ।'

'अरे, आप क्या खाक बैठे हैं? आने वाले स्टेशन पर इनको तो उतरना ही होगा।'

'ये लोग नहीं उतरेंगे—' सनातन ने शिष्टाचार का ध्यान न रखते हुए कहा।

'कारण?'

'इसी डिब्बे में यात्रा करेंगे।'

'यह फर्स्ट क्लास है।'

'यह मैं जानता हूँ।'

'मैं शिकायत करूँगा।'

'बेशक।' सनातन का टके-सा उत्तर सुनकर साहब चुप होकर बैठ गए।

अगला स्टेशन आते ही सनातन ने पूछा: 'तुम लोग कहाँ तक जाओगे।'

उत्तर मिला, 'अहमदाबाद।'

'क्या करोगे?'

'मजदूरी।'

'वैसे कहाँ रहते हो?'

'[illegible]।'

दर्जे के डिब्बे में देखता-देखता जहाँ सनातन खड़ा था वहीं आ गया। फूलचन्द को इससे थोड़ा क्षोभ हुआ, किन्तु क्षोभ को छिपाते हुए उसने मुस्कराते हुए सनातन से हाथ मिलाया। कुली से सामान उठवाया। साथ-साथ चलते हुए फूलचन्द ने ओतम-माँ की कुशल क्षेम का समाचार पूछ लिया।

बराबर यात्रा करने से थककर चूर-चूर हुए सनातन ने सभी प्रश्नों का उत्तर थोड़े से शब्दों में दे दिया। दोनों ही कार में बैठे। ड्राइवर ने लेमिंगटन रोड पर गाड़ी को दौड़ाना शुरू किया। गाड़ी तेज रफ्तार से दौड़ने लगी।

सारी नगरी टिमटिमाते प्रकाश में डुबकियाँ ले रही थी। मोटरें, बसें व ट्राम-गाड़ियाँ इधर-उधर बड़ी तेजी से दौड़ रही थी। इन सबके बीच में हिरणी से तेज-सी दौड़कर वह मोटर लेमिंगटन रोड पर बने एक बंगले के 'दोसी-सदन' के द्वार पर आकर ठहर गई।

सनातन सोच रहा था कि उसकी अगवानी के लिए उसकी सास या श्वसुर दरवाजे पर अवश्य आयेंगे किन्तु सनातन का यह विचार निरर्थक रहा। दरवाजे पर कोई अगवानी करने नहीं आया इससे सनातन के दिल में एक चोट लगी। सदा ही सब स्थानों पर सम्मानित होने वाला सनातन अपमान की ये घड़ियाँ चुपचाप सहन कर गया। उसको अति क्षोभ हुआ फिर भी वह शांत रहा। अतीव शांति से उसने दीवानखाने में पाँव रखा किन्तु वहाँ भी उसकी अगवानी के लिए कोई नहीं था। ठीक पन्द्रह मिनिट बाद दोसीसेठ अन्दर के कमरे से दीवान खंड में आए। उन्होंने सनातन की अगवानी की। किन्तु दुर्लभसेठ की अगवानी करने में कोई अपनापन नहीं दिखाई देता था। इसके विपरीत बिल्कुल रूखापन था। सनातन ने दोसी को प्रणाम किया किन्तु दोसी को जिन भावनाओं से प्रणाम का उत्तर देना चाहिए था उन भावनाओं से उत्तर नहीं दिया। सनातन चुपचाप इन सब बातों को मन-ही-मन नोट करता जा रहा था।

उसके सामने तेजपुर छोड़ने का दृश्य आ गया। उस समय से उसकी होने वाली चाकरी का चित्र उसकी आँखों के सामने तैरने लगा। उसका स्वाभिमान कम होता जा रहा था। बारबार असम्मानित होने के कारण उसने बम्बई छोड़कर चले जाने का विचार किया किन्तु ऐसा करने में उसे भय लग रहा था। ऐसा करने से उसका, चिरशांति प्राप्त कर रहे अपने दादा को दिया गया वचन भंग होता था और ऐसा न करने के लिए ही वह इतनी शांति से सारा अपमान पीता जा रहा था।

थोड़ी देर मौन रहने के पश्चात् शर्मा बोले 'ओतम-माँ कैसे है ?'

'बहुत आनन्द में है।'

बम्बई में

सनातन की अगवानीहेतु दोसीसेठ ने अपने भतीजे फूलचन्द को मोटर लेकर स्टेशन पर भेजा था। दोसी ने सनातन के साथ पूर्णरूपेण शिष्टाचार करने तथा आदर-सत्कार में किसी प्रकार की त्रुटि न करने के लिए फूलचन्द को भलीप्रकार से समझा दिया था। दोसी के हृदय में तेजपुर के सेठ को अपनी वैभवता दिखलाने की उत्कंठा जगी। उसने अपने फ्लैट को अति सुन्दर ढंग से सजाया। नौकर-चाकरों को भी अच्छी प्रकार से तैयार किया गया। दोसी ने यह बतलाने के लिए कि तेजपुर की अट्टालिका के समान इस फ्लैट में कोई कमी नहीं है, कसर कम न की थी।

गाड़ी के बम्बई पहुँचने के समय अँधेरा समाप्त हो गया था। किन्तु यह तो मायावी नगरी थी जिस पर अंधकार की छाया का साम्राज्य होना असम्भव था। उसका मुकाबला करने को बिजली के जगमगाते लट्टू सदा तैयार हैं। जिसके कारण इस नगरी पर अंधकार का कालापन छा जाना सम्भव नहीं था।

सनातन को भी अँधेरे गाँव में-से सदा ही प्रकाश में नहाती नगरी में आते हुए अति हर्ष का अनुभव हुआ। अपना सामान लेकर वह प्लेट-फार्म पर उतरा। सनातनसेठ की वैभवता से अपरिचित फूलचन्द उसे तीसरे

हुआ, भागते हुए देखा। सनातन ने सोचा कि कदाचित् उसकी नजर के भय से ही वह डर गई हो। निश्चित ही यह भागने वाला व्यक्ति रसीला ही होनी चाहिए। वह रसीला की कल्पना करने लगा। क्या वह छिपकर हमारी बात सुनती होगी ? मेरे उत्तर उसे अच्छे तो लगे होंगे ? यदि अच्छे न लगे हों तो ? चाहे वह बम्बई में ही रहे। जैसा उसके पिताजी ने बताया उसे बम्बई ही अच्छा लगता है ? किन्तु मुझे भी क्या कोई कम काम है ? मेरे पास न जाने कितने कामों का ढेर लगा हुआ है ! हमीर का मामला अब तक नहीं सुलझ सका है, मेरामण पर जीवन-सुरक्षा का वारंट निकलवाना है। थानेदार आसानी से नहीं मान रहा है। उसको अभी कुछ चाय पानी के लिए देना जरूरी है। सौ से ऊपर एक भी पाई उसने नहीं दी है, इसलिए ऊँची-नीची बात करे तो उसे दो सौ देने हैं। वैसे तो यदि थानेदार को सौ से एक भी पाई अधिक दूँ तो मेरा जीवन बेकार है ! *सीधे हाथ मान जाये तो ठीक है, नहीं* तो मूर्ख सौ भी हाथ से खोयेगा।

और अभी तो डागर का भी पानी उतारना शेष है। एक दिन पीपल वाले पर बोल गए वचनों का उसे मजा बतलाना है। वह शायद सोचता होगा कि वह बनिया क्या करेगा किन्तु उसे यह मालूम नहीं कि यह बनिया दूसरी भाँति का है, कोई सामान्य या मूर्ख बनिया नहीं ! यदि एक बार उसे हथकड़ियाँ न पहना दूँ तो मैं बनिया नहीं।

तेजपुर की अपनी ड्योढी में होने वाले विभिन्न प्रकार के मनोरञ्जनों में डूबा रहने वाला सनातन कुछ देर के लिए विचारों में खो गया। कुछ क्षणों के लिए तो वह यह भूल गया कि वह बम्बई में बैठा है। इसी बीच उसकी सास माणिकबेन ने विचारों में व्यवधान डालते हुए कहा

'दोनों क्यों कर चुप हो ?'

सनातन ने खड़े होकर सास को प्रणाम किया। माणिकबेन ने दामाद की बलैयाँ ली।

दोसी इस पुरानी रीति को छोड़ देने पर जोर देते हुए कहने लगे 'अब इस प्रकार की प्रथाएँ छोड़ देनी चाहिए।'

अपने सुधार अपने ही पास रखो, माणिकबेन बोली। माणिकबेन यद्यपि बम्बई में गत पन्द्रह सालों से रह रही थी फिर भी उनको बम्बई की हवा नहीं स्पर्श गई थी। उनकी बातें इतनी सरल सीधी थी कि मानो वे आज तक गढ़का गाँव में ही रह रही हों।

'अरे, अब दुनियाँ बदल रही है। जो इसके साथ कदम नहीं रख सकता वह स्वतः ही ठोकर खाकर गिर पड़ेगा। समझी ?'

'साथ लेते आते !'

'तेजपुर की शांति छोड़कर इस कोलाहलपूर्ण वातावरण में उसे एक पल भी बिताना कठिन हो जाता ।'

'अरे, आप यह क्या कहते हैं' ऐसा कैसे हो सकता है ?' दोसी ने अति आश्चर्य से पूछा ।

'मैंने ठीक ही कहा है ।' सनातन ने अपनी बात की पुष्टि की ओर एक बार दोसी को ऊपर से नीचे तक देखकर आँखें उस पर से हटा लीं ।

'ऐसा तो होगा ही, भाग्यशाली व्यक्ति ही बम्बई आ सकते हैं ।'

'आपके मतानुसार ऐसा होगा, किन्तु मैं ऐसा नहीं सोच सकता हूँ ।'

'यहाँ से आने के बाद किसी का जाने का मन नहीं होता है ।'

'मुझे अच्छा लगता है ।'

दोसी ने सनातन को गौर से देखते हुए कहा, 'बम्बई से लौटना ?'

'हाँ'

'किन्तु रसीला को तो बम्बई में ही अच्छा लगता है ।'

अपनी वाग्दत्ता का नाम दोसी ही के मुँह से सुनना सनातन को बहुत अच्छा लगा किन्तु उसको बम्बई ही अच्छी लगती है इस प्रकार के दोसी के वाक्यों से उसको क्षोभ हुआ । दोसी के वचनों का उत्तर सनातन बड़ी ही चतुरता से दे सकने में समर्थशाली होते हुए भी उसे तनिक संकोच हुआ तथा वह मौन ही रहा ।

थोड़ी देर तक दीवानखाने में नीरव शांति रही । सनातन ने धीरे-धीरे कमरे के चारों ओर नजर डालना शुरू किया ।

बम्बई में और वह भी नगरी के मध्य भाग में इतना विशाल स्थान मिलना कठिन था । इस कमरे में सभी वस्तुएं बड़ी व्यवस्थित व कलात्मक विधि से सजाई हुई थीं । कमरे के एक कोने में एक ग्रामोफोन तथा उसके रेकार्ड्स रखे हुए थे । ग्रामोफोन तथा रेकार्ड्स एक टेबुल पर जमे हुए थे । रंग-बिरंगे चित्रों से दीवारें भरी हुई थीं । एक कोने में एक राइटिंग टेबुल तथा उस पर सभी प्रकार की आवश्यक स्टेशनरी रखी हुई थी । सनातन ने इसे देखकर यह विचार किया कि सम्भवतया निजी पत्र-व्यवहार के पत्र इसी टेबुल पर ही बैठकर दोसी लिखते होंगे । दीवानखाने की बैठक के बीच में एक दरवाजा था । इससे यह कल्पना सहज ही में की जा सकती थी कि इससे दूसरे कमरे में जाना सम्भव होगा । सनातन ने पहली ही बार इस दरवाजे की ओर देखा । उस दरवाजे की दरारों में से किसी को रंग-बिरंगे कपड़ों में सजा

दुकान पर मुझे बहुत जरूरी काम है इस कारण से घर आना सम्भव नही होगा। मेरा टिफिन कार मे ही रखवा देना तथा सनातन को खाना खिला देना।'

'किन्तु आज तो तुम्हे घर पर ही रहना चाहिए।'

'तुम्हे क्या मालूम है, सर्राफ की दुकान चलाना कोई हँसीखेल नही है! इस पर भी यह बम्बई है! यह कोई गाँव की दुकान नही जो घर-का-घर और दुकान-की-दुकान हो।'

'सर्राफ की दुकान तुम्हारे ही है या दूसरो के भी किसी के होगी?'

'दूसरे के होने और न होने से मुझे कोई मतलब नही? मुझे अपनी दुकान से मतलब है।' इतना कहकर वे खड़े हो गए और अपने वैभव का आतंक जमाते हुए अदा मे बोले :

'पाण्डु।'

'जी।'

'स्नान के लिए पानी तैयार है?'

'जी।' कहकर घाटी चला गया।

'चल, मैं स्नान कर लूं।' कहते हुए दोसी उसके ही पीछे चल दिए। दोसी की चाल से भारी अभिमान की झलक टपक रही थी।

माणिकबेन व दोसी के विचारो के मतभेद को सनातन भलीप्रकार समझ गया। जहाँ एक ओर वे अभिमान-सागर मे डुबकियाँ लेते थे वहाँ इससे एकदम भिन्न माणिकबेन अति ही ऊँचे विचारो की सीधी स्त्री थी। मृदुता, सहृदयता और ममता के कारण सभी लोग उसके लिये पूज्य भाव रखते और वे भी सभी का आदर व प्रेम से सत्कार करती थी।

सनातन का विचार था कि दोसी के स्नान करने के पश्चात् उसका नम्बर आयेगा। दोसी की दुकान पर जाने की बात सनातन को दो कारणो से अच्छी लगी। प्रथम तो दोसी के महान् अभिमानी स्वभाव से संघर्ष को जितना टाला जा सके अच्छा। द्वितीय दोसी की उपस्थिति मे रसीला का मुँह देखना तो दूर उसकी साड़ी का पल्ला भी देख-पाना सम्भव नही था।

दोसी स्नान करने गए कि माणिकबेन ने बाजू की कुर्सी खैंची और सनातन के सामने बैठ गईं। सबकी कुशलक्षेम पूछकर वह बोली :

देखो, तुम्हें बिल्कुल शर्म नही रखनी चाहिए। तुम तो मेरे बेटे हो। मैं तुम्हारी माँ समान हूँ। तुम्हे कभी माँ का स्नेह नही मिला, यह तुम्हे ज्ञात होगा! अब मैं उस स्थान की पूर्ति कर दूंगी। इस घर मे जितना रसीला का अधिकार है उतना ही तुम्हारा है। तुम्हारी जब तक इच्छा हो बम्बई मे रहो

'मुझे तुम्हारी इस प्रकार की कोई बात नहीं समझनी है।'

'किन्तु दुनियाँ तो बदल रही है।'

सनातन विभिन्न विचार के दम्पत्ति के बीच में चल रहे वाद-विवाद को समाप्त करने के उद्देश्य से बात काटते हुए बोला, 'दुनियाँ नहीं बदलती किन्तु बम्बई बदलती होगी।'

'ऐसा ही तब होगा! आज की और कल की दुनियाँ में जमीन आसमान का अन्तर है।'

'होगा, बम्बई की दुनियाँ में।'

'सभी जगहों पर है।'

'यह देश गाँवों का देश है। मात्र बम्बई के बदलने से देश बदल गया या संसार बदल गया ऐसा मानना कितनी बड़ी भूल होगी?'

'यह तो तुम्हीं जब बम्बई में थोड़े दिन रहोगे, घूमोगे इधर-उधर देखोगे तब समझ जाओगे।'

'मैं सब समझता हूँ।'

'गाँव में रहकर मात्र दो पैसे कमाकर समझदारी का मिथ्या दम्भ भरना ठीक नहीं कहा जा सकता है।'

'मैं मिथ्या अभिमान नहीं करता सच कह रहा हूँ।' सनातन ने दृढ़ता से उत्तर दिया।

दोनों का बीच-बचाव करते हुए माणिकबेन बोली, 'लो चाय पी लो।'

'मैं चाय नहीं पीता हूँ।'

'क्या, चाय नहीं पीते?'

'हाँ।'

'आज तो झोंपड़ी से लेकर बँगलों तक 'चायदेवी' की आराधना की जाती है।'

'की जाती होगी!'

'की जाती होगी नहीं, की जाती है।'

'बम्बई में, हमारे यहाँ तो बिल्कुल ही नहीं!'

'ठीक है!'

'ठीक नहीं, बात सच है।' सनातन ने अपनी बात पर जोर देते हुए कहा।

दोनों ने चाय का कप जल्दी से पी लिया।

थोड़ी देर बाद दोनों माणिक-बेन की ओर नजर डालकर बोले, 'आज

'तेजपुर ही चली चलो !'

'अन्न-जल ही में आना-जाना होता है, वैसे नहीं आना होता है ।'

'जब गाड़ी में बैठें तब ही अन्न-जल ।'

'अन्न-जल वैसे थोड़े ही लिए जाते हैं' यदि अन्न-जल हो तो गन्तव्य स्थान पर रहा जा सकता है, अन्यथा बीच से ही लौटना पड़े ।'

'जिस दिन देश में आने की इच्छा हो उस दिन तेजपुर चले आना । तुम्हारा ही घर है ।'

'जैसी भगवान् की इच्छा ।'

माणिकबेन ने वाक्य पूरा किया ही था कि दरवाजा खुला और दोशी स्नान घर से बाहर निकले । माणिकबेन उठकर अन्दर के कमरे में चली गई । दोशी कपड़े पहनकर तैयार हुए और दीवानखाने में आये । अपने छप्पन इंच के लम्बे कोट के बटन बन्द करते हुए माणिकबेन से बात करने के उद्देश्य से बोले ।

'यदि रमीला को अपनी धर्म-बहिन से मिलने भूनेश्वर जाना हो तो कार वापिस भेजूं । अच्छा रहे वह आज मिल आये ।'

सनातन समझ गया कि दोशी नहीं चाहते हैं कि उनकी पुत्री उसके सामने आये इसी के लिए उन्होंने यह योजना बनाई है । इसलिए वह स्वयं ही बोला

'मैं भी तुम्हारे साथ दुकान पर आ रहा हूं ।'

माणिक-माँ बीच में ही बोल पड़ी, सफर की थकावट तो उतार लो । अभी आज-के-आज ही दुकान पर आने की क्या आवश्यकता है ! कल चले जाना आज तो खाना खाकर सो लो ।

दोशी को अपनी पत्नी के बीच में पड़ना अच्छा नहीं लगा । सनातन की मौजूदगी के कारण वह कुछ नहीं बोल सके । यदि ऐसा नहीं होता तो दोशी माणिकबेन को खूब फटकारते । क्रोधमयी मुद्रा में दोशी ने दुकान की ओर पैर बढ़ाना शुरू किया ।

●

ओर खूब घूमो-फिरो, इससे मुझे बहुत शांति मिलेगी !'

सनातन नीचा मुँह किए चुपचाप माणिकबेन के मुँह के वात्सल्यपूर्ण शब्द सुनता रहा। उसके अन्तर में दोसी के शब्दों से जो आग जल रही थी वह माणिकबेन के वात्सल्यपूर्ण शब्दों से शांत होने लगी। उसने माणिकबेन की ओर देखकर कहा।

'बम्बई में बहुत अच्छा लगे ऐसा कुछ भी नहीं है।'

'क्या कहते हो।'

'हाँ माँ ! बम्बई देश के समान नहीं है। रात-दिन हल्ला-गुल्ला व परेशानियाँ !'

सनातन ने अपने मन का सोचा हुआ चित्र माणिकबेन को स्पष्ट बता दिया। उसने आगे कहा, 'तदुपरान्त मैं इस प्रकार के शहर में रहने का आदी नहीं, अतः अच्छा लगना असंभव है।'

थोड़ा घूमोगे-फिरोगे तो अच्छा लगेगा।' इसके साथ-ही-साथ माणिकबेन ने दीवानखाने के दरवाजे की ओर नजर डाली और बोली :

'बेटा रसीला ! तेरे पिताजी जब स्नान कर लें तो पाण्डु को गरम पानी रख देने को कह देना।'

वह समझती थी कि सदा की तरह उसे रसीला से 'ठीक माँ, ठीक !' ऐसी मीठी कूक में उत्तर मिलेगा। अतः उसने पुनः सनातन से बात करना शुरू किया।

'रोजगार कैसा चल रहा है ?'

'परमात्मा की कृपा है।'

'ठीक ! ओतम-माँ तो अब वृद्ध हो गई होंगी !'

'आयु पक चुकी है।'

'अब तो सब ऐसा ही है। मेरे दाँत गिर चुके हैं। इस पर भी वे मुझसे डरी है।'

'ठीक।' सनातन हँसता हुआ बोला।

'उन्हें भी एक बार यह चींटियों-सी आदमियों से बहती नगरी बतलाने लाओ !

'नहीं, माँ, नहीं।'

'क्यों ?'

'वह तो थोड़ी-सी भी नहीं नहीं रह सकती हैं यहाँ।'

'है तो ऐसा ही ! मैं तो खुद ही विचार करती हूँ कि अब गढ़का में जाकर शांति से निवास करूँ।'

इसके साथ ही भीतर से कोयल की कूक सुनाई दी—

'माँ पानी तैयार है।'

'लो उठो! पहले नहाओ और थोड़ी देर आराम करो फिर बातें करेंगे!' कहते हुए माणिक-माँ दूसरे कमरे में चली गई।

सनातन स्नान के लिए बाथरूम की ओर गया। उसके हृदय में रसीला की कल्पनामूर्ति बनी हुई थी। अब तक उसने रसीला का मुँह नहीं देखा था। किन्तु सनातन ने मन-ही-मन विचार किया कि आज दोनों दुकान पर आवश्यक काम बताकर गए हैं, इससे शाम तक जैसे भी होगा वैसे ही वह रसीला की कोकिला-सी वाणी सुन सकेगा। येनकेनप्रकारेण वह रसीला से अवश्य भेंट कर ही लेगा। पर इसी विचार के साथ एक दूसरा विचार उसके मन में आया, कदाचित् वह अपने पिता के समान ही होगी तब! यदि ऐसा होगा तब तो उससे भी तेज होगी। इसी प्रकार के अनेकानेक विचारों में गोता लगाते हुए सनातन ने स्नान किया। जब वह नहाकर बाहर निकला उस समय उसके गठीले सुदृढ शरीर की प्रतिभा इस बम्बई के आलीशान बँगले में देखने ही योग्य थी।

अब तक उसका सामान दीवानखाने में ही रखा हुआ था। मेहमानों के लिए विशेष रूप से बने अलग कमरे में उसको नहीं ठहराया गया था।

सनातन ने अपना सूटकेस ढूँढा और कपड़े बदले। बाल सँवारने के उद्देश्य से उसने इधर-उधर देखा। इसी समय दीवानखाने के बीच का अध-खुला दरवाजा खुला और दरवाजे में-से यौवन के भार से दबी रसीला ने दीवान खाने में पाँव रखा।

'ड्रेयर ऑयल आदि सभी वस्तुओं की व्यवस्था पास के कमरे में है।' सनातन के साथ बातचीत करने के अवसर का सदुपयोग करते हुए रसीला बोली।

सनातन अपनी वाग्दत्ता को पलक बिना झपे देखता रहा। रसीला न तो गोरी ही थी और न काली ही। उसके सुदृढ शरीर में यौवन का उन्माद तैर रहा था। उसके लम्बे, सुन्दर मुँह पर मृदु भाव थिरक रहे थे। लज्जा के बोझ के कारण उसकी आँखों की पलकें नीचे को झुकी हुई थीं।

सनातन ने रसीला के साथ बात करने की कई कल्पनायें संजो रखी थीं परन्तु रसीला के सामने आने पर वह लज्जा का अनुभव करते हुए थोड़ी देर के लिए इस विचार में डूब गया कि आखिर बात किस प्रकार शुरू की जाये।

लम्बे समय के मौन से रसीला और खिली। वह तनिक पास में आई, आँख की पलकें उठाई और साड़ी के पल्ले से बल खाती बोली

मधुर-मिलन

सनातन के कानों में उसके अभिमानी श्वसुर के क्रोधपूर्ण पाँवों की आवाज न जाने कब तक सुनाई देती रही। इसी आवाज में-से उसके अभिमानी स्वभाव के धमके की गूंज हो रही थी।

धीरे-धीरे दोसी के पाँवों की आवाज बन्द हो गई और दूसरे ही क्षण मोटर के इंजन की घरघराहट सुनाई दी। थोड़ी ही देर में वह भी घरघराहट बन्द हो गई। अभिमान व घमण्ड के नशे में चूर दोसी को लेकर कार जैसे ही दूर गई कि पास के कमरे में-से माणिकबेन बाहर निकली और सनातन के पास आकर बैठ गई।

माणिक-माँ ने सनातन को बचपन में भी देखा था, किन्तु इस समय इसके दिल में एक दामाद का संबन्ध बहुत प्रेम उत्पन्न कर रहा था। सनातन के घर में प्रवेश करते ही माणिक-माँ के दिल में उसके लिए पुत्र-सा प्रेम जागृत हो गया था। माणिक-माँ सनातन के प्रति इस गहरे खिंचाव, क्यों और कैसे उत्पन्न हुआ, इसका कारण समझने में असमर्थ थीं। इस पर भी वह हृदय में उठी प्रेम की इस [illegible] भावना को किसी भी मूल्य पर नहीं रोकना चाहती थीं। सनातन की ओर एक वात्सल्यपूर्ण नजर फेंकते हुए माणिक-माँ बोली :

'सनातन भूखा है?'

इसके साथ ही भीतर से कोयल की कूक सुनाई दी—

'माँ पानी तैयार है।'

'लो उठो! पहले नहाओ और थोड़ी देर आराम करो फिर बातें करेंगे।' कहते हुए माणिक-माँ दूसरे कमरे में चली गई।

सनातन स्नान के लिए बाथरूम की ओर गया। उसके हृदय में रसीला की कल्पनामूर्ति बनी हुई थी। अब तक उसने रसीला का मुँह नहीं देखा था। किन्तु सनातन ने मन-ही-मन विचार किया कि आज सेठजी दुकान पर आवश्यक काम बताकर गए हैं, इससे शाम तक जैसे भी होगा वैसे ही वह रसीला की कोकिला-सी वाणी सुन सकेगा। येनकेनप्रकारेण वह रसीला से अवश्य भेंट कर ही लेगा। पर इसी विचार के साथ एक दूसरा विचार उसके मन में आया, कदाचित् वह अपने पिता के समान ही होगी तब! यदि ऐसा होगा तब तो उसमें भी तेज होगी। इसी प्रकार के अनेकानेक विचारों में गोता लगाते हुए सनातन ने स्नान किया। जब वह नहाकर बाहर निकला उस समय उसके गठीले सुदृढ़ शरीर की प्रतिभा इस बम्बई के आलीशान बंगले में देखने ही योग्य थी।

अब तक उसका सामान दीवानखाने में ही रखा हुआ था। मेहमानों के लिए विशेष रूप से बने अलग कमरे में उसको नहीं ठहराया गया था।

सनातन ने अपना सूटकेस ढूँढ़ा और कपड़े बदले। बाल सँवारने के उद्देश्य से उसने इधर-उधर देखा। इसी समय दीवानखाने के बीच का अध-खुला दरवाजा खुला और दरवाजे में से यौवन के भार से दबी रसीला ने दीवानखाने में पाँव रखा।

'हेयर ऑयल आदि सभी वस्तुओं की व्यवस्था पास के कमरे में है।' सनातन के साथ बातचीत करने के अवसर का सदुपयोग करते हुए रसीला बोली।

सनातन अपनी वाग्दत्ता का चेहरा बिना डरे देखता रहा। रसीला न तो गोरी ही थी और न काली ही। उसके सुदृढ़ शरीर में यौवन का उन्माद तैर रहा था। उसके लम्बे, सुन्दर मुँह पर मृदु भाव बिखरे पड़े थे। लज्जा के बोझ के कारण उसकी आँखों की पलकें नीचे को झुकी हुई थीं।

सनातन ने रसीला के साथ बात करने की कई कल्पनायें सँजो रखी थीं परन्तु रसीला के सामने आने पर वह लज्जा का अनुभव करते हुए थोड़ी देर के लिए इस विचार में डूब गया कि आखिर बात किस प्रकार शुरू की जाये।

लम्बे समय के मौन से रसीला और खिजी। वह नज़दीक पास में आई, आँख की पलकें उठाईं और साड़ी के पल्ले में बल लगाती बोली:

'चलिए कमरा बता दूं।

'धन्यवाद।'

'इसमें धन्यवाद प्रकट किस कारण से किया जाये।'

'इस कारण कि अब तुम समझ सकी हो कि मैं इस घर के लिए मेहमान हूं।'

'इसलिए ?'

रसीला अपनी काली पुतलियों को इधरउधर करके सनातन की ओर नजर डालते बोली :

'इसलिए क्यों कर...... ।' कहकर सनातन चुप हो गया

'क्यों कर चुप हो गए ?'

'सुनकर तुम्हें दुःख होगा।'

'कदापि नहीं होगा।'

'सचमुच ही।'

'सचमुच में।'

'मैं सोचता हूं कि मैं ऐसे जन्म से अमीर का मेहमान कदाचित् बनने योग्य नहीं !'

'आपको ऐसा क्योंकर महसूस हुआ ?'

'मेरे प्रति क्षणक्षण में की गई उपेक्षा के कारण।'

'अभी आपको आये देर ही कितनी हुई है जो आप क्षणक्षण की बात करते हो।'

'एक भी क्षण की उपेक्षा क्यों कर सहन हो ?'

'मेहमान यदि बनना हो तो करनी ही पड़ेगी।'

'मैं ऐसा मेहमान नहीं।'

'मैं यह बात भलीप्रकार समझती हूं।'

'यह तो ठीक कि तुम यह जानती व समझती हो, किन्तु तुम्हारे पिता श्रीमान्......।'

'उनकी बात छोड़ दें।'

'किन्तु मुझे कहाँ इस घर के मेहमानों की गिनती में समझते हैं ?'

'दामाद के स्थान पर तो रक्खा है !'

रसीला अपने हँसमुख स्वभाव के कारण यह कह तो गई किन्तु दूसरे ही क्षण लज्जा से उसका मुँह लाल हो गया। सनातन इस सुन्दर चेहरे पर छाए लाल रंग को देखने में कुछ क्षणों के लिए भावविभोर हो गया।

'चलिए पहले आप व्यवस्थित हो जाइये फिर बातचीत होती रहेगी।'

दोनों ही बाद में कमरे में चले गए।

सनातन ने ड्रेसिंग-टेबल के शीशे में अपने बाल सँवारे। फिर वह कमरे में मेहमानों के लिए रखे गए पलंग पर बैठ गया। उसके सामने ही रसीला कुर्सी खींच कर बैठ गई।

इस समय माणिक-माँ पूजा के कमरे में थीं और पाण्डु साग-सब्जी खरीदने के लिए बाजार गया हुआ था।

बँगले का सारा वातावरण शांत था।

रसीला की प्रसन्नता का आज छोर नहीं था। क्योंकि आज कई रातों की व्याकुलता व तड़पन तृप्त हुई थी। कितनी ही रातों उसने सनातन को स्वप्न में देखा था। इसी प्रकार न जाने कितने दिन उसने सनातन की कल्पना में निकाल दिये थे।

रसीला के अन्तर में सनातन की सुन्दर सुदृढ़ देह प्रथम दृष्टि से ही समा गई थी। रसीला को वह रेखाचित्र बिल्कुल अनुचित लगा जो उसके पिताजी ने सनातन के लिए खींचा था। उसे आठ दिन पहले के अपने पिताजी के शब्द याद आये। उनके शब्द थे कि, वह ठेठ गँवारू है। तेनपुर से भूसे गाँव में कहीं रसीला का मन न लगेगा? और इसमें भी उसकी क्या सभ्यता? न तो उसमें पहनने-ओढ़ने की सभ्यता है और न बोलने-चालने की ही। न तो उसमें आचार विचार ही हैं और न शहर की तरह की रीति प्रथायें ही! कहाँ एक ओर रसीला की तेज चालाकियाँ और कहाँ सनातन का ठेठ गँवार। यह तो गलती हो गई। परन्तु अब तो मैं बहुत सोच-समझकर सारा काम करूँगा। अभी क्या बिगड़ा है। रात-दिन घोड़े पर बैठकर घूमता रहता है तथा बदमाश व्यक्तियों से दुश्मनी रखता है। ऐसे मूर्ख व्यक्ति को मैं अपनी इकलौती पुत्री को सौंपने को बिल्कुल भी तैयार नहीं हूँ।

माणिक-माँ भी चुपचाप रसीला व पिता की ऐसी उपेक्षापूर्ण बातें सुनती रही।

सनातन के विषय में खींचे गए रेखाचित्र के विषय में एक भी बात सच नहीं थी। रसीला ने यह सोचा कि पिताजी किसी विशेष कारण से सनातन से असन्तुष्ट हैं और इसी कारण उन्होंने ऐसा अतिशयोक्ति पूर्ण चित्र खींचा है।

बम्बई के रंग-रोग में पोषित युवकों के समान सनातन पर आधुनिक फैशन का प्रभाव कम था परन्तु उसके सुगठित देह की खुमारी कुछ और ही थी। बात करने के तौर-तरीके में अद्भुत व्यक्तित्व का आभास होता था। उसके चेहरे के भावों में मोहकता टपकती थी। उसके रोम-रोम से यौवन का तेज प्रकट हो रहा था। सारा शरीर अति सुन्दर था। अपनी वाक्पटुता से वह लोगों को बातचीत में हरा देता था। काठियावाड़ के गाँव में व्यापार करने

चलिए कमरा बता दूँ।

'धन्यवाद।'

'इसमें धन्यवाद प्रकट किस कारण से किया जाये।'

'इस कारण कि अब तुम समझ सकी हो कि मैं इस घर के लिए मेहमान हूँ।'

'इसलिए?'

रसीना अपनी काली पुतलियों को इधरउधर करके सनातन की ओर नजर डालते बोली:

'इसलिए क्यों कर......।' कहकर सनातन चुप हो गया

'क्यों कर चुप हो गए?'

'सुनकर तुम्हें दुःख होगा।'

'कदापि नहीं होगा।'

'सचमुच ही।'

'सचमुच में।'

'मैं सोचता हूँ कि मैं ऐसे जन्म से अमीर का मेहमान कदाचित् बनने योग्य नहीं!'

'आपको ऐसा क्योंकर महसूस हुआ?'

'मेरे प्रति क्षणक्षण में की गई उपेक्षा के कारण।'

'अभी आपको आये देर ही कितनी हुई है जो आप क्षणक्षण की बात करते हो।'

'एक भी क्षण की उपेक्षा क्यों कर सहन हो?'

'मेहमान यदि बनना हो तो करनी ही पड़ेगी।'

'मैं ऐसा मेहमान नहीं।'

'मैं यह बात भलीप्रकार समझती हूँ।'

'वह तो ठीक कि तुम यह जानती व समझती हो, किन्तु तुम्हारे पिता श्रीमान्......।'

'उनकी बात छोड़ दें।'

'किन्तु मुझे वहाँ इस घर के मेहमानों की गिनती में समझते हैं?'

'दामाद के स्थान पर तो रखा है!'

रसीना अपने हँसमुख स्वभाव के कारण यह कह तो गई किन्तु दूसरे ही क्षण लज्जा से उसका मुँह लाल हो गया। सनातन इस सुन्दर चेहरे पर [illegible] लाल रंग को देखने में कुछ क्षणों के लिए भावविभोर हो गया।

'इसलिए पहले आप व्यवस्थित हो जाइये फिर बातचीत होती रहेगी।'

दोनों ही बाद में कमरे में चले गए।

'आजीवन।'

'यह सम्भव नहीं।'

'तो फिर ऐसा क्यों कर बोलते हो ?'

'यहाँ रहकर मैं क्या करूँगा ?'

'जो सब करते हैं।'

'सब तो वैसे ही परेशानी में रात-दिन निकाल देते हैं। मेरी इतनी शक्ति नहीं, मैं यहाँ कुछ दिन ठहरकर चला जाऊँगा।'

'फिर मेरा क्या होगा ?'

'बम्बई।'

'ऊँ हूँ'—रमोला ने कंधे उचकाये और आँखें बंद कर लीं। सारे कमरे में इससे रमोला के यौवन का उन्माद फैल गया।

'तुम्हें तेजपुर में अच्छा लगेगा ?'

'जहाँ भी तुम रहोगे वहाँ ही मुझे अच्छा लगेगा।'

'पर मैं तो गाँव का रहने वाला हूँ तथा मेरा धन्धा भी मामूली-सा है। मेरे यहाँ न तो कोई नौकर है तथा न कोई चाकर ही। न मेरे पास मोटर है और न गाड़ी ही। गाँव में न तो कोई बाग-बगीचा ही है और न किसी प्रकार की कोई रौनक ही है। यह सब तुम को किस प्रकार से अच्छा लगेगा ? सभी काम करने और कहीं न आना न जाना। मात्र घर में बैठे रहने का काम है।'

'तब क्या तुम मुझे मापने आये हो ?'

'नहीं ऐसा नहीं। मैंने तो तुम्हें केवल एक बात बताई है। इस बात से मैं तुम्हें वस्तुस्थिति समझाना चाहता हूँ।'

'चलिए, बताओ मुझे तुम्हारे घर में क्या-क्या काम करने होंगे ?'

'और तो कुछ नहीं तुम्हें जो काम करना होगा वह है—चौपाल पर आने वाले नित्य प्रति के पाँच-दस मेहमानों की खाने की व्यवस्था करना, गायों का दूध निकलवाना, मवेशियों का मल-मूत्र साफ करवाना तथा प्रातःकाल जो काम करने वाली नौकरानी आती है उसके साथ बैठकर चक्की नहीं चलाना अपितु प्रातःकाल में उससे दोनों गायों को नीरना-पूला डलवाना।'

'मैं सब भलीप्रकार से समझ गई किन्तु यह नीरना-पूला क्या होता है ?'

'गायों का चारा डालना।'

'हाँ, अब सब मैं समझ गई।'

वाला एक युवक इतना चतुर और कुशल हो सकता है इसकी रसीला को कभी कल्पना भी नहीं हो सकती थी। यदि इस मधुर-मिलन से पहले कोई रसीला को यह सब बात कहता तो कदाचित् ही वह विश्वास करती। किन्तु सनातन के प्रथम प्रत्यक्ष-परिचय के कारण उसे वास्तविकता को मानना ही पड़ा।

रसीला की विचार तन्द्रा को तोड़ते हुए सनातन बोला :

'यदि काम हो तो आप चली जाओ।'

'आप' नहीं अपितु 'तू' कहिए। रसीला पलकें इधर-उधर करती हुई कहने लगी।

'ऐसा अधिकार अब तक कहाँ मिला है !'

'अब मिल जायेगा।'

'किसको मालूम है ?'

'क्या तुम्हें इसमें सन्देह है ?'

'हाँ क्यों नहीं।'

'ऐसा क्यों कर।' रसीला ने अति स्नेहपूर्ण नजर से सनातन को देखा और उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी।

'पिताजी के व्यवहार से !'

'इतनी-सी देर में, इतनी सारी कल्पनाओं का ढेर कर लिया।'

'आदमी की परख उसके एक ही वाक्य से की जा सकती है।'

'इतनी अधिक कुशलता के धनी हो ?'

'इसमें कोई कुशलता की बात नहीं। इतनी कुशलता तो एक सामान्य पुरुष की भी होनी ही है।'

'मेरी तो इतनी सामर्थ्य नही परन्तु यह तो स्पष्ट है कि आप मेरे सोचने के अनुसार बहुत ही योग्य प्रतीत हुए।'

'यह तो आपको लगता होगा। वैसे तो गाँव के आदमी बम्बई-सी नगरी में कहीं भी खो सकता है !'

'ऐसा भी सम्भव है।'

'मैं भी तो एक गाँव का ही रहने वाला हूँ।'

'नहीं, मैं यह मानने को तैयार नहीं।'

पास के कमरे से कुछ गुनगुनाहट की आवाज सुनाई दी इससे सनातन का ध्यान उस ओर खिंचा।

'घबराने की आवश्यकता नहीं। माँ की पूजा अभी आधी ही हुई है अभी आधा समय बाकी है। जल्दी से बताओ मेरे लिए कितने दिनों का समय निकाल कर बम्बई आये हो ?'

'जब तक तुम रखो !'

'तुमसे मत कहो, तुझसे कहो।'

'ठीक, तुझे यदि ऐसा अच्छा लगेगा तो मैं ऐसा ही करूँगा।'

सनातन पर विजय पा लेने के असीम आनन्द का उन्माद अनुभव करती हुई वह खड़ी हुई और धीरे से बोली

चलो अब आराम करलो, फिर मैं तुम्हें बम्बई बताऊँगी।'

'मैं तो खुद ही देख लूँगा।'

'ऐसा कहो न कि हम देख लेंगे।'

'किन्तु ' कहते हुए सनातन रुक गया, किन्तु फिर बोला 'कोई देखेगा तब ?'

'तुम तो बहुत ही डरपोक हो।'

'डरने की बात नहीं, प्रतिष्ठा का प्रश्न है।'

'इसमें इज्जत का क्या डर है ? मैं तुम्हारी पत्नी ही तो हूँ।'

'पत्नी नहीं, होने वाली पत्नी।'

'यह तुम्हारी इच्छा। मैं तो हृदय से अपने आपको तुम्हारे समर्पित कर चुकी हूँ समझे।'

यह कहकर रमीला ने सनातन के गाल पर एक हलकी चपत लगाई और दौड़कर वह रसोई-घर की ओर चली गई।

सनातन रमीला की मुग्ध-मनोहर मुखछवि तथा की कल्पना करते हुए लेट गया। किन्तु किन्तु अभी थोड़ी देर पहले के सुखद-क्षण उसको तड़पाने लगे। सनातन थोड़ा सोकर मुसाफिरी की थकान दूर करने का इच्छुक था किन्तु यहाँ तो नींद तथा मधुर कल्पना के बीच तीव्र स्पर्धा उत्पन्न हो चुकी थी। अन्त में कल्पना को विजयश्री मिली। कल्पना ने आँखों की पलकें नहीं मिलने दीं।

'बस, उसके बाद तो आराम से सोना।'

'कहते हुए तनिक लज्जा आती है। ऐसा कहकर उसने अपनी आँखें नीची करलीं।'

'क्यों शर्मा गई?'

'ऐसा क्या कहने होंगे?'

'संसार का ऐसा ही क्रम है न?'

'उस समय की बात उस समय देखी जायेगी, इस समय क्या बात है?'

'मात्र मीठी याद।'

प्रत्येक प्रश्न का बहुत ही रसिकता से उत्तर देने वाला यह सनातन रसीला को बहुत ही अच्छा लगा।

'आप वहाँ क्या काम करते हैं?'

'मैंने पहले भी बता दिया कि धंधा मामूली-सा है। गाँव का बनिया इससे ज्यादा कर भी क्या सकता है!'

'क्या तुमको धन्धा अच्छा लगता है?'

'यदि यह तेल-नमक का मामूली धन्धा अच्छा नहीं भी लगे तो क्या करूँ? पेट को भरना क्या कोई आसान काम है।'

'बम्बई में क्यों नहीं चले आते?' रसीला ने सनातन के मनोभावों पर अपना पासा फेंका।

'मेरा यहाँ कौन मूल्यांकन करने वाला है?'

'यहाँ बम्बई में पिताजी का सम्पर्क क्या कोई कम है?'

'मुझे तो यहाँ आना अच्छा लगता है, परन्तु श्रीमत-माँ को यह अच्छा नहीं लगता है!'

'माँ के साथ वे भी देव-दर्शन करेंगी और रह जायेंगी!'

'तुम्हें अच्छा लगेगा तब……।'

'बस, बस…' कहते हुए रसीला ने सनातन के मुँह पर हाथ रख दिया। इससे छुटकारा पाने के लिए सनातन ने रसीला की अँगुलियाँ पकड़ लीं।

यौवन में मदभरी रसीला का शरीर इससे काँपने लगा। उसने पहले पूरे दरवाजे की ओर एक नजर डाली तथा फिर वह स्थिर दृष्टि से सनातन को देखने लगी। रसीला बोली :

'मेरा हाथ छोड़ो!'

'मैं मुँह को बन्द करने वाले का हाथ मैं क्यों कर छोड़ दूँ। मैं ऐसा अभी नहीं कर सकता।'

'किन्तु मैं तुमसे कह रही थी कि……।'

'क्या?' सनातन ने हाथ छोड़ते हुए कहा।

किया। वे कमरे में घुसी और एक टेबुल को खींच कर उसे मेज की दो तश्तरियाँ रख कर चली गईं। अन्ततः दोसी ने सोचा कि बात को स्पष्ट ही क्यों न बता दिया जाये इसलिए वे बोले :

'तुमने क्या निर्णय किया है ?'

तेजपुर की याद में खोया हुआ गजानन दोसी का अस्पष्ट प्रश्न सुनकर कुछ चौंका। दोसी से प्रश्न करता हुआ वह बोला :

'किस बात के लिए निर्णय ?'

'हमारे घर पर से नजर फेर लेने के लिए।'

गजानन अब बात को भलीप्रकार से समझ गया, फिर भी बात को बहुत ही स्पष्ट रूप से कहलवाने के उद्देश्य से वह बोला :

'श्रीमान् मैं बात नहीं समझ पाया हूँ।'

दोसी तिरस्कार के भाव से बोले :

'मैं बात को जब साफसाफ कह दूँगा तब ही तुम समझ सकोगे।'

'बात तो स्पष्ट ही करना अच्छा है।'

रसीला को जैसे ही पिता और पति के बीच बातचीत होने की जानकारी मिली वह तुरन्त दीवानखाने के दरवाजे की दरार के पास कान लगाकर खड़ी हो गई। गजानन के बोलने से उठ रही आवाज से उसका मन नाच रहा था। वह भाव-विभोर हो गई।

दोसी ने अपनी हथेलियों को रगड़ते हुए कहा, 'बात यह है कि......'

गजानन ने अपनी चमकती हुई आँखें दोसी की आँखों से मिलाना शुरू किया। दोनों ज्यादा देर तक आँख से आँख नहीं मिला सके। नजर नीची करते हुए उन्होंने बात को आगे बढ़ाया।

'तुम्हारे व रसीला के बीच अब बहुत अन्तर हो गया है। मुझे सम्बन्ध करते समय यह आशा नहीं थी कि मेरे और तुम्हारे परिवार के बीच इतना अन्तर हो जायेगा।'

'कैसा अन्तर ?'

'रहन-सहन का।'

'मुझे तो ऐसा बिलकुल ही नहीं लगता है।'

'तुम अपने दृष्टिकोण से देखते हो, हमें अपने दृष्टिकोण से देखना है। मेरी बात ठीक है या नहीं ? रसीला अंग्रेजी की तीन कक्षाएँ पढ़ चुकी है। उसका लालन-पालन बंबई में ही हुआ है। बंबई के जीवन और तेजपुर के जीवन में जमीन-आसमान का अन्तर है।'

पिता की बातों से रसीला का रोम-रोम खिल उठा। वह यह जानने

दो बात कहनी थीं कि मैं तुम्हारी हूँ

सनातन को दोसी के घर आये हुए चार दिन हो गये थे, इन चार दिनों में दोसी ने कभी शांति से बैठकर सनातन के साथ एक घंटे भी बात नहीं की। दोसी वास्तव में बात नहीं करना चाहते थे और इसी कारण से जब भी कभी ऐसा कोई मौका आता तो वे उसे किसी न किसी प्रकार से टाल देने की कोशिश करते। सनातन को भी यह बात अच्छी लगती थी। उसकी यह हार्दिक इच्छा थी कि बिना किसी प्रकार के संघर्ष के वह तेजपुर पहुँच जाये तो अच्छा। वह बम्बई से जल्दी ही निकल जाना चाहता था किन्तु कामिनी का मनमोहक सान्निध्य उसको रोक रहा था। फिर भी उसका मन बम्बई से उचट गया और उसे तेजपुर की याद आने लगी।

आज पाँचवाँ दिन था। सुबह का समय था। दीवानखाने में दोसी और सनातन बैठे हुए थे। दोनों एक दूसरे से बात करने को इच्छुक नहीं थे। उस मौन के कारण अति गम्भीरता दोनों के बीच में छाई हुई थी। सनातन दोसी के अभिमानी स्वभाव के कारण आगे होकर बात नहीं करना चाहता था। दोसी भी सनातन के स्वाभिमानी स्वभाव के कारण आगे होकर बात करने में कतरा रहे थे।

कामिनी ने दोनों के बीच अतीव नीरवता तोड़ने का प्रयत्न

किया। वे कमरे में घुसी और एक टेबुल को खींच कर भुने मेवे की दो तश्तरियाँ रख कर चली गईं। अन्ततः दोसी ने सोचा कि बात को स्पष्ट ही क्यों न बना दिया जाये इसलिए वे बोले :

'तुमने क्या निर्णय किया है ?'

तेजपुर की याद में खोया हुआ सनातन दोसी का अस्पष्ट प्रश्न सुनकर कुछ चौंका। दोसी से प्रश्न करता हुआ वह बोला :

'किस बात के लिए निर्णय ?'

'हमारे घर पर से नजर फेर लेने के लिए।'

सनातन अब बात को भलीप्रकार से समझ गया, फिर भी बात को बहुत ही स्पष्ट रूप से कहलवाने के उद्देश्य से वह बोला :

'श्रीमान् मैं बात नहीं समझ पाया हूँ।'

दोसी तिरस्कार के भाव से बोले

'मैं बात को जब साफसाफ कह दूँगा तब ही तुम समझ सकोगे !'

'बात तो स्पष्ट ही करना अच्छा है।'

रसीला को जैसे ही पिता और पति के बीच बातचीत होने की जानकारी मिली वह तुरन्त दीवानखाने के दरवाजे की दरार के पास कान लगाकर खड़ी हो गई। सनातन के बोलने से उठ रही आवाज से उसका मन नहा रहा था। वह भाव-विभोर हो गई।

दोसी ने अपनी हथेलियों को रगड़ते हुए कहा, 'बात यह है कि ... '

सनातन ने अपनी चमकती हुई आँखें दोसी की आँखों से मिलाना शुरू किया। दोनों ज्यादा देर तक आँख से आँख नहीं मिला सके। नजर नीची करते हुए उन्होंने बात को आगे बढ़ाया।

'तुम्हारे व रसीला के बीच अब बहुत अन्तर हो गया है। मुझे सम्बन्ध करते समय यह आशा नहीं थी कि मेरे और तुम्हारे परिवार के बीच इतना अन्तर हो जायेगा।'

'कैसा अन्तर ?'

'रहन-सहन का।'

'मुझे तो ऐसा बिल्कुल ही नहीं लगता है।'

'तुम अपने दृष्टिकोण से देखते हो, हमें अपने दृष्टिकोण से देखना है। क्यों बात ठीक है या नहीं ? रसीला पर्वेजो की शान बनाये पड़ी है। उसका लालन-पालन बम्बई में ही हुआ है। बम्बई के जीवन और तेजपुर के जीवन में जमीन-आसमान का अन्तर है।'

पिता की बातों से रसीला का रोम-रोम सिहर उठा। वह घर आने

को प्रति उत्सुक हुई कि अन्ततः पिताजी की क्या इच्छा है ! उसने बातचीत से यह तो अनुमान लगा लिया था कि पिताजी तेजपुर व बम्बई के सम्बन्ध-विच्छेद के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे हैं। इस प्रकार का अनुमान रसीला ने अपने पिता के गत चार दिनों के व्यवहार से लगाया था। उसके मन में अनेक विचार आने लगे। उसने मन ही मन विचार किया कि सभी प्रकार मान-मर्यादा तोड़ कर दीवानखाने में चली जाऊँ और पिताजी को सब बात साफ-साफ बता दूँ कि मेरे दिल में बम्बई की अपेक्षा तेजपुर के लिए अधिक जगह है, किन्तु ऐसा करने का वह साहस नहीं कर सकी। दीवानखाने में हो रही बातचीत आगे चली।

'तुम्हें यहाँ बुलवाने का सबसे प्रमुख कारण यही था कि बात स्पष्ट रूप से कर ली जाये। झँवरसेठ की जिन्दगी में ही मैं इस बात को स्पष्ट करना चाहता था किन्तु दुःख का विषय है कि बात को आज-कल पर टालने में ही समय बीत गया।'

'तब फिर तेजपुर क्या कोई दूर थोड़े ही था ! वहाँ पर तो दरवाजे सदा ही खुले थे, आप चले आते।'

'मैं तुम्हारी बात मानता हूँ और मैं तेजपुर आ भी सकता था, किन्तु मेरा इरादा था कि मैं तुम्हें एक बार रसीला से मिला दूँ जिससे वह यह न सोच सके कि मैंने यह सम्बन्ध व्यर्थ में ही तोड़ दिया होगा। मेरी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि रसीला अपने तथा तुम्हारे आधुनिक व गाँव के जीवन के अन्तर को भली प्रकार से समझ जाये।'

रसीला पिता की ऐसी बात सुनकर सन्न रह गई। उसका विचार था कि सनातन का जीवन बम्बई के किसी भी आधुनिक युवक से किसी भी प्रकार से कम नहीं है, अपितु सनातन में उसे एक अच्छा व्यक्तित्व दिखाई देता था। [illegible] यह बात तो अक्षरशः सत्य थी कि वह उससे कम पढ़ा हुआ है। किन्तु उसके हृदय की तड़पन सनातन के कम पढ़े होने की बात को भली-प्रकार से सहन कर जाती थी। वह यह नहीं सोच पा रही थी कि उसके पिताजी इस बात को क्यों नहीं समझ पा रहे हैं !

हृदय में बहुत बेचैनी होते हुए भी वह दरवाजे की दरार पर कान लगा कर बैठी नहीं थी बैठी ही रही। माणिक-माँ अब तक पूजा के कमरे में आ चुकी थी। जीवन भर कठोर परिश्रम करने के उपरान्त भगवान् की इस दया से उनका हृदय महान् और नम्र हो गया था। माणिक-माँ की यह धारणा थी कि यह सब सुख और वैभव परमात्मा की असीम कृपा का ही फल है और इसी कारण वह ज्यादातर पूजा-पाठ में ही व्यस्त रहती थी।

जैसे ही उसने आँखें खोलीं रसीला सामने खड़ी थी। उसके मुँह पर काली रेखायें छाई हुई थीं। रसीला को इस प्रकार शोकमग्न देखकर माणिक-माँ के हृदय में एक गहरी चोट लगी। उसने अपने सरल हृदय से सोचा कि कहीं दामाद ने तो कुछ नहीं कह दिया है। वे एक पल भी रसीला को इस स्थिति में नहीं देख सकीं। उन्होंने माला को एक ओर रखते हुए अधीरता से पूछा :

'बेटी, क्या बात है ?'

'माँ मेरा भाग्य मिट्टी में मिलने को है और तुझे इस समय भी माला के मनके फेरने से अवकाश नहीं है।'

'बेटी, यह मनकों का जाप ही तेरे भाग्य की रक्षा करेगा, किन्तु बात क्या है, यह तो पहले बता ?'

'माँ उठ, दीवानखाने में जा और वहाँ जो कुछ हो रहा है वह सुन।'

रसीला के कहने से माणिक-माँ को कुछ भी बात समझ में नहीं आई किन्तु यह सोचकर कि उसके पति तथा दामाद के बीच कुछ बात चल रही होगी, खड़ी हुई और दीवानखाने की ओर चल पड़ी। उसे दोसी के शब्द सुनाई पड़े

'मुझे अपनी लाड़ली को घर से पाँव तक बाहर नहीं निकालना। मैं अपनी बेटी को घर में ही रखना चाहता हूँ। इससे ही तुम सब बात समझ जाओ। व्यर्थ में बात को बढ़ाना मैं उचित नहीं समझता हूँ।'

दामाद का भी वैसा ही उत्तर सुनाई पड़ा: 'तब इसका मतलब है आप मुझे घर जवाँई रखना चाहते हैं, ऐसा कहिए न ?'

'हाँ बात यही है।'

दोसी के इन शब्दों के साथ ही माणिक-माँ दीवानखण्ड में घुसी। दोसी के चेहरे पर जितना घमण्ड दिखाई देता था, उतनी ही गम्भीरता माणिक-माँ के चेहरे पर दृष्टिगत हो रही थी। दोनों के स्वभाव में जमीन-आसमान का अन्तर था, फिर भी जीवन भर बिना एक शब्द कहे, दोसी के सुख-दुःख में साथी बनकर माणिक-माँ ने अब तक की जीवन-नैया पार की थी। इस पर किसी दूसरे की उपस्थिति में एक भी शब्द न बोलने वाली माणिक-माँ के धैर्य का बाँध आज टूट गया और वह बोली :

'यह सब क्या हो रहा है ?'

'यह रसीला के सम्बन्ध में आखिरी बात हो रही है।'

'परन्तु ऐसी आज ही क्या जरूरत है ?'

'क्यों, क्या अब रसीला कोई बच्ची नहीं है ?'

'[illegible] के बीच के दरवाजे का सहारा लेकर खड़ी हुई रसीला के [illegible] उठे : 'रसीला अब बच्ची नहीं है।' उसने अपने

हिम्मत थी कि वे इस प्रकार की अनर्गल बातें दोसी के सामने कर पातीं।

'इसमें थोड़े दिन की बात नहीं, सनातन को तो बम्बई में रहना ही पड़ेगा। यदि बुढ़िया को खाने-कपड़ों की आवश्यकता हो तो इसका सारा प्रबन्ध दुकान से कर दिया जायेगा। किन्तु दामाद को आखिरकार तेजपुर भूलना ही होगा।'

प्रत्यक्ष रूप में तेजपुर की इस प्रकार की उपेक्षा सुनकर सनातन को गुस्सा आना स्वाभाविक था किन्तु गुस्से को दबा कर वह चुपचाप सब सुनता रहा। वातावरण में थोड़ी देर अति गम्भीरता छाई रही।

रमीला अति कटु बात को भी धड़कते हृदय से गम्भीरता से सुनती रही। उसकी यह मान्यता थी कि सनातन घर जवाँई रहना मंजूर कर लेगा। गाँव की अपेक्षा इस बम्बई में क्या बुराई है! वहाँ तेल-नमक का व्यापार करने की अपेक्षा यह वैभवता क्या बुरी है! उसे लेशमात्र भी तेजपुर की खियानत का भान नहीं था। यदि एक बार हाँ कहने मात्र से ही वातावरण शांत हो जाये तो सनातन को ऐसा करने में क्या बाधा है! यह रमीला का कोमल मन नहीं समझ पा रहा था। एक बार हाँ कहने के बाद यदि तेजपुर ही रहना हो तो विवाह के बाद कौन उसे ऐसा करने से रोक सकता है! उसने सनातन को सलाह देने का विचार किया परन्तु सलाह देने का अवसर ही कहाँ था और अब ऐसा मौका मिलेगा या नहीं यह भी एक प्रश्न था!

थोड़ी देर के मनोमंथन के पश्चात् एक उड़ती नजर से पूज्यनीय भाव से माणिक-माँ के पुनीत चेहरे को देखकर और दूसरे ही क्षण मकड़ी के जाले-समान झुर्रियों से भरे दोसी के चेहरे को देखकर सनातन बोला :

'दोसी!'

सनातन की बात को सुनने के लिए दोसी ने अपने कान सनातन की ओर लगाये। परिस्थिति को देखते हुए उसने मन में विचार किया व्यर्थ में ही गुस्सा कर रहा है! यदि घर-जवाँई रहना स्वीकार कर ले तो मेरी भी दूसरे घर खोजने की फिक्र मिट जाये। ओहम-माँ वृद्धा के लिए पांच दस यदि देने भी पड़ें तो दोसी अपनी पुत्री के सुख के लिए यह हानि उठाने को सहर्ष तैयार है।

दोसी ने जैसे ही सनातन की बात सुनने को कान लगाए कि सनातन के [illegible] से शब्द फूट दिए : 'दोसी, तेजपुर तो मुझे प्राणों-सा प्यारा है।'

इन शब्दों की ध्वनि दीवानखाने के कमरे के दरवाजे से बाहर निकल कर रमीला के कानों पर [illegible] लगी।

'माणिक-माँ दोसी के ये शब्द सहन नहीं कर सकी। वह बोली :

'थोड़ा बात पर विचार करो। यह कोई बच्चों का खेल नहीं जो इस प्रकार की बात से बदगोई करने बैठे हो।'

'एक बार कह दिया। बात को हजार बार कहलवाने से व्यर्थ में कोई लाभ नहीं हो सकता है।'

'घर की प्रतिष्ठा का भी तुम्हें भान है या मात्र अपनी बात पर अड़े रहना ही जानते हो?'

'मेरे लिए पहले अपनी लाड़ली तथा फिर प्रतिष्ठा! मुझे अपनी लाड़ली को दुःखी करके अपनी प्रतिष्ठा नहीं बनाये रखना है।'

रसीला को अपने दुःख-सुख की चिन्ता करने वाले पिता पर बहुत गुस्सा आया। वह इसलिए मन ही मन दुखी थी कि उसके दुःख-सुख के लिए उसे कोई नहीं पूछ रहा है। पिता तो शायद यह नहीं पूछें किन्तु माँ भी नहीं पूछती है कि इस विषय में मेरी क्या इच्छा है? परन्तु रसीला की मनोदशा समझने के लिए इस समय कौन बेकार बैठा था! दोसी का तो यह विचार था कि रसीला प्यारे पिता का प्यार और वैभवता छोड़कर एक ग्रामीण युवक के साथ लग्न करने को किसी भी दशा में तैयार नहीं होगी। तथा इसी कारण दोसी ने सनातन को दो टूक जवाब दे दिया। सनातन को अब एक भी क्षण दोसी के घर ठहरने में स्वाभिमान को बनाये रखना असुरक्षित प्रतीत हुआ।

[illegible] का कोई भी व्यक्ति सनातन और दोसी की बीच की बात सुनता तो दाँतों तले अँगुली दबाये बिना नहीं रहता। कभी भी अपमानजनक एक शब्द सहन न करने वाला सनातन दोसी के सभी अपमानजनक शब्द चुप-चाप सुनता रहा……मात्र [illegible] के वचनों को पालने के लिए। वह जल्दी से खड़ा हुआ और दीवानखाना छोड़कर जाने को तैयार हुआ। उसके पीछे-पीछे दोसी भी खड़े हुए। यदि दोसी न उठे होते तो रसीला सनातन को दो शब्द कहना चाहती थी कि मैं तुम्हारी हूँ। किन्तु दरवाजे से बाहर निकलते समय तक दोसी सनातन को घूर-घूर कर देखते ही रहे। दोसी सनातन को इतनी [illegible] से देख रहे थे मानो वे कुछ भी समझने या विचारने का अवसर सनातन को देना ही नहीं चाहते हों।

अकथनीय : असहनीय

सनातन के उत्तर से रसीला बहुत उदास हुई। उस पर भी सनातन के विछोह से रसीला के दिल पर उदासीनता छा जाना अत्यधिक स्वाभाविक था। किन्तु इस प्रकार से विदा हुए सनातन ने रसीला के हृदय में छेद कर दिए। उसे अपना जीवन भाररूप प्रतीत हुआ। उस पर भी सनातन जिस स्थिति में दोसी के घर से गया था, जिन परिस्थितियों की आंधी उसके सम्मुख आई थी, उससे सनातन के हृदय को कितना धक्का लगा होगा, उसकी कल्पनामात्र से ही रसीला का रोम-रोम कांप गया। घर में प्रातःकाल से दोपहर तक ऐसा ही वातावरण छाया हुआ था। सनातन के घर से बाहर जाते ही दोसी भी अपनी दुकान पर चले गए। तथा खाना खाने के लिए भी मना कर गए थे, इसलिए टिफिन भी दुकान पर नहीं भेजा था।

पिता के दुकान पर चले जाने के बाद रसीला भग्न हृदय से अपने शयन खण्ड में जाकर लेट गई। उसका हृदय टूट चुका था। उसके हृदय में व्याकुलता थी। उसका मन विषाद के तूफान में चक्कर काट रहा था। उसे कोई मार्ग नहीं सूझ पड़ रहा था मानो उसने अपनी विचार-शक्ति ही खो दी हो। वह पलंग पर लेट गई। दुःख के असह्य भार से दबी हुई उसकी अन्तरात्मा के प्रवाह में आतुरता की धाराएं फूट पड़ीं। उसका मस्तक उसके दुपट्टे पर

'माणिक-माँ दोसी के ये शब्द सहन नहीं कर सकी। वह बोली :

'थोड़ा बात पर विचार करो। यह कोई बच्चों का खेल नहीं जो इस प्रकार की बात से बदगोई करने बैठे हो।'

'एक बार कह दिया। बात को हजार बार कहलवाने से व्यर्थ में कोई लाभ नहीं हो सकता है।'

'घर की प्रतिष्ठा का भी तुम्हें भान है या मात्र अपनी बात पर अड़े रहना ही जानते हो ?'

'मेरे लिए पहले अपनी लाड़ली तथा फिर प्रतिष्ठा ! मुझे अपनी लाड़ली को दुःखी करके अपनी प्रतिष्ठा नहीं बनाये रखना है।'

रसीला को अपने दुःख-सुख की चिन्ता करने वाले पिता पर बहुत गुस्सा आया। वह इसलिए मन ही मन दुखी थी कि उसके दुःख-सुख के लिए उसे कोई नहीं पूछ रहा है। पिता तो शायद यह नहीं पूछें किन्तु माँ भी नहीं पूछती है कि इस विषय में मेरी क्या इच्छा है ? परन्तु रसीला की मनोदशा समझने के लिए इस समय कौन बेकार बैठा था ! दोसी का तो यह विचार था कि रसीला प्यारे पिता का प्यार और वैभवता छोड़कर एक ग्रामीण युवक के साथ लग्न करने को किसी भी दशा में तैयार नहीं होगी। तथा इसी कारण दोसी ने सनातन को दो टूक जवाब दे दिया। सनातन को अब एक भी क्षण दोसी के घर ठहरने में स्वाभिमान को बनाये रखना असुरक्षित प्रतीत हुआ।

तेजपुर का कोई भी व्यक्ति सनातन और दोसी की बीच की बात सुनता तो दांतों तले अंगुली दबाये बिना नहीं रहता। कभी भी अपमानजनक एक शब्द सहन न करने वाला सनातन दोसी के सभी अपमानजनक शब्द चुप-चाप सुनता रहा……मात्र झवेरसेठ के वचनों को पालने के लिए। वह जल्दी से खड़ा हुआ और दीवानखाना छोड़कर जाने को तैयार हुआ। उसके पीछे-पीछे दोसी भी खड़े हुए। यदि दोसी न उठे होते तो रसीला सनातन को दो बात कहना चाहती थी कि मैं तुम्हारी हूँ। किन्तु दरवाजे से बाहर निकलते रहने तक दोसी सनातन को घूर-घूर कर देखते ही रहे। दोसी सनातन को इतनी [illegible] से देख रहे थे मानो वे कुछ भी समझने या विचारने का अवसर सनातन को देना ही नहीं चाहते हो।

●

होगी इस विचार से उसकी देह के टुकड़े-टुकड़े होने लगे थे। अपमानित हुआ यह स्वाभिमानी युवक अब कौनसा मार्ग ग्रहण करेगा, इसकी कल्पना से रमीला बहुत दुखी हो गई। वह कुछ निर्णय करे या कर बैठे इससे पहले रमीला गजानन से व्यक्तिगत रूप से मिल लेना चाहती थी। उसका मन मिलने को बहुत व्याकुल हो रहा था। किन्तु बम्बई व तेजपुर के बीच में कितना अन्तर था। यह अन्तर मानो देश-विदेश सा था।

रसोई बन चुकने पर रसोई में बैठे-बैठे ही माणिक-माँ ने रमीला को आवाज दी। परन्तु जब बहुत देर तक उत्तर नहीं मिला तो वह उठकर खुद ही कमरे की ओर चल दी। कमरे के दरवाजे वैसे ही बन्द थे। दरवाजा खोलकर जैसे ही माणिक-माँ कमरे में घुसी उन्होंने देखा कि रमीला पलंग पर पड़ी हुई थी, उसके कपड़े बड़े अव्यवस्थित हो रहे थे। सिर के बालों की लटें तकिए के दोनों ओर पड़ी हुई थी।

माणिक-माँ को यह देखकर अति आश्चर्य हुआ—एकाएक रमीला को क्या हो गया! यह सोचती हुई वे पलंग के पास आईं। जैसे वे पलंग के पास आईं उनको भान हुआ कि रमीला रो रही है। वे पलंग पर बैठी और रमीला की गर्दन पीठ पर हाथ फेरने लगी। रमीला इससे पहले से ज्यादा रोने लगी।

'आखिर बात है क्या?'

'कुछ नहीं।' रमीला ने गुस्से में कहा।

'किसी ने कुछ कहा?'

'नहीं।'

'तब फिर रो क्यों रही है?'

'जैसे तुझे कुछ ज्ञान ही नहीं।'

माणिक-माँ परिस्थिति से बिल्कुल अनजान थी इसलिए वे घबराईं और चिन्ता-मग्न चेहरे से वे बोली .

'साफ बताओ तो कुछ समझ में आए।'

'मुझे किसी को कुछ भी नहीं कहना और न समझाना ही है।'

'यह पिताजी क्या उनसे सम्बन्ध कुछ कह गए?'

'नहीं।'

'तब क्या दामाद ने कुछ बात और बताई?'

'आखिर तुम सब उनके क्यों कर पीछे पड़े हुए हो! कोई व्यक्ति दो दिनों के लिए बम्बई में आकर तुम्हारा यदि सम्मान करता चाहे तो तुम लोग उसको अच्छी तरह से नहीं रख सकते हो! आखिर गजानन ने तुम्हारा .... भी क्या लिया है?'

पड़ रहा था। रसीला का सारा मुँह नयनों के पानी से भीग रहा था। आँखों मे अविरल पानी आ रहा था। जीवन में सब ओर सदा ही आनन्द व प्रसन्नता का वातावरण देखने वाली इस अबोध बालिका को इस बात का क्या पता कि जीवन एक प्रकार का नाटक है। इस नाटक में कई रंग के रंगबिरंगे पर्दे लगे हुए हैं। यह अस्थिर, असमान तथा सदा ही बदलती रहती प्लास्टिक के वस्तुओं के समान है। यह सुन्दर है किन्तु भयंकर भी। इस नाटक में मानव जहाँ एक ओर आनन्द में बह जाता है वहाँ दूसरी ओर शोक, परिताप व दुःख के अथाह सागर में गोते भी खाता है। यह अच्छा लगता है और फिर भी मानव-मन में इसके लिए शून्य भाव सदा ही उत्पन्न होता रहता है। तदुपरांत भी यह नाटक सर्व प्रिय होता है।

रसीला को ऐसे आनन्दमय जीवन में रोने की, वह भी इतनी जल्दी से, कभी स्वप्न में भी आशा नहीं थी! उसके मन वेदना की आग भड़क उठी। वह यह समझने में असमर्थ थी कि उसके पिता आखिरकार यह सब किस कारण से कर रहे हैं वे माँ की एक भी बात पर क्यों कर ध्यान नहीं देते हैं! मेरी राय इस विषय में क्यों कर नहीं ली जाती है! ऐसे मेरे पिता के हृदय में मेरे हित की कौनसी बात घर किए हुए है। जैसेजैसे वह अपनी परिस्थिति की कल्पना में डूबती गई वैसे ही वैसे उसका हृदय दुःख व अपनी असह्य स्थिति से पत्ते सा काँपने लगा। कल ही, इस घर के ही एक खण्ड में बैठकर सनातन के साथ भावी जीवन के कैसे-कैसे सुन्दर स्वप्नों की कल्पना की गई थी। हर्ष में वह कैसी विभोर हो गई थी! हाय, वह सब कहाँ खो गया! वह मानो किसी को ढूँढ़ रही हो, इस विश्वास से कि शायद उसकी नष्ट-भ्रष्ट हुई स्वप्न-सृष्टि का उसे एक कण भी मिल जाये तो वह अपना अहो-भाग्य समझे। अपने सारे शरीर को अपनी कोहनियों के बल पर डाल कर उसने इधर-उधर नजर डाली। किन्तु सारे कमरे में मात्र अलमारी में लगे काँच में अपने मुरझाये चेहरे के सिवाय उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। एकान्त की शून्यता से वह काँप उठी और पुनः उसने अपने दोनों हाथों से अपना चेहरा छिपा लिया। वह जोर-जोर से रोने लगी। माणिक-माँ इस समय बाहर गई थी। इस कोमल व सरल स्वभाव की स्त्री को कैसे कल्पना हो कि इस बात का प्रभाव रसीला पर ऐसा बुरा पड़ेगा!

रसीला के जलते हुए अन्तःकरण में क्षण-क्षण में आग के निःश्वास [illegible] निःश्वास कमरे की दीवारों से टकरा कर विलीन होते जा रहे हैं।

[illegible] ने [illegible] ठीक किन्तु मेरे लिए उसने कैसी कल्पना की

'तब तो ठीक । अब सबके लिए यदि घर नई बहू रखी जाती है तो इसे मुझ पर कुटिलता या दुष्टता ही कहा जायगा ।'

रोने से रसीला की आँखें लाल हो गई थीं । उसकी सूजी हुई आँखों में अभी तक भी पानी भरा रहा था ।

'बात को किसी प्रकार समाप्त करने के उद्देश्य से मानिक-माँ कहने लगी, 'बेटी, चल भोजन तो कर ही ले । जैसा भाग्य में लिखा होगा वैसा ही जायेगा । बेटा, इस प्रकार के उत्पात करने से तबीयत ज्यादा खराब हो जायेगी ।'

'नहीं, आज मुझे खाना नहीं खाना है ।' कहते हुए उसने यौवन की चरम सीमा पर पहुँची देह को पलंग पर डाल दिया । मानिक-माँ ने जिस रसीला को कई वर्षों तक गोद में उठाया था, आज भी वह रसीला उसको छोटी-सी बालिका सी प्रतीत हो रही थी । आँसुओं से भरे गालों को अपने छोर से पोंछते हुए वह बोली,

'बेटा, जितनी इच्छा हो उतना ही खा ले । आज ही तो सारी बात तय नहीं हो रही है ?'

'नहीं, मुझे खाना नहीं खाना है ।'

रसीला लगातार नहीं का उत्तर दे रही थी । मानिक-माँ यह भली-प्रकार जानती थी कि रसीला एक जिद्दी स्वभाव की लड़की है और इसको मनाने की शक्ति तो परमात्मा में भी नहीं है । वह उठकर रसोई घर में चली गई । इस घर में गत पन्द्रह वर्षों में कभी झगड़ा-फसाद नहीं हुआ था और इसके घर का वातावरण कभी अशान्त नहीं रहा था । मानिक माँ के हृदय में इस नए प्रसंग ने भारी उत्पात कर दिया था । वह भी बिना कुछ खाए पीए अपने कमरे में गई और जाकर चुपचाप सो गई । धीरे धीरे मन में कई विचार आने लगे । पुत्री के अन्तर्मन की व्यथा से मानिक माँ बड़ी ही व्याकुल हो रही थी । अब तक के लगातार सुखी जीवन में मानो आज से सिर्फ दुःख में डूब रही थी ।

रसीला उधर अपने कमरे में लगातार करवटें बदल रही थी । लगातार रोने से उसकी अश्रु थैली सूख गई थी और इस दुःखद प्रसंग को भुलाने के लिए वह स्वयं भी कुछ पढ़ने को उत्सुक हो गई थी । इस प्रकार से कुछ पढ़ने का निर्णय लेकर वह उठी हुई । अब उसने अलमारी खोलकर उसमें से एक उपन्यास निकाला । यह उसे सब उपन्यास प्यारे लगते । उपन्यास उसने खोलकर दो तीन पृष्ठ ही पढ़े थे कि दरवाजे पर दस्तक हुई । उसने उपन्यास को रखा ही, उल्टा रख दिया तथा बालों का जूड़ा ठीक करते दरवाजा खोलने चली । वह मन ही मन हड़बड़ाने लगी । कौन था दरवाजे पर

अब माणिक-मां को बात समझने में समय नहीं लगा। वे शीघ्र ही परिस्थिति को समझ गई। उन्हें विश्वास हो गया कि रसीला ने दीवानखाने की एक-एक बात सुनली है। रसीला की पीठ पर प्रेम से हाथ फेरते हुए माणिक-मां बोली: 'हम यह सब तेरे भले के लिए ही तो कर रहे हैं।'

'किन्तु, मां मुझे इसमें मेरा हित नहीं दिखाई देता है।'

'तब क्या तेरे पिताजी, पिता होकर बुरा सोच सकते हैं?'

"मैं कब कहती हूँ। सुख-दुःख ईश्वराधीन हैं किन्तु मां, थोड़ा सोच, इस प्रकार से किसी को लज्जित करने में हम लोगों की कौनसी शोभा होती है!'

'यह तो तेरे पिताजी का स्वभाव ही ऐसा ही है, हजार बार मना करने पर भी वे कब किसी की मानते हैं।'

'स्वभाव घर के मनुष्यों के लिए ही ठीक हो सकता है, इसमें अन्य व्यक्ति क्या समझे?'

'वह पराया तो नहीं था!'

'तुम सब तो उसे गैर आदमी ही मानते हो।'

'मैं तो ऐसा नहीं मानती, किन्तु तेरे पिताजी के आगे मेरी कुछ भी सामर्थ्य नहीं। वह तो सदा से ही लकड़ी के समान अकड़ते रहे हैं! सनातन को आखिर यहां रहने में क्या कष्ट था! तेजपुर की उस छोटी-सी दुकान में आखिर क्या रक्खा है जिसको वह गले से बँधी ही रखना चाहता है!'

'मां, सच कहा जाय तो सबको अपना घर अच्छा लगता है। चाहे वह मिट्टी ही का क्यों न हो। दूसरों के बँगले या आलीशान महल उसके लिए कोई महत्त्व नहीं रखते हैं।'

'परन्तु यह सब भी तो तेरा ही है। हम लोग इसे अपने सिर पर लादकर तो कहीं ले जाने वाले नहीं। तदुपरान्त तुझे तेजपुर में एक भी दिन अच्छा नहीं लग सकता है।'

'मां, यह तो सब बाद की बातें हैं। परन्तु इस समय ऐसा बखेड़ा [illegible] किसी को वाणी से बेधने या जलाने से क्या लाभ है?'

'तेरे पिताजी ने अन्तिम निर्णय किया है कि यदि संबन्ध रखना ही है तो तेजपुर को छोड़कर यहीं आ जाये। यदि ऐसा न किया जाये तो संबन्ध टूटा हुआ समझना चाहिए।'

'मां क्या किसी पर इस प्रकार से दबाव डालना उचित है? क्या सगाई करते समय ऐसी कोई शर्त रखी गई थी?'

'नहीं, उस दिन तो……' कहते-कहते माणिक-मां बात को टाल गई। [illegible]

पर दोनों हाथ रखकर इस मूर्ख के प्रश्न-उत्तर सुन रही
...ाचा कि आखिर यह मूर्ख कहाँ से आ गया। यह युवक
। किन्तु वह नहीं जान सकी।
...ो आज्ञा होते ही रसीला पानी लाई और पानी का
...ार को सौंप दिया। किन्तु रसीला की उपस्थिति में यह
। मानो क्षोभ अनुभव कर रहा हो, वैसे ही जल्दी से आधा
...ी पीकर, गिलास उसने रसीला को दे दिया।
। सब कुशल-मंगल है ?' माणिक-माँ ने कुशल-क्षेम पूछी

...पा से सब ठीक है।'
...ो भगवान् की, देश में धधा-पानी कैसा है ?'
...दादीजी ! आप देश की क्या बात करती हैं ! देश में तो एक
...ूसरे साल खराब, आप ही देखिए इसमें धंधा-पानी कैसा चलता
...ा ठीक है, बाप-दादों का गाँव नहीं छोड़ा जा सकता है।'
...ी परेशानी है। गाँव में भूख से मरना स्वीकार है किन्तु गाँव
...र नहीं रहना जाता है।'
...ोना झट से समझ गई कि माँ ने जानबूझकर शब्द किस उद्देश्य से
...ान को मालूम करने के लिए कहे थे, फिर भी वह चुप रही।
...ा सब लोग पुरानी लकीर के फकीर हैं।' रसीलाल ने अपना
...ाने के उद्देश्य से कहा।
...ीक के फकीर' शब्द का मतलब रसीला नहीं समझ पाई। अत
...र हँसते हुए उसने कहा
'भाई ! क्या कहा ?'
इस भाई शब्द से रसीलाल चौंका। वह जानता था कि यह बम्बई भ
...रे जाने से आया है तथा रसीला के मुँह से भाई शब्द सुनकर वह मन-
...। व्याकुल हो उठा।
रसीला को रसीलाल का इस प्रकार का बिना सिर पैर का आचरण
...। देखकर बड़ा आनन्द आया। कई साल से बराबर बम्बई में ही रहने क
...न कभी भी उसकी भेंट ऐसे युवक से नहीं हो पाई थी इससे उसे यह सब
...कर आश्चर्य हो रहा था। साथ-ही-साथ वह सोचती थी, और
दोनों ही हैं—मूँदारा व तेजपुर। फिर भी दोनों युवकों के बीच कितना
...न्तर था। जहाँ एक ओर बम्बई के किसी योग्य युवक को पीछे रखने की
...मता सनातन में थी वहाँ दूसरी ओर रसीलाल में ऐसी चतुराई व चतुरता
...ो भर भी नहीं थी। अब उसे यह बात याद आ गई कि जिताजी मूँदारे के

लगी होने पर भी दस्तक देने की क्या आवश्यकता होगी ! 'मूर्ख नहीं तो !' कहते हुये उसने गुस्से में दरवाजा खोला।

सामने एक युवक खड़ा था। युवक के हाथ में लोहे का एक छोटा-सा सन्दूक था। युवक के सिर पर काली टोपी थी। शरीर पर चोगा और धोती थी। यात्रा के कारण युवक के कपड़े बड़े गन्दे हो गये थे। उस को देखकर रसीला को एकदम घबराहट हुई। फिर भी इसी स्थिति में उसने युवक से पूछा : 'किससे मिलना है ?'

युवक बोला : 'दुर्लभदोसी का मकान क्या यही है ?'

'हाँ, दोसीजी आपको इस समय दुकान पर मिलेंगे। वे इस समय घर पर नहीं हैं।'

'किन्तु यहाँ आयेंगे तो अवश्य ?'

'रात में आयेंगे, आप तब आइयेगा।'

'परन्तु मैं तो मेहमान हूँ।'

'दरवाजे पर कॉल-बेल थी फिर दरवाजे पर दस्तक देने की क्या जरूरत थी ?'

'कॉलबेल यह क्या ? मैं कुछ नहीं समझ पाया।'

'बेवकूफ़ !'

आगन्तुक युवक इस युवती की डाट-भरी, तेज रौबीली आवाज सुनकर थोड़ी देर तक डरता रहा।

'अन्दर पधारो।' कहते हुए रसीला आगे चलने लगी और आगन्तुक युवक उसका अनुकरण करने लगा।

चलते-चलते युवक ने पूछा : 'कृपया यह तो बताइयेगा कि क्या आपकी माताजी घर में ही हैं।'

'हाँ, घर में ही हैं।'

आगन्तुक युवक को रसीला ने दीवानखाने में बैठाया और आगन्तुक की सूचना उसने माणिक-माँ को दी। 'कौन होगा !' मन में ऐसा विचार करते हुए माणिक-माँ ड्राइंग-रूम में आई।

युवक ने उठकर माणिक-माँ को प्रणाम किया और फिर बोला :

'माताजी आपने मुझे पहचाना या नहीं ?'

'नहीं, किन्तु यदि कुछ परिचय दो तो पहचान लूंगी !'

'मैं रामजी का भाई रतिया हूँ।'

'हाँ, [illegible] के क्यों ?'

'हाँ।'

'रसीला, पानी लाना !'

रसीला कमर पर दोनों हाथ रखकर इस मूर्ख के प्रश्न-उत्तर सुन रही थी। उसने मन-ही-मन सोचा कि आखिर यह मूर्ख कहाँ से आ गया। यह बुद्धू क्यों कर आया होगा ! किन्तु वह नहीं जान सकी।

माणिक-माँ की आज्ञा होते ही रसीला पानी लाई और पानी का गिलास उसने रसीलाल को सौंप दिया। किन्तु रसीला की उपस्थिति में यह गूँदेवाला रसीलाल मानो बोझ अनुभव कर रहा हो, वैसे ही जल्दी से आधा गिलास गटागट पानी पीकर, गिलास उसने रसीला को दे दिया।

'घर में तो सब कुशल-मंगल है ?' माणिक-माँ ने कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा।

'आपकी कृपा से सब ठीक है।'

'कृपा तो भगवान् की, देश में धंधा-पानी कैसा है ?'

'अरे, दादीजी ! आप देश की क्या बात करती हैं ! देश में तो एक वर्ष अच्छा तो दूसरे साल खराब, आप ही देखिए इसमें धंधा-पानी कैसा चलता होगा ! यह तो ठीक है, बाप-दादा का गाँव नहीं छोड़ा जा सकता है।'

'यही तो परेशानी है। गाँव में भूख से मरना स्वीकार है किन्तु गाँव से बाहर पाँव नहीं रखा जाता है।'

रसीला झट से समझ गई कि माँ ने उपरोक्त शब्द किस उद्देश्य से तथा किस बात को मालूम करने के लिए कहे थे, फिर भी वह चुप रही।

'हम तो सब लोग पुरानी लकीर के फकीर हैं।' रसीलाल ने अपना विवेक बतलाने के उद्देश्य से कहा।

'लीक के फकीर' शब्द का मतलब रसीला नहीं समझ पाई। अतः मन-ही-मन हँसते हुए उसने कहा

'भाई ! क्या कहा ?'

इस भाई शब्द से रसीलाल चौंका। वह जानता था कि यह बम्बई में एक दूसरे नाते से आया है तथा रसीला के मुँह से भाई शब्द सुनकर वह मन-ही-मन व्याकुल हो उठा।

रसीला को रसीलाल का इस प्रकार का बिना सिर पैर का आचरण करते देखकर बड़ा आनन्द आया। कई सालों से बराबर बम्बई में ही रहने के कारण कभी भी उसकी भेंट ऐसे युवक से नहीं हो पाई थी इसीसे उसे यह सब देखकर आश्चर्य हो रहा था। साथ-ही-साथ वह सोचती थी, गाँव तो दोनों ही हैं—गूँदाला व मेसपुर। फिर भी दोनों युवकों के बीच कितना अन्तर था। जहाँ एक ओर बम्बई के किसी सोफर युवक की तरह रतन की समता सनातन में भी थी वहीं दूसरी ओर रसीलाल में ऐसी चपलता व चतुरता रत्ती भर भी नहीं थी। अब उसे यह बात याद आ गई कि किशोरी गूँदाला व

लगी होने पर भी दस्तक देने की क्या आवश्यकता होगी ! 'मूर्ख नहीं तो !' कहते हुये उसने गुस्से में दरवाजा खोला ।

सामने एक युवक खड़ा था । युवक के हाथ में लोहे का एक छोटा-सा सन्दूक था । युवक के सिर पर काली टोपी थी । शरीर पर चोगा और धोती थी । यात्रा के कारण युवक के कपड़े बड़े गन्दे हो गये थे । उस को देखकर रसीला को एकदम घबराहट हुई । फिर भी इसी स्थिति में उसने युवक से पूछा : 'किससे मिलना है ?'

युवक बोला : 'दुर्लभदोसी का मकान क्या यही है ?'

'हां, दोसीजी आपको इस समय दुकान पर मिलेंगे । वे इस समय घर पर नहीं हैं ।'

'किन्तु यहां आयेंगे तो अवश्य ?'

'रात में आयेंगे, आप तब आइयेगा ।'

'परन्तु मैं तो मेहमान हूँ ।'

'दरवाजे पर कॉल-बेल थी फिर दरवाजे पर दस्तक देने की क्या जरूरत थी ?'

'कॉलबेल यह क्या ? मैं कुछ नहीं समझ पाया ।'

'बेवकूफ़ !'

आगन्तुक युवक इस युवती की डाट-भरी, तेज रोबीली आवाज सुनकर थोड़ी देर तक डरता रहा ।

'अन्दर पधारो ।' कहते हुए रसीला आगे चलने लगी और आगन्तुक युवक उसका अनुकरण करने लगा ।

चलते-चलते युवक ने पूछा : 'कृपया यह तो बताइयेगा कि क्या आपकी माताजी घर में ही हैं ।'

'हां, घर में ही हैं ।'

आगन्तुक युवक को रसीला ने दीवानखाने में बैठाया और आगन्तुक की सूचना उसने माणिक-मां को दी । 'कौन होगा !' मन में ऐसा विचार करते हुए माणिक-मां ड्राइंग-रूम में आई ।

युवक ने उठकर माणिक-मां को प्रणाम किया और फिर बोला :

'माताजी आपने मुझे पहचाना या नहीं ?'

'नहीं, किन्तु यदि कुछ परिचय दो तो पहचान लूंगी !'

'मैं रामजी का भाई रतिया हूँ ।

'हां, गूंदाने के क्यों ?'

'हां ।'

'रसीला, पानी लाना !'

रसीला कमर पर दोनो हाथ रखकर इस मूर्ख के प्रश्न-उत्तर सुन रही थी। उसने मन-ही-मन सोचा कि आखिर यह मूर्ख कहाँ से आ गया। यह बुद्धू क्यो कर आया होगा! किन्तु वह नही जान सकी।

माणिक-माँ की आज्ञा होते ही रसीला पानी लाई और पानी का गिलास उसने रत्तीलाल को सौंप दिया। किन्तु रसीला की उपस्थिति मे यह गूँदेवाला रत्तीलाल मानो बोझ अनुभव कर रहा हो, वैसे ही जल्दी से आधा गिलास गटागट पानी पीकर, गिलास उसने रसीला को दे दिया।

'घर मे तो सब कुशल-मगल है?' माणिक-माँ ने कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा।

'आपकी कृपा से सब ठीक है।'

'कृपा तो भगवान् की, देश मे धधा-पानी कैसा है?'

'अरे, दादीजी! आप देश की क्या बात करती हैं! देश मे तो एक वर्ष अच्छा तो दूसरे साल खराब, आप ही देखिए इसमे धधा-पानी कैसा चलता होगा! यह तो ठीक है, बाप-दादों का गाँव नही छोड़ा जा सकता है।'

'यही तो परेशानी है। गाँव मे भूख मे मरना स्वीकार है किन्तु गाँव से बाहर पाँव नही रक्खा जाता है।'

रसीला झट मे समझ गई कि माँ ने उपरोक्त शब्द किस उद्देश्य से तथा किस बात को मालूम करने के लिए कहे थे, फिर भी वह चुप रही।

'ये तो सब लोग पुरानी लकीर के फकीर हैं।' रत्तीलाल ने अपना विवेक बतलाने के उद्देश्य से कहा।

'लीक के फकीर' शब्द का मतलब रसीला नही समझ पाई। अत मन-ही-मन हँसते हुए उसने कहा

'भाई! क्या कहा?'

इस भाई शब्द से रत्तीलाल चौंका। वह जानता था कि वह बम्बई मे एक दूसरे नाते से आया है तथा रसीला के मुँह से भाई शब्द सुनकर वह मन-ही-मन व्याकुल हो उठा।

रसीला को रत्तीलाल का इस प्रकार का बिना सिर पैर का आचरण करते देखकर बडा आनन्द आया। कई सालो से बराबर बम्बई मे ही रहने के कारण कभी भी उसकी भेंट ऐसे युवक से नही हो पाई थी इससे उसे यह सब देखकर आश्चर्य हो रहा था। साथ-ही-साथ वह सोचती थी, गाँव तो दोनो ही हैं—गूँदाला व तेजपुर। फिर भी दोनो युवको के बीच कितना अन्तर था। जहाँ एक ओर बम्बई के किसी योग्य युवक को पीछे रखने की क्षमता सनातन मे थी वहाँ दूसरी ओर रत्तीलाल मे ऐसी चपलता व चतुरता रत्ती भर भी नही थी। अब उसे यह बात याद आ गई कि पिताजी गूँदाले के

रामजी मेहता के घर की दिल खोलकर क्यों प्रशंसा करते थे तथा इस प्रशंसा में भी उनके पुत्र रत्तीलाल के गुणों का बखान करने में क्योंकर चार-चाँद लगा देते थे। यह सुनकर वह सदा ही सोचा करती थी कि आखिर पिताजी किस कारण से रामजी मेहता के घर को अपने घर के समान बतलाते रहते हैं। इतना होने पर भी रसीला बात का मर्म न समझ सकी।

'लीक के फकीर का अर्थ है भला-चंगा।' रत्तीलाल रसीला की ओर देखकर डरते-डरते देखते हुए बोला।

'ठीक।'

'गाँवों की बोली ही ऐसी ही होती है। बम्बई के समान गाँवों में आडम्बर को कोई स्थान नहीं है। एक दूसरे के प्रति बहुत सम्मान होता है। स्त्रियाँ घर से बाहर कम ही निकलती हैं।'

'बहुत ठीक।' रसीला ने रत्तीलाल को चिढ़ाते हुए कहा।

रत्तीलाल को लगा कि उसकी गाँव की बातों में रसीला को बड़ा आनन्द आ रहा है अतः उसने बात आगे बढ़ाई :

'गाँवों की स्त्रियाँ उस घर में पाँव नहीं रखती हैं जिसमें आदमी बैठे हों।'

'ऐसा!'

'हाँ, हाँ मर्यादा का तो पालन करना ही पड़ता है।'

'तब फिर किसी के साथ बात तो करती ही नहीं होंगी।'

'जोर से भी नहीं बोलती हैं।'

'यह तो ठीक है। स्कूल में पढ़ने जाती हैं क्या ?

'कौन ?'

'लड़कियाँ।'

'अरे, मैं भी मात्र अपने हस्ताक्षर कर लेने जितना ही पढ़ा हुआ हूँ, इसके बाद दुकान पर बैठने लगा। स्त्री जाति को तो मात्र व्यावहारिक ज्ञान होना चाहिए उनको भला पढ़ने से क्या प्रयोजन।'

'तब फिर कोई लड़की नहीं पढ़ती होगी !'

'पढ़ती तो है किन्तु बहुत ही कम। तालुके में किसी अफसर की लड़की पढ़ती होगी हमारे मूँदाले में तो कोई लड़की नहीं पढ़ती है।'

रसीला को इस ग्रामीण भाषा को सुनने में बहुत आनन्द आ रहा था। उसकी बातें सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई। इस खुशी में उसे यह भी ध्यान नहीं रहा कि माणिक-माँ किस समय चाय तैयार करने के लिए रसोई में चली गई। किन्तु जैसे ही रसीला को माणिक-माँ की अनुपस्थिति का ध्यान आया

वैसे ही हँसमुख प्रकृति की रसीला को रत्तीलाल को मूर्ख बनाने में आनन्द आया।

'आप बम्बई देखने आए होंगे!'

'नहीं-जी-नहीं बम्बई में चलते-चलते लोगों को मूर्ख बनाया जाता है।'

'यह आपने क्या कहा?'

'सुना गया है कि, वैसे तो सुनने वाले कानों का दोष है, यदि ध्यान न रक्खा जाये तो जेब कट जाती है।'

कई ग्रामीण शब्दों का प्रयोग रत्तीलाल बराबर करते जा रहा था जिसको रसीला को समझने में बहुत मुश्किल पड़ी फिर भी उसने बात को और आगे बढ़ाया। उसे बातों ही-बातों में यह मालूम करना था कि आखिर यह मूर्ख किस कारण से आया है।

'तब तो आप अभी कुछ दिन यहीं ठहरेंगे?'

'बात यदि स्पष्ट हो जाये तो फिर यहीं रहना है। मेरे पिताजी ने तुम्हारे पिता को ऐसा एक पत्र लिख दिया है।'

रसीला ऐसा सुनकर पहले तो चौंकी। उसकी आँखें फटी-की-फटी रह गई किन्तु वह जल्दी ही स्वस्थ हो गई। रत्तीलाल की बातों से उसे बात का रहस्य तो ज्ञात हो गया था किन्तु अभी उसे पूरी बात की जानकारी करनी थी। वह उसे समझ में नहीं आ रही थी। बात का रहस्य जानने के उद्देश्य से उसने बैठे-ही-बैठे अपनी मोर-सी गर्दन रत्तीलाल की ओर की तथा सोफे पर बैठे ही बैठे बोली

'किस बात की स्पष्टता, क्या आपको नौकरी करनी है?'

'दो बातें।'

'दो बातों से क्या मतलब?'

'मुझे ऐसा कहते हुए अति लज्जा आती है.....'

'भाई इसमें लज्जा किस बात की?'

और फिर से बात के बीच में भाई शब्द का उच्चारण आने से गूँदाल का रत्तीलाल भड़क उठा।

'तुम मुझे भाई किस कारण से कहती हो?'

'तुम मेरी माँ को माताजी कहते हो और मैं ही तुम्हारी माताजी की पुत्री.......तुम्हें भाई के सिवाय क्या कहूँ?'

'माताजी तो मैं वैसे ही कहता हूँ।'

रत्तीलाल की बातें सुनकर रसीला के अन्तर्मन की वेदना की भट्टी अधिकाधिक प्रज्ज्वलित होती जा रही थी। उसे रतिया निरा-मूर्ख ही लगा।

उसके बात करने के ढंग से कभी बात करने वाले को अरुचि होती तो कभी उस पर अति दया आती थी। उसमें बुद्धि बिलकुल नहीं थी। ग्रामीण संस्कार में लालन-पालन होने के कारण उसके विचार अति संकीर्ण थे। किन्तु रतिया की बातों से उसे जानना था कि वह यहाँ किस कारण से आया है! क्या पिताजी गूँदाले वाले रामजी मेहता के साथ कोई सम्बंध बनाने के इच्छुक हैं तो फिर उसे धैर्य्य रखने के सिवाय कोई उपचार काम में नहीं लेना था। रसोई में-से प्राइमस स्टॉव की आवाज आ रही थी, इससे रसीला ने मन-ही-मन सोचा कि अब तक चाय नहीं बनी है तथा चाय बन जाने पर भी चाय के कप आदि भरने में कम-से-कम पाँच-दस मिनट तो लगेंगे ही तब तक तो वह रतिया से कई बातें कर लेंगी।

'मैं तो तुम्हें वैसे ही भाई कहती हूँ'। रसीला ने रतिया की बात का उत्तर दिया:

'तब तो ठीक।'

'किन्तु बात तो करो! अब शरमाने से काम नहीं चलेगा। इस पर भी यहाँ तो इस समय कोई भी नहीं है।'

रसीला के इन शब्दों को सुनकर रतिया का मुँह लाल हो गया। उसने ड्राइंग-रूम के चारों ओर इधर-उधर नजर दौड़ाई। चारों ओर नीरव एकान्तता देखकर उसने आँखें नीची करलीं और अपने दाहिने पाँव के अँगूठे से जमीन खोदने का वह निरर्थक प्रयत्न करने लगा।

यह सब बातें अशिष्टता से भरीपूरी थीं। इतनी सारी अशिष्टताएँ देख लेने पर रसीला का मन रत्तीलाल के एक करारी लात मारने को हुआ। किन्तु वह मजबूर थी उसे अभी बात के रहस्य को जानने का लालच तो था ही। वह शायद ऐसा भी नहीं करती पर उसे घर से बाहर पाँव रखने की स्वतंत्रता भी तो नहीं थी।

'जो कुछ बात हो वह अब साफ साफ क्यों नहीं बतला देते हो! नहीं तो अभी तुम्हारी माताजी आजायेंगी।' रसीला ने व्याकुलता व्यक्त की

'और तुम्हारी कुछ नहीं?'

'मेरी तो माताजी है!'

'तब तो ठीक।'

'लो अब जल्दी से बताओ।'

'दो बातों से क्या मतलब!'

शर्म से उसने अपने दोनो हाथो को पाँवो के बीच मे दबा लिया । रतिया ने आँखें नीची कर ली ।

'इतने से क्या ''' रमीला ने बात को आगे बढाया 'और क्या ?'

'छोकरी ।'

'ठी क' कहते हुए रमीला ने दाँत पीसे और बोली : तुम्हे ऐसा किसने सिखाकर यहाँ भेजा है ?

इन शब्दो के प्रयोग मे 'भाई' शब्द न आ जाने के कारण रतिया को जोश आ गया और वह चिल्लाया

'मुझे यहाँ मेरे पिता के सिवाय कौन भेजता ।'

'किन्तु इनकी पहचान क्या है ?'

'नही ।'

'तब ।'

'तुम्हारे पिताजी न एक बहुत लम्बा पत्र लिखा था कि रतीलाल को बम्बई भिजवा दो । यहाँ दुकान पर काम करेगा और घर पर रहेगा व भोजन करेगा ।'

'फिर ?' रसीला से बात बीच मे काटे बिना नही रहा गया । उसने अपना एक कान रसोई की ओर लगा रखा था । अब उसे यह देखना था कि कही माणिक-माँ को यह बात नही मालूम हो जाये कि उसने रतिया से बात करके सारी वास्तविकता जानली है । रतिया के एक-एक शब्द को वह तोलना व समझना चाहती थी और इसी कारण से वह रतिया के प्रत्येक शब्द को ध्यानपूर्वक सुन रही थी । फिर भी उसका मन किसी दूसरी ही ओर लग रहा था । देखा जाय तो वह मन-ही-मन यह सोच रही थी कि उसके पिताजी उसके लिए क्या काम कर रहे हैं ।

रसीला बात की स्थिति पूर्ण तरह से समझ गई फिर भी वह बात को लम्बी ही करना चाहती थी । अत उसने पूछा 'फिर ?'

'और तदुपरान्त भी शात प्रकृति हमको अच्छी लगती है । भविष्य मे उसका भाग्य खुल जायेगा । तुम्हारे पिताजी ने पत्र मे लिखा था कि यदि मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करता रहा तो रसीला ही इस जायदाद की मालकिन है । मेरे विचार से तो रसीला ही मेरे पुत्र के समान है ।'

रसीला रतिया की बात सुनकर स्तब्ध रह गई । उसका रोम रोम काँप उठा फिर भी उसने शाति रक्खी ।

'फिर ?'

'फिर क्या ? एक के बाद तुरन्त दूसरा पत्र मिला। इस पर मेरे पिताजी ने कहा अब तो मुझे जाना ही चाहिए। वे कहने लगे जब लक्ष्मी आगे होकर घर में आ रही है तब क्यों कर उसका निरादर किया जाये। शुभ काम में देरी क्यों ?'

'और तुम यहाँ आ गए ऐसा ही न ?'

'हाँ।'

रसीला इसके बाद कुछ पूछे या बोले कि इससे पहले माणिक-माँ ड्राइंग-रूम में चाय के कप लेकर आ गईं।

रसीला इस पर अपने सोने के कमरे में घायल हिरणी-सी दौड़ पड़ी। रत्तिया के आगमन से उसके कोमल हृदय पर यह दूसरा प्रहार था। वह कबूतर-सी फड़फड़ा उठी। क्या किया जाये' कहाँ जाऊँ ! किसको मन की बात कहूँ ! अकथनीय है। असहनीय है।

वैमनस्यता बढ़ी

तेजपुर को अपनी तेज किरणो से तपाकर सूर्य अस्ताचल को जा रहा था। सन्ध्या की लालिमा तेजपुर के बीचोबीच स्थित भॅवरसेठ की लाल रग की नालियो के साथ मानो स्पर्धा करती हुई अपने आप को इन्ही नालियो के रग मे मिला लेने का प्रयास कर रही थी।

सीवान से गायो का झुण्ड रम्भाते हुए आ रहा था। पक्षी भी अनन्त आकाश का परिभ्रमण करके अपने-अपने घोसलो मे बैठने को अपने-अपने वृक्षो पर आकर बैठ रहे थे। गाँव के चौरानो से घण्टा घडियाल की आवाज सुनाई दे रही थी।

ऐसे समय मे हमीर बोरिचा सीवान से गाँव की ओर आ रहा था। गोइडा मे उसकी हीफली वाडी—बाग था। हीफली वाडी पर कब्जा हमीर का था। किन्तु वह सेठ के पास मे गिरवी रखी हुई थी, अत उसका हीफली से विशेष प्रेम नही था। उसका विचार था कि वह हीफली को जल्दी से सेठ के कब्जे से छुडवाकर उसकी उन्नति करे। हीफली को सेठ के कब्जे से छुडवाने के लिए हमीर ने कई प्रयत्न किए किन्तु सेठ के जोरदार होने के कारण उसके सब प्रयत्न बेकार रहे।

उसके मन में दस्तावेज का बड़ा डर था। उसका विचार था कि दस्तावेज उसके हाथ में आ जाने के बाद सेठ कुछ भी नहीं कर सकता है। दस्तावेज हाथ आ जाने पर मैं बाग में किसी को पाँव भी नहीं रखने दूँगा। किन्तु प्रश्न था, आखिर वह दस्तावेज कैसे उसके हाथ में आये? वह मन ही मन कई योजनाएँ बनाने लगा। किन्तु उसे कोई मार्ग नहीं दिखाई दे रहा था। परन्तु अन्ततः उसके मन में एक बात आई। विचार को मन ही मन पक्का करके वह घर पर आया।

वह यह भलीभाँति जानता था कि यदि सनातन का बाल भी बाँका हुआ तो सरकार उसकी हड्डी-पसली एक कर देगी। उसके हाथ लम्बे हैं। सनातन के संबन्ध ऊँचे अफसरों से बड़े अच्छे हैं। इसीलिए वह बड़ी शांति से दबी हुई अँगुली को बड़े ढंग से निकालना चाहता था। फिर भी सनातन के चंगुल से निकलना सरल काम नहीं था। इसलिये उसने इस दस्तावेज को हथियाने का प्रयास प्रारम्भ किया था। वह सोचता था यदि किसी भी तरह से दस्तावेज हाथ में आ जाये तो सनातन पंगु हो जायेगा। किन्तु यह काम बड़ा ही कठिन था। अब तक उसकी तरशींगड़ा की घाटी में सनातन को मौत के घाट उतारने की योजना भी निष्फल हो चुकी थी। सनातन बहुत ही मजबूत था। और अधिक करने में उसे अपनी, अपनी स्त्री व बच्चे की जान के लाले पड़ जाने को थे।

उसे काम निकालना था, किन्तु जोखिम को भी वह निमंत्रण नहीं देना चाहता था। बोरिचा घाटे का सौदा करने वाला व्यक्ति नहीं था। बात को इसीलिए समझ लेने में उसने बड़ी शीघ्रता दिखाई।

शाम को भोजन करके वह गली में पड़ी खाट पर सो गया। सिर पर खुला आकाश था। आकाश में असंख्य तारे अपनी चांदनी फैला रहे थे। अनेक तारों की चमक से अँधेरी रात्रि और शोभित हो रही थी। वह खुले आकाश को न जाने कब तक देखता ही रहा।

रात बीत रही थी। दिन में सूर्य की किरणों से तपी हुई पृथ्वी रात्रि में लगातार ठण्डे पवन के स्पर्श से शांति अनुभव कर रही थी। सारे गांव में नीरव शांति थी। चारों ओर घोर अँधेरा था। इस घने अन्धकार में मात्र बोरिचा के बाहर निकलने की किसी की हिम्मत नहीं थी।

बोरिचा मन-ही-मन कोई दृढ़ निश्चय करके अपने बिस्तर से उठा। मुँह उसने पगड़ी से ढक लिया और धीरे से दरवाजे के बाहर निकला। दबे पांवों वह सनातन की हवेली के पीछे की ओर पहुँचा। इधर-उधर उसने एक उड़ती नजर से देखा। पीछे की ओर मीणासार नदी का प्रवाह

तेज ध्वनि करता हुआ बह रहा था। ठण्ड से प्रवाह का कोलाहल बढना लग रहा था।

बोरिचा अपने सोचे हुए काम को पूरा करने मे विलम्ब नहीं करना चाहता था। उसने दीवार के पास के गड्ढे का सहारा लिया और आराम से दीवार के सहारे मकान के ऊपर चढ़ गया। किन्तु ऐसा करते समय अति सावधानी बरतते हुए भी रहने वाले घर की एक नाली की आवाज हो गई। इस आवाज के समाप्त होने तक वह घुटने टेक कर थोड़ी देर के लिये वहीं बैठ गया और तदुपरान्त उसने काम शुरू किया। ससार के कई ऐसे कामों को देखती हुई रात आँखें बन्द करके भागी जा रही थी। हमीर बोरिचा के हृदय की धड़कनें बढने लगीं। वह इस बात को भलीभाँति जानता था कि सनातन को जैसे ही उसके आने की सूचना मिलेगी वह बन्दूक से निशाना साधेगा। इसलिए वह बहुत सावधानी व समझ से काम कर रहा था। माँ की गोद-सी हीफली-वाडी को वह यथासम्भव सेठ के कब्जे से निकालकर ही दम लेना चाहता था।

रहवास के घर के लगभग पाँच खपरैलो को हटाकर उसने बाँस की खपच्चियो को तोड़ना शुरू किया। बाँस की खपच्चियो को उसने अपने मजबूत व दृढ हाथों से तोड़ना प्रारम्भ किया। इनको तोडकर उसने इतनी जगह बना ली कि वह घर मे कूद सके। टूटे हुए स्थान से उसने कमरे मे नजर डाली। घर का दरवाजा खुला ही था। घर मे खाट पर बुढिया सो रही थी। सोने वाली बुढिया ओतम-माँ ही होगी यह निश्चित करने मे उसे कोई समय नही लगा, क्योंकि सारे घर मे आज तक सनातन व ओतम-माँ के सिवाय अन्य कोई व्यक्ति पैदा नही हुआ था, यह बोरिचा को भलीप्रकार से मालूम था। घर मे सब सो रहे थे। बोरिचा रहवास के कमरे मे कूद गया और बन्द सन्दूक पर पाँव रखकर बाहुबल से उसका कुदा तोड डाला। शीघ्रता से उसने सन्दूक का ढक्कन खोला और अगिनत दस्तावेजों की गड्डी उसने अपने हाथ मे ले ली। ऐसा उसने इसलिए किया क्योंकि वह जानता था कि सारे परगने के किसानो के लिये दस्तावेज उसी सन्दूक मे रहते थे।

कुदा जैसे ही टूटा, सनातन की आँख खुली। उसने चारों ओर देखा किन्तु कोई नही दिखाई दिया। लौटकर आकर वह पुनः अपनी खाट पर लेट गया। किन्तु फिर सोते-सोते ही उसका ध्यान रहवास के घर की ओर गया। उसे कमरे मे किसी अनजान आहट का आभास हुआ। दबे पाँवो वह खाट से खडा हुआ और कमरे के पास ही रखा हुआ रस्सा हाथ मे लिया। उसका छोर दोनों हाथों से पकडकर वह रहवास के कमरे की ओर धीमे से बढने

लगा और जल्दी से उसने रस्से का फंदा हमीर के गले में डाल दिया। इस अन-अपेक्षित आफत के कारण हमीर काँप उठा। उसके हाथों में-से दस्तावेजों का पुलन्दा नीचे गिर गया। पुलन्दा गिरने की आवाज सारे मकान में गूँज उठी और इसके साथ ही जयसिंह भाई अपनी दुनाली बन्दूक लेकर रहवास के कमरे की ओर लपके तथा चिल्लाये :

'कौन है ?'

'यह तो मैं हूँ।'

'भाई, कौन ?'

'हाँ।'

'और दूसरा ?' जयसिंह भाई ने दुनाली का घोड़ा चढ़ाते हुए कहा।

घोड़ा चढ़ाने की आवाज हमीर व सनातन के कानों में गूँज उठी। हमीर के हाथ पाँव फूल गए। उसकी सारी हिम्मत समाप्त हो गई। जीवन व मृत्यु के बीच उसे तनिक ही अन्तर लगा। फिर भी वह कमजोर व्यक्ति नहीं था। निडर होकर वह जहाँ खड़ा था वहीं खड़ा हो गया।

'जयसिंह भाई घोड़ा उतार दो।' सनातन ने आदेश दिया।

पाँव पटकते हुए जयसिंह भाई ने कहा, 'हरामजादे को यमराज के पास ही पहुँचा दो ! मेरी चौकीदारी में हमीर बोरिचा ने घर में पाँव रखकर मेरी नाक काट ली है।' इस अपमान से उसका रोम-रोम काँप उठा। वह क्रोधाग्नि में जल रहा था।

बाल्यकाल से ही जयसिंह भाई ने इस घर में खूब मौज से घी-दूध खाया-पीया था। आज उसे इस अहसान का बदला चुका देने का अवसर मिला था। किन्तु भाई ने इस अवसर का लाभ स्वयं ले लिया था इसका जयसिंह भाई को हार्दिक दुःख था।

क्रोध में लाल-पीले होते जयसिंह भाई को समझाते हुए जयसिंह भाई से सनातन ने कहा।

'देखो जयसिंह भाई अपना पाप स्वयं को खा जायेगा। तुम व्यर्थ में जल्दी मत करो। हम व्यर्थ में ही क्योंकर अपने सिर पर कलंक लगायें।'

'किन्तु देखो भाई इसने तनिक भी यह नहीं सोचा कि यह किस माँद में हाथ डाल रहा है !'

'गयी बात को छोड़ो, जो होना था सो हो गया।'

नारियल का रस्सा होने के कारण बोरिचा के गले में गहरे निशान

हो गये थे। परन्तु इस सारे दुःख भी सहन करने के उपरान्त उसके पास कोई दूसरा उपाय नही था।

सनातन ने बोरिचा को रस्से सहित ही गली मे धकेल दिया और गले का फंदा निकालते हुए कहा।

'हमीर तू जा सकता है।'

'अरे भाई हमीर बोरिचा को वैसे ही क्या छोडते हो' चलो इसको तो ताल्लुके मे पुलिस के हवाले ही करना है।' जयसिंह भाई ने बोरिचा को घूरते हुए कहा।

'जयसिंह भाई! हमे हमीर के साथ ऐसा नही करना है। हमारा हमीर के साथ ऐसा नाता नही कि हम उसे ताल्लुके मे पुलिस को सौंपें।'

'किन्तु इसने तो सबन्ध नही रखा।'

'यह तो ऐसे ही होता है। मानव जब मोह के फंदे मे पड जाता है तो ऐसी भूलें होना स्वभाविक है।'

'इसे आप भूल समझते हैं?'

'जो भी तुम्हारा मन हो समझो। किन्तु हम हमीर को पुलिस को नही सौंप सकते है। यह हमारे वश की बात नही। हमीर को पुलिस को सौंपना हमारे बडप्पन को लजाना है।'

'जा, भाई जा! बुरी नीयत छोडकर रुपया चुका दे। मेरे मन मे पाप नही है। अभी भी मैं तेरी बाडी तुझे अवश्य लौटा दूंगा।'

'रुपया देना सम्भव नही है।'

'तब यह कह दे कि मैं गरीब हूँ।'

'मैं ऐसा भी नही कह सकता।'

'यदि दोनो ही बातें सम्भव नही तो फिर हीफली की आशा छोड दे। हीफली तेरे हाथ मे आना तभी सम्भव है, अब या तो तू कर्ज चुका या गरीब बन।'

'हीफली से मुझे बहुत प्यार है।'

'रहन के रुपये अदा करदे, या बेचान कर दे।'

'इस जीवन मे रुपये चुकाना सम्भव नही तथा बेचना भी सम्भव नही।'

'तब फिर मुझे बेचान करवानी ही पडेगी। अब मैं ज्यादा नही रुक सकता।'

'जैसा आप उचित समझें करना।'

'भाई ! इस कालोतरे को किसी प्रकार की शर्म नहीं आ सकती। इस समय इसके साथ सज्जनता का व्यवहार करना ठीक नहीं। देखना किसी न किसी दिन यह हम लोगों का अहित अवश्य करेगा।'

'जयसिंह भाई दुष्ट के साथ दुष्टतापूर्ण व्यवहार करना हमें शोभा नहीं देता।'

'शोभा को लगाओ आग ! सचमुच में यह तो कालोतरा है ! यह तो मुआ है। इसके साथ यदि नरमाई का व्यवहार किया जायेगा तो यह और भी कठोर ही होगा।'

जैसा भाग्य में बदा होगा वैसा होकर रहेगा किन्तु इसको हथकड़ियाँ पहनाना हमारे वश की बात नहीं। जा भाई तू तो जा हमारी ओर से तुझे छुट्टी है।'

और सनातन के शिकंजे से छूटा हुआ हमीर भग्न हृदय होकर अपने घर को चल दिया।

इस घटना के दूसरे ही दिन सनातन ने बावली को सजाया। ताल्लुके की ओर जाने की उसने तैयारी की। सनातन ने मन में विचार किया कि हींफली को कब्जे में लेने के लिए समय खोना व्यर्थ है। आज ही उसने हींफली का कब्जा लेने का दृढ़ निश्चय किया। वह मन-ही-मन सोचने लगा कि बोरिचा उसकी ढिलाई को उसकी कमजोरी मान रहा है। यदि एक भी बार उसने ढील दिखा दी तो इसकी छाप परगने पर बुरी रहेगी। परगने के सभी किसान फिर उसे परेशान कर देंगे। अतः आज के सूरज में ही हींफली पर कब्जा कर लेने को वह ताल्लुके की ओर चल पड़ा। ताल्लुके में पहुँचकर उसने तहसीलदार के सामने लिखित दस्तावेज रख दिया। सभी अमलदारों ने इसे भाई का काम समझकर जल्दी ही पूरा कर दिया। किसकी हिम्मत जो सनातन के काम में अड़चन डालता या विलम्ब करता। अधिकारियों ने दूसरी सब फाइलें एक ओर रखदीं और हींफली के कुर्की के कागज बनाना शुरू हुआ तथा दोपहर पहले तो हींफली की कुर्की के सारे कागज बन गये। सभी कार्यवाही पूरी हो गई।

दोपहर को जब दो हथियार बंद पुलिस वालों के साथ सनातन ने पुनः नेजपुर में पांव रखा तो उस समय सारे नेजपुर में सन्नाटा छा गया। ड्योढ़ियों पर आदमियों का झुण्ड एकत्रित हो गया। हींफली की आज तबाही होनी थी। साथ ही साथ इसको रोकने की भी किसी की सामर्थ्य नहीं थी। हमीर ऐसी स्थिति में नहीं था कि सरकारी आदमियों की ओर आँख भी उठा सके। उनके रोम-रोम में एजेन्सी का धाक जमी हुई थी इसी कारण जब

उसने हीफली के आज कुर्क होने की बात सुनी तो घर से बाहर पाँव न रखने मे अपनी खैर समझी।

तीसरे पहर सनातन सरकारी अधिकारियो को लेकर हीफली पर पहुँचा। हमीर का आदमी चरस चला रहा था तथा एक मजदूर खेत मे पानी दे रहा था। इन दोनो के अतिरिक्त हीफली पर कोई नही था।

'अरे, हमीर कहाँ है ?' अमलदार ने कुये से पानी सीच रहे व्यक्ति को आवाज देकर पूछा।

'सरकार, मुझे खबर नही है।'

'पानी सीचना बद कर दे।'

यह सुनते ही उसने जल्दी से बैलो को खोल दिया। बहुत देर से आगे पीछे चलने वाले बैल मानो यही प्रतीक्षा कर रहे हो, इसलिये तनिक ढिलाई पाकर वे जमीन पर बैठ ही गय।

थोडी देर बाद अमलदार ने दूसरा हुक्म दिया

'बाडी मे-से सामान चरस आदि हटाले।'

नौकर ने आज्ञा का पालन किया।

'इस सामान के सिवाय और भी कोई सामान हो तो उसे भी हटाले।' अमलदार की फिर से कडक आवाज निकली।

नौकर ने बाडी से मिट्टी के बर्तन और चौगान से गाडी, पुरानी खुरपियाँ, गैंतियाँ तथा पुराने लोहे-लक्कड का सामान इक्ट्ठा करके गाडी मे भर लिया। पानी देने वाले नौकर को बुलाकर उसन गाडी बाहर निकाल ली।

अमलदारो ने कागजात तैयार किये और उनमे गाँव के गिने-चुने दो-तीन प्रतिष्ठित किसानो के अँगूठे लगवा लिये। हीफली की कुर्की का काम पूरा हुआ। हमीर की हीफली की कुर्की का काम सनातन को मन ही अरुचिकर लगा किन्तु हमीर के अडियलपन के कारण उसे ऐसा करने को बाध्य होना पडा। यह रास्ता पकडने का उसका कर्तव्य था। सनातन मानता था कि आज बुढिया के मरने का इतना दुःख नही किन्तु दुष्टराज यदि घर को चौपट कर दे यह बर्दास्त होना सम्भव नही है। आज हमीर का मुक्त करने का अभिप्राय कल उसके समान दूसरे दो को प्रोत्साहित करना होगा।

अमलदार ने नौकर से पूछा 'अरे अब भी अन्दर कुछ है क्या ?'

नौकर अटकते व तोतली भाषा मे बोला 'अब कुछ भी नही है।'

'तब फिर यहाँ से भाग जा और फिर कभी यहाँ पैर मत

रखना। समझे!'

नौकर अमलदारों की पूरी बात नहीं समझ सका किन्तु फिर भी वह यह तो समझ गया कि ये लोग हमें वाड़ी से निकालने को आये हैं।

सनातन अधिकारियों को लेकर अपने घर आया तथा दूसरी ओर हमीर के घर गाड़ी पहुँची। इस घटना से हमीर के दिल में वैमनस्यता की महाग्नि जलने लगी। उसने मन में निश्चय किया जैसे भी हो हींफली वापिस अपने कब्जे में लूँ या सनातन को मौत के घाट उतार दूँ, इसी दिन से वैमनस्यता बढ़ गई।

पहली नजर में प्यार

संजयाओ····कोई····कै····चो,····स···· री···· ता भौर चा····ब···कू-और समजू के मीठे गले से निकली यह आवाज तेजपुर के बाजार मे सर्वत्र फैल गई। उभरते यौवन पर चम्पई रंग का एकदम नया घेरदार घाघरा तथा सिर पर केसरी रंग की ओढनी समजू के यौवन की मोहकता में चार चाँद लगा रही थी।

थोडी देर मे यह मधुर शब्द सनातनसेठ की डयोढ़ियो के आस-पास गूँज उठे।

सुबह की चाय पीकर अभी मण्डली बिसरी ही थी। आज की डाक देखने के लिये सनातन बैठक मे आकर बैठा ही था। डाक में कई पत्र थे, जिसमें एक पत्र दोसीसेठ का भी था। सर्वप्रथम दोसी का पत्र लेकर ने पढ़ा, पत्र की भाषा बड़ी सख्त थी। पत्र सनातन ने बहुत दोसी का यह पत्र कानूनन नोटिस नही था परन्तु इसकी भाषा किसी प्रकार भी कम नही थी। यदि नोटिस और पत्र में पत्र निश्चित रूप से बाजी मार लेवे।

सनातन दोसी के पत्रो से न तो व्याकुल होता और न अधीर जानता था कि 'एक चुप सौ को हरावे' भौर इसी बात के कारण वह

रखना। समझे!'

नौकर अमलदारों की पूरी बात नहीं समझ सका किन्तु फिर भी वह यह तो समझ गया कि ये लोग हमें वाड़ी से निकालने को आये हैं।

सनातन अधिकारियों को लेकर अपने घर आया तथा दूसरी ओर हमीर के घर गाड़ी पहुँची। इस घटना से हमीर के दिल में वैमनस्यता की महाग्नि जलने लगी। उसने मन में निश्चय किया जैसे भी हो हींफली वापिस अपने कब्जे में लूँ या सनातन को मौत के घाट उतार दूँ, इसी दिन से वैमनस्यता बढ़ गई।

पहली नजर में प्यार

संजवाओ····कोई····कै····ची,····स···· री···· ता और वा····व····कू-और समजू के मीठे गले से निकली यह आवाज तेजपुर के बाजार मे सर्वत्र फैल गई। उभरते यौवन पर चम्पई रंग का एकदम नया घेरदार घाघरा तथा सिर पर केसरी रंग की ओढनी समजू के यौवन की मोहकता मे चार चाँद लगा रही थी।

थोडी देर मे यह मधुर शब्द सनातनसेठ की ड्योढियो के आस-पास गूँज उठे।

सुवह की चाय पीकर अभी मण्डली बिखरी ही थी। आज की डाक देखने के लिये सनातन बैठक मे आकर बैठा ही था। डाक मे कई पत्र थे, जिसमे एक पत्र दोसीसेठ का भी था। सर्वप्रथम दोसी का पत्र लेकर सनातन ने पढा, पत्र की भाषा बडी सख्त थी। पत्र सनातन ने बहुत गम्भीरता से पढा। दोसी का यह पत्र कानूनन नोटिस नही था परन्तु इसकी भाषा तो नोटिस से किसी प्रकार भी कम नही थी। यदि नोटिस और पत्र मे प्रतियोगिता हो तो पत्र निश्चित रूप मे बाजी मार लेवे।

सनातन दोसी के पत्रो से न तो व्याकुल होता और न अधीर ही। वह जानता था कि 'एक चुप सौ को हरावे' और इसी बात के कारण वह दोसी के

पत्रों को बहुत ध्यान से पढ़ता और पढ़कर एक विशेष फाइल में उनको रख देता। आज का पत्र भी उसने सावधानी से पढ़ा और फाइल में रख दिया और इसी समय उसके कानों में एक मधुर स्वर गूँज उठा :

'संजवाओ (धार लगवाओ) कोई···कैंची···स··रौता और चा··क··कू!'

सनातन का ध्यान कभी इस प्रकार की बातों की ओर नहीं जाता था। किन्तु उक्त स्वर उसके हृदय के आन्तरिक मर्मस्थल को छू गया। उसे स्वर को बार-बार सुनने की प्रबल उत्कंठा हुई। इसलिये वह बैठक से बाहर निकल कर ड्योढ़ी पर आकर खड़ा हो गया।

रास्ते से आने-जाने वाली गाँव की बहुओं ने शर्म से घूँघट खींच लिये। वैसे उम्र में सनातन इन स्त्रियों से छोटा था किन्तु रिश्ते में कई व्यक्तियों का चाचा या बुजुर्ग था। कई स्त्रियों के संबन्ध में सनातन छोटा था किन्तु बड़े परिवार की भाँति उनको भी सनातन की इज्जत करनी ही होती थी।

सनातन क्षण भर के लिये उपरोक्त परेशानी से व्याकुल हो उठा। उसको मन-ही-मन इस बात का क्षोभ हो रहा था कि उसके ड्योढ़ी में खड़े रहने के कारण ग्राम-वधुओं को घूँघट खींचना पड़ता है। फिर भी वह मीठे स्वर को बिखेरती आ रही सकलीगरनी को देखने का लोभ संवरण नहीं कर सका।

सकलीगरनी अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को इधर-उधर घुमाती हुई ड्योढ़ी के समीप आ रही थी। अब भी वही 'धार लगवाओ कोई····कैं····ची····स···· रौता और चाकू' के शब्द सुनाई आ रहे थे। यह अति कर्ण प्रिय स्वर ठहर-ठहर कर थोड़ी-थोड़ी देर पश्चात् आ रहा था। सनातन उसको आते हुये देखता रहा।

सकलीगरनी घेरदार घाघरा पहने हुए थी। घाघरा उसकी पतली कमर में मजबूती से बँधा हुआ बड़ा सुन्दर प्रतीत हो रहा था। सिर पर कसूँ-बल रंग की सुन्दर चुनरी बीतती संध्या की स्मृति को सतेज कर रही थी। आँखों में मोहिनी फूट-फूट कर भरी हुई थी। इस प्रकार यौवन के मस्त झूले में झूलती समजू सनातन की ड्योढ़ियों की ओर बढ़ती जा रही थी। समजू के पीछे-पीछे उसकी वृद्ध माता भी आ रही थी। सान का रस्सा खैंचने के लिए, वह सदा समजू के साथ ही रहती थी।

सनातन को ड्योढ़ी पर खड़े देखकर यौवन के भार से दबी समजू ने पूछा :

'सेठ क्या किसी वस्तु के धार लगवानी है?'

सनातन थोड़ी देर के लिए सकलीगरनी को देखते ही रह गया। उसने

मन-ही-मन विचार किया कि कही रसीला तो सकलीगरनी के वेष मे मुझे देखने तो नही आ गई ! वही सुन्दरता ! वही मोहिनी ! रसीला व सक्ली-गरनी मे कोई अन्तर उसे नही दिखाई दिया ! उसे समजू की गर्दन मोर सी सुन्दर व मुँह का पानी बडा मन-भावना लगा।

समजू ने सनातन को अपने को देखते देखकर यौवन के भार को दबा कर सकुचित होकर कहा : 'सेठजी, निकालिए, कैंची, सरौता, चाकू।'

आज सनातन अब तक अपनी दूसरी दुनियाँ मे खोया हुआ था। ड्योढी मे खडा खडा वह पीछे की ओर मुडा तथा आवाज दी 'जयसिंह भाई।'

'आया भाई।' प्रत्युत्तर मिला।

अधेड उम्र के जयसिंह भाई सनातन के पिता समान थे किन्तु वे सनातन को सदा भाई कहकर ही पुकारते।

'क्या कर रहे थे ?'

'बावली के खरहरा कर रहा था। दोपहर को उसे स्नान के लिये ले जाना है।'

'ठीक।'

कहते हुए सनातन चुप हो गया। क्षण मात्र के मिले इस अवसर का सदुपयोग करने के लिये सनातन ने बडे ध्यान से समजू को देखा। पुनः जयसिंह भाई की ओर मुँह करते हुए वह बोला

'अपने पास जितने भी चाकू, सरोते, कैंचियाँ हो उनको निकालो और उन सब पर धार लगवा लो !'

'ठीक है। 'भले ही लगी हो। फिर भी इस घर पर यह आई है तो इसको दो पैसे की मजदूरी देनी ही होगी। हमारे घर पर आकर यह खाली हाथ नही लौटेगी।'

'सेठजी, धर्मादा नही लेने वाले हैं। कमर-तोड मेहनत करके ही पैसा लेते है।'

समजू को सनातन के शब्द अप्रिय लगे। वह नही चाहते हुए भी आवेश मे कठोर शब्द बोल गई। वह यह भलीभाँति जानती थी कि प्रात काल की शुभ बेला मे ग्राहक से झगडने पर दोपहर के भोजन से हाथ धोना होगा।

सक्लीगरनी समजू के कठोर शब्द सुनकर भी सनातन को क्रोध के स्थान पर सम्मान उत्पन्न हुआ।

'हाँ, बाई हाँ ! हमको व्यर्थ मे क्या धर्मादे की बात करनी चाहिए। हमारी धर्मादा करने की शक्ति है कहाँ !'

'एक तो दर-दर घूमकर खाना और जिस पर नखरे इतने कि पूछो

मत।' जयसिंह भाई ने बड़े रोष में समजू की ओर देखते हुए कहा।

'घमंड क्यों नहीं होगा! हमें किसी का हराम का नहीं खाना है।'

'बहुत देखी हैं तुझ जैसी सच्चाई वाली।'

समजू और जयसिंह भाई के बढ़ते हुए वाद-विवाद को रोकने के लिये सनातन बीच में ही बोला :

'अरे जयसिंह भाई व्यर्थ में क्यों सिर-फोड़ी कर रहे हो। जो भी हो ले आओ, जिससे बात खत्म हो।'

जयसिंह भाई को समजू का यह गरम मिजाज अरुचिकर लगा। इतने पर भी सनातन की आज्ञा का उल्लंघन करना उनकी सामर्थ्य के बाहर था। अतः वे एक कमरे में घुसे तथा वहाँ जो कुछ भी मिला सब ले आये। कमरे से बाहर निकलते समय वे रामावतार का एक जंग लगा सरौता भी लेते आये। समजू की आँख खोलने के लिये जयसिंह भाई ने टुवाल में लपेटे हुए लगभग पन्द्रह चाकू, सरौते व कैंचियों का ढेर लगा दिया।

समजू ने कंधे से सान नीचे रखा। सान की रस्सी उसने माँ के हाथ में थमा दी और फिर समजू एक के बाद एक कैंची, सरौता व चाकू पर धार लगाने में जुट गई। धार निकलने की परीक्षा लेने के लिये वह धार लगाती जाती और ओजार पर अँगुलियाँ रखकर देखती भी जाती कि धार लगी या नहीं। तदुपरान्त वह फिर सान पर घिसती। सान के साथ-ही-साथ समजू के यौवन के भार से दबे अंग हिलते-डुलते मनभावने लगते थे। इस प्रकार से हिलते हुए अंगों से टपकते यौवन को देखने की सनातन की बार-बार इच्छा हो रही थी। इसी समय उसकी नजर एक मात्र सरौते पर पड़ी। सनातन कैंची देखते ही बोला :

'अरे! इस पर धार लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह बिल्कुल बेकार है। इसकी कोई उपयोगिता नहीं है।'

'नहीं, मात्र एक ही मैं क्यों रख दूँ? सब के साथ में इसको भी चमका दूँगी।'

'किन्तु इसमें कोई सार नहीं है।' सनातन बराबर आग्रह करता रहा।

'सार तो इसमें है ही। इस पर जंग की परतें जमी हैं। जंग साफ करते ही इसका सार निकल जायेगा। किसी को सार से भरपूर करना या उसको सार-हीन करना यह तो मनुष्य का काम है, सेठजी।' कहते हुए उसने सरौते को सान पर रखा और उसकी धार बनाने लगी। सरौते पर जैसे ही सान से रगड़ लगी उसमें तेज चिनगारियाँ निकलना शुरू हुआ। ये चिनगारियाँ उसका वक्षस्थल छूने लगी।

'सेठजी सरौता असल विलायती लोहे का है।' सरौते पर धार लगाने

हुए समजू बोली :

'जमाने का पता किसको है ?'

'अब तो इस किस्म का लोहा कम ही दिखाई देता है।' सान के पहिये पर कैंची की धार को अँगुलियो से परीक्षा करते हुए समजू बोली।

'यह किस कारण से ?'

'सुना है कि युद्ध-सामग्री तैयार करने के लिये सरकार इस किस्म का लोहा इकट्ठा कर रही है। गाँव-गाँव से बैलगाडियाँ भरकर रेल के डिब्बे भरे जाते हैं। इससे ज्यादा तो हम से साधारण व्यक्तियो को कैसे मालूम हो। किन्तु गाँव-गाँव भटकने का हमारा काम है, इस कारण से बात कभी-कभी सुन ही लेते हैं। सच और झूठ की तो परमात्मा जाने।'

सान का पहिया भी इस विलायती सरौते से टकराने में भयभीत हो रहा था, क्योकि सान को भय था कि यह विलायती लोहा कही उसे स्वय को ही नही घिस दे। पहिया भय से काँपता हुआ घूम रहा था। समजू ने सनातन पर एक उडती दृष्टि डाली। इस नजर मे सनातन को नवीनता का अनुभव हुआ। उसका मन सान से लग गया। रसीला और समजू मे क्या अन्तर है ? दोनो का रूप-रग व मुँह मानो एक ही सान से उतारे गये हो। यह बाग का फूल न जाने किसके जीवन को सरौते-सा चमकायेगा ?'—ऐसा प्रश्न उसके मन मे एक क्षण के लिये उठा तथा दूसरे ही क्षण शान्त हो गया सरौता की धार तो क्या परन्तु सारा ही सरौता एकदम चमक उठा। अब उस पर जग का कोई निशान नही था। सब हथियारो मे सरौता सबसे अधिक चमकदार था।

'समजू तुम ने तो कमाल कर दिया।'

'हम लोगो का तो यह खानदानी धधा है।' समजू ने सरौते को दूसरे औजारो के साथ रखते हुये कहा।

'कौन-सा धधा ?' सनातन ने मुस्कराते हुए समजू से पूछा।

'चमकाने का !'

चार आँखें एक हुई। इससे जो भाव उत्पन्न हुए उसकी मधुरता का आभास तो उनके हृदय की नाप सकते हैं। वह जल्दी से सान को कधे पर रखकर जैसे ही जाने को तैयार हुई तो सनातन बोला :

'कितने पैसे दूँ ?'

'जो तुम्हारी इच्छा हो।'

'मेरी इच्छा तो ....'कहते हुए सनातन ने अपनी आँखें समजू की आँखो से मिलाई। इस नजर से वह मानो दब रही हो, इस भाव से वह दो कदम पीछे हट गई और खामोश रही।

सनातन ने अपने कोट की जेब में हाथ डाला और मुट्ठी भर परचून (खेरीज) निकाली और बिना गिने हाथ आगे करता हुआ बोला : 'तेरे भाग्य में जितना हो उठा ले।'

किन्तु समजू ने इस मुट्ठी भरे हाथ की ओर नजर उठाकर देखने की कोई जरूरत नहीं समझी।

'क्यों क्या पैसा नहीं चाहिए ?'

'चाहिए किन्तु अपने हक के। गैरवाजिब पैसे मुझे नहीं चाहिये।'

'क्यों ?'

'ये पसे मेरे पारश्रमिक से ज्यादा हैं।'

'किन्तु मैं तो खुश होकर दे रहा हूँ।'

'मैं खुशी से लेना नहीं चाहती।'

'ऐसा मैंने कभी नहीं सुना।'

'मैं गम्भीरता की बात नहीं समझती फिर भी मेरी माँ का कहना है कि सवर्ण लोगों का विश्वास नहीं करना चाहिये।'

'बात बिल्कुल झूठी है। किसी दिन संयोग करके बात की परीक्षा कर लेना।'—कहते हुए सनातन ने अपने अन्तर के प्रेम को आँखों में लाकर समजू को देखा।

'प्रेम की मधुर बूँदों में तरबतर होकर मानसिक तृप्ति का अनुभव करती हुई समजू बोली : 'सेठजी ! हम दोनों के बीच जमीन-आसमान का अन्तर है।'

'किसने किया ?'

'दुनिया ने।'

'दुनिया से हमको क्या लेना-देना है ?'

'हम लोगों के जीवन में तो यह बात सच नहीं है किन्तु आप लोगों के लिये तो है ही।'

साग खेंचने से थक जाने के कारण समजू की बुढ्ढी माँ पीठ का ठेका लेकर बैठी थी जिसे देखकर सनातन को तनिक क्षोभ हुआ। क्षोभ समजू की आँखों से छिपा न रह सका।

'यह बेचारी बहरी है ?'

'और तू ?'

'मैं तो दोनों कानों से सुनती हूँ ! लाइए जरा जल्दी कीजिए मुझे व्यर्थ में देरी मत करिए !' समजू ने जल्दी की। परन्तु उसके मन में तो सनातन के पास खड़े रहने की इच्छा थी। इसकी उसे अति उमंग थी। वह इस प्रकार की उथल-पुथल का कारण नहीं समझ पा रही थी। उसके हृदय में कुछ अवर्ण-

नीय मनोभाव उठ रहे थे जो इन्हे मजबूत बघनो मे, इस महान् युवक के साथ एकाकार रहे थे। उसने एक क्षण के लिये सोचा। अरे! मैं यह क्या कर रही हूँ! परन्तु यह विचार थोडी ही देर मे विलीन हो गया। उसके सामने खडा युवक समजू के मन मे बैठ गया था।

सनातन भी समजू को रसीला के दूसरे रूप मे देख रहा था।

विचारो मे मग्न सनातन को झकझोरती, मयूरनी-सी नृत्य करती रसीला का दूसरा रूप समजू कहने लगी 'सेठजी किसी महल मे बैठी पर डोरे डालिये।'

'क्यों तेरे मे क्या कोई उससे कम सौन्दर्य है। तू भी तो रूप का अम्बार है।'

'हमारे रूप का तो झोपडे मे ही धूल-धूसरित होना अच्छा है।'

'यह कौनसा नियम है?'

'जातिपाँति का। कहाँ आप और कहाँ हम! दोनो के बीच जमीन-आसमान का अन्तर है। हम तो ससार की ठोकरें खाने वाले हैं। हमारे पाँव पडने को लोग अशुभ मानते हैं, जबकि आपके पाँव स्थान-स्थान पर पूजे जाते हैं।'

जातिवाद के झगडे के दर्शन को व्यक्त करने वाली समजू के हृदय मे कितनी तीखी उफलन है। कितना इसमे ज्ञान है। इसकी कल्पना मात्र ने ही सनातन का दिल जीत लिया। समाज की इस परम्परागत दलबदी की प्रणाली से सनातन को बडी घृणा हुई। इस परम्परागत पाखण्ड को छिन्न-भिन्न कर देने की सनातन को बडी उत्कण्ठा हुई।

'अब आप मुझे देर मत करो। समय बीतता जा रहा है।' समजू ने जाने के लिये अन्तिम आग्रह किया। सनातन ने वही खेरीजवाला हाथ लम्बा किया:

'ले।'

और समजू ने आँख और गर्दन से नकारात्मक भाव प्रकट किया।

'क्यो?'

'नही, मुझे अपनी मजदूरी ही चाहिये।'

'किन्तु......।'

'यह किन्तु—मगर कुछ नही। आप मुझे आठ आने दे दीजिये, जिससे मैं अपनी राह लूँ।'

'समजू!' सनातन ने भावावेश मे कहा।

'नही, ऐसा करना सम्भव नही! स्वार्थ के सम्बध अधिक दिन चल सके यह सम्भावना कम ही है।'

'चलेंगे।' सनातन ने श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा।

'नहीं, मैं ऐसा नहीं मानती ! यदि आज फँस जाऊँ तो कल यह सान भारी हो जायगा।'

'तब फिर छोड़ देना। यहाँ भी तो परमात्मा की असीम कृपा है।'

'इससे मुझे नफ़रत है। अपनी मेहनत से न खाकर अमरबेल की भाँति दूसरों पर आश्रित बनूँ तो मेरी-सी मूर्खा कौन होगी ?'

'मैं क्या दूसरा हूँ ?'

'ठीक है। जी हाँ।' कहकर समजू ने अँगड़ाई ली। अँगड़ाई से मानो रति का अभूतपूर्व माधुर्य निकल पड़ा। तपस्वी के तप को भंग करने वाली आँखों को नचाते हुए वह सनातन की बात सुनने को ठहर गई।

'मुझे तो परायापन नहीं लगता है।'

'लाइए, आठ आने दीजिए ! आपकी बातों का अन्त सम्भव नहीं।'

और सनातन ने अपनी मुट्ठी से एक अठन्नी का सिक्का निकालकर समजू को दे दिया। समजू ने भी आखरी बार सनातन को देखा और वह वहाँ से चल पड़ी। जाते समय सनातन ने अनुभव किया मानो उसके हृदय से मृग की कस्तूरी की सुगन्ध फैल कर बहार जा रही है।

उसकी यह विचार-तन्द्रा जैसे ही टूटी उसके कानों में वे ही पहले के मधु में तृप्त स्वर सुनाई दिये : 'धार लगवाओ कोई स···रो··ता ···कैं···ची··· चा···क····कू।' सनातन ड्योढ़ी में ही खड़ा-खड़ा इन शब्दों को उस समय तक सुनता रहा जब तक वे सुनाई पड़ते रहे। प्रथम दृष्टि में ही प्रीत बाँधकर चले जाने वाली समजू की कल्पना-मूर्ति सनातन न जाने कब तक बनाता रहा।

मोहपाश में

सनातन के स्वस्थ हृदय को ठेस पहुँचाकर रूपवती समजू चली गई, किन्तु समजू के चले जाने के बाद सनातन के दिल में उसकी ही याद बार-बार आने लगी। दूसरे दिन भी सनातन ने उसकी राह देखी। इसी कारण से उसने मित्र-मंडली को भी जल्दी से बिखेर दिया। उसका मन किसी काम में नहीं लग रहा था। कुछ ही क्षणों के परिचय में समजू उसके हृदय की अधिष्ठात्री बन चुकी थी। इस आकर्षण का मूल कारण समजू और रसीला के शरीर की गठन का समान होना था। रसीला और समजू में किसी भी प्रकार का अन्तर न होने के कारण वह ससुर के घर से अपमानित, दुत्कारा हुआ तथा भग्न-हृदय होकर लौटा था। इस भग्न-हृदय में नवप्राणों को भरने वाली मात्र समजू ही थी जिसकी मोहकता और मुग्धता पर सनातन सदा ही रीझा रहता था। एक क्षण के लिए उसने सोचा, एक बार समजू को आधुनिक वस्त्रों में सजा कर बम्बई ले जाऊँ और दोसी को बता दूँ कि देखो दोसी तुम्हारी रसीला और इस समजू में क्या अन्तर है? जैसे जैसे सनातन समजू के विचारों में लीन होता जा रहा था वैसे ही वैसे उसकी आकृति का प्रभाव मानस-पटल पर अधिकाधिक होता जा रहा था अर्थात् समजू की आकृति मानस-पटल पर ज्यादा प्रभावशाली होती जा रही थी। समजू के स्मरण से ही उसके हृदय व दिमाग की दीवारें रँग गई।

कल का वह समय, जब सरजू आई थी, बीत चुका था। बाजार में दूसरी सिकलीगरनियाँ दृष्टिगत हो रही थीं। उनका 'धार लगवाओ......' के शब्द सुनाई पड़ रहे थे किन्तु कल का माधुर्य इन स्वरों में बिल्कुल नहीं था—अंतर के सातों पर्दे बेध कर अन्तर में सदा के लिए बैठ जाये ऐसा मधुर स्वर उनमें एक भी नहीं था। साथ-ही-साथ उनके रूप में भी सलोनेपन का अभाव था।

सनातन बैठक से बाहर निकला। ऊपर के कमरे में जाकर वहाँ से उसने पिछवाड़े की खिड़की से सामने दिखाई देने वाले नदी की ओर दृष्टि डाली। सिकलीगरों के डेरे दूर थे। इन सिकलीगरों ने नदी के किनारे के नीचे वाले विस्तृत मैदान में अपने खेमे गाड़ रखे थे। अतः वहाँ तक नजर तो जाती थी किन्तु दूरी के कारण किसी मनुष्य को देखना सम्भव नहीं था। दूर क्षितिज और उसकी ड्योढ़ी के बीच में गड़े खेमों के फटे-फटे उड़ते कपड़े वहाँ से दिखाई दे रहे थे। फिर भी किसी गहरी आशा के सहारे टकटकी लगाकर सनातन सामने के किनारे पर, जहाँ तक दृष्टि पहुँचे वहाँ तक, न जाने कब तक देखता ही रहा। परन्तु जिसको वह खोज रहा था, उसके न दिखाई देने पर उसने एक निराशा की साँस ली और कमरे में वैसे ही इधर-उधर चक्कर लगाने लगा।

भगवान् भास्कर बिल्कुल सिर पर आ चुके थे। अपने पूरे वेग से भगवान् भास्कर अपनी किरणें पृथ्वी पर फैला रहे थे। पृथ्वी तवे-सी जल रही थी। पृथ्वी से ऐसी गर्मी निकल रही थी कि यदि नंगे पाँवों से कोई चल पड़े तो फफोले होना आवश्यक हो जाये। सुबह का काम समाप्त करके ऐसे समय में सिकलीगर अपने-अपने कन्धों पर सान रखे हुए नदी के किनारे की ओर आगे बढ़ रहे थे। इस भयंकर व प्रचंड गर्मी के कारण उनके पाँव जल-जलकर पक्के पड़े से बन चुके थे। कंकड़ तो क्या उनके पाँवों में यदि बबूल के काँटे भी घुस जायें तो भी कोई प्रभाव नहीं हो सकता। यानी पाँवों की मोटी चमड़ी में काँटे भी नहीं घुस सकते थे। जन्म से ही नंगे पाँव पृथ्वी पर बराबर भटकते रहने से उनके पाँवों की चमड़ी पाड़े की काँध-सी काली व मोटी हो गई थी। इस कारण से शूल स्वयम् ही टूट जाते थे। इसी प्रकार उनका जीवन इस संसार में आरम्भ होता तथा इसी प्रकार पूर्ण हो जाता था। आबादी वाले स्थानों में ये लोग नहीं रहते और यदि रहने को मिल भी जाता तो ये लोग रहना पसन्द नहीं करते थे। जीवनभर की परिश्रम से पैदा की हुई पूँजी और संचित पशु-सम्पत्ति उनकी गाड़ियों में ही समा जाती है। इनका धंधा वंश-परम्परा से सदा भटकना ही रहा है। एक गाँव से दूसरे गाँव, दूसरे गाँव से

तीसरे गाँव। इसी प्रकार का क्रम जीवन-पर्यन्त चलता रहता था और जीवन व्यतीत हो जाता था।

गाँव गाँव मे ये लोग अपने पडाव डालते और उनके तम्बू गोईंडा मे खड़े हो जाते थे। ये लोग गाडियो को खडी करते और उन पर आलम्ब लगा कर अपना घर बना लेते। सकलीगरनियाँ जमीन को लीपकर आँगनो को सुन्दर बनाती। बिना लिपी जमीन पर बैठना वे पाप समझती थी। बिना लिपी जमीन पर बैठने का वे यह अर्थ लेती थी कि हम भूमि का अपमान कर रही है। इसलिये पडाव डालने के बाद सबसे पहले दिन वे गाडियो को आलम्ब के सहारे लगाकर आँगना लीपती थी। आगन लीपकर माँडने माँडती। इन आँगना को वे सुन्दर बेल-बूटा के माडनो से ऐसा सजाती मानो सारा जीवन उनको इन्ही आँगनो पर व्यतीत करना हो।

गाँव गाँव भटकते रहने पर भी ये लोग कभी एकाकी जीवन नही बिताते हैं। इनके साथ इनके दो चार गूँगे जानवर अवश्य होते हैं। इन जानवरो को ये लोग खूब प्यार करते हैं। अभाव की स्थिति मे रहने पर भी स्वय भूखे रहकर पशुओ का पेट भरना ये लोग कदापि नही भूलते हैं।

फटेहाल सकलीगरो को देखकर सनातन ने मन मे सोचा कि मैं कहाँ इस ससार मे खोगया। सकलीगर नदी किनारे की ओर जा रहे थे। उसके मन मे अनेक विचार आने लगे, कहाँ मेरा जीवन और कहाँ इस समाज के निरस्कृत प्राणी! हे मन! तू वास्तव में किसको प्यार करने लगा है? दूसरे ही क्षण इस विचार का प्रत्युत्तर देने के लिए उसके आन्तरिक मन मे परिवर्तन हुआ। मुझे समाज मे क्या लेना-देना? ये भी बेचारे ईश्वर की सृष्टि के जीव ही हैं। तदुपरात उसकी नजर दूर जाते सकलीगरो की परछाइयो पर जम गई। इस समूह मे स्त्रियाँ भी थी किन्तु वही चाल, वही घेरदार घाघरो पर झूलती केसर रग की ओढ़नी और वही शरीर। किन्तु जो सुन्दर गठन उसने कल देखी थी आज झुण्ड मे कही दिखाई नही दे रही थी। कुछ देर तक वह इन दूर जाते सकलीगरो को एक टकटकी से देखकर कमरे से नीचे आगया। थोडी देर के लिए फिर बैठक मे बैठा। किन्तु आज उसके मन मे शाति नही थी। पास ही पर रखी टेबुल की पुस्तको मे-से एक पुस्तक लेकर उसने पढने की कोशिश की किन्तु उसका मन पढने मे नही लगा। पुस्तक बन्द करके ज्योही वह ऊपर के कमरे की ओर जाने को तैयार हुआ कि भाई भोजन कर लो कहते हुए ओतम-माँ बैठक की सीढियो तक आ पहुँची। जेब मे-से सनातन ने घडी निकाली और उसकी सुइयो पर नजर डालते हुए वह भोजन के लिए चल दिया।

सनातन का नियम था कि भोजन के समय दो चार आदमी उसके साथ बैठकर भोजन करें ही, किन्तु आज कोई दूसरा व्यक्ति नहीं था। ड्योढ़ी की बैठक खाली ही देखकर ओतम-माँ ने सनातन से पूछा :

'क्यों, भाई क्या आज कोई दूसरा आदमी नहीं है ?'

'हाँ, माँ आज कोई विशेष व्यक्ति नहीं आया।'

ओतम-माँ को यह बड़ा बुरा लगा। उनकी मान्यता थी कि जिस दिन घर में मेहमान कम आये वह दिन निकम्मा-दिन है। अतः इस बात से ओतम-माँ के दिल को एक धक्का लगा। यही भाव उसके चहरे पर स्पष्ट उभर आये थे। किन्तु सनातन को इस समय यह सब न तो देखने ही की फुरसत थी और न सुनने की ही। वह तो पूर्ववत् समजू में ही खोया हुआ था। ओतम-माँ के प्रश्नों का उत्तर भी वह वैसे ही दे देता था।

चुपचाप सनातन भोजन करने लगा किन्तु आज उसने रुच कर खाना नहीं खाया। इससे ओतम-माँ से पूछे बिना नहीं रहा गया। वे बोलीं :

'क्यों भाई क्या आज तबियत ठीक नहीं है ?'

'नहीं।'

'तब फिर खाना क्यों कर पूरा नहीं खाया'

'कुछ नहीं, वैसे ही।' सनातन ने जब देखा कि बात बढ़ती ही जा रही है तो उसने मुँह पर एक मुस्कान लाने का निरर्थक प्रयत्न किया।

'बेटा पूरा खाना न खाने से यह शरीर नहीं चल सकता है। खाना ही इस शरीर का तेज है। दीपक में जितना तेल डालोगे उतना ही उसका तेज होगा। इसी प्रकार इस शरीर को भी जितना खाना दो उतना ही यह काम करेगा।

सनातन ने चुपचाप खाना खाया और हाथ धोलिये। दोपहरी में कभी भी न सोने वाला सनातन आज सोने के विचार से ऊपर के कमरे की ओर बढ़ा। किन्तु उसे नींद कैसे आये ! सनातन की नींद को तो आज समजू की स्मृति कठोर बंधन में बाँध कर चौकीदार की तरह पहरेदारी कर रही थी। वह पलंग पर लेट गया किन्तु करवटें बदलने में ही तीसरा पहर बीत गया। वह ऊपर के कमरे से नीचे आया और बैठक में आकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद सनातन ने जयसिंह भाई को बुलाकर चाय लाने को कहा।

दो बड़े कप से भी ज्यादा चाय आ जायें ऐसे एक टम्बलर में चाय तथा एक खाली रकाबी जयसिंह भाई ने सनातन को लाकर दी। सनातन को सदा से ही दो कप चाय पीने की आदत थी। इस कारण वह टम्बलर से ही चाय पीता था।

चाय पी लेने पर भी आज उसकी सुस्ती दूर नही हुई। मन की व्याकुलता के भाव उसके चहरे से स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे। वह फिर से उठा और उपर के कमरे मे चला गया। सन्ध्या ढल चुकी थी और एक दो घडियो मे तो सन्ध्या की कलुषता ने आकाश को रग-विरगा वना दिया।

ऐसे समय मे हाथ मे कांच की एक वोतल लेकर एक स्त्री नदी का किनारा लांघ कर गांव की ओर तेजी से वढ रही थी। स्त्री को गांव की ओर आते देखकर सनातन ने ऊपर के कमरे की खिडकी खोलकर वडे ध्यान से नदी के किनारे की ओर देखा। जैसे ही वह समीप आई सनातन ने इस स्त्री को पहचान लिया। स्त्री की चाल बही थी तथा उसकी मस्ती मे यौवन टपक रहा था। घेरदार घाघरा उसकी कमर मे बँधा था, जिससे मोहक वृत वन रहे थे। यह स्त्री समजू ही थी। ज्यों-ज्यों वह समीप आ रही थी सनातन का हृदय नाचने लगा। इस वन के फूल के साथ क्योंकर उसे स्नेह है, इसका कारण जानने को उसने कई अटकलें लगाईं किन्तु खूव विचार करने पर भी वह इसका कारण नही जान सका। वह विचारो की उधेड-वुन मे खो रहा था कि वडी तेज गति से गांव की ओर आ रही समजू ने गांव मे प्रवेश किया। ठीक इसी समय सनातन जल्दी से कमरे से उतरकर बठक मे आया और थोडी देर वाद वह डयोढी के कमरे मे आकर खडा रहा।

जयसिंह भाई इस समय बावली के लिय घास की शैय्या विछाने मे लगे हुए थे। बावली के लिए रोज घास की शैय्या वनाई जाती थी। बावली की सुरक्षा बडे लाड-प्यार से की जाती थी।

डयोढी का कमरा इस समय खाली था।

डयोढी की चौखट पर खडे होकर सनातन ने सामने से आ रही समजू को एक नजर से देख लिया। समजू के हृदय के तार झनझना उठे। पल भर मे तो वह मूर्त-सी पागल बनकर डयोढी मे आकर खडी हो गई। सनातन ने बात शुरू की।

बनावटी क्रोध मे सनातन ने कहा 'सुवह क्यों नही आई?'

'बुढिया विस्तरो मे ही सो रही है।'

'क्या हो गया?'

'एक दिन छोडकर वुखार आता है। वुखार न जाने क्यों पीछा नहीं छोड रहा है!'

'तू कहां जायेगी?'

वोतल को ऊँचा करके उसने कहा 'फिरती धानी का घी लेने को!'

जवाव देने की चालाकी से सनातन वहुत खुश हुआ। बात करते हुए स्वय को हँसी का शिकार न वन जाना पडे, समजू ने उत्तर देने मे

ऐसी चालाकी बताई थी।

'यहाँ से ले जा!'

'नहीं, सेठ आपके यहाँ से नहीं चाहिये।'

'क्यों छूआछूत लग जायेगी।'

'हाँ।'

'कारण।'

'हमारे प्रयत्न का नहीं।'

'किसने कहा?'

'स्पष्ट तो है, जो परिश्रम करे उसे ही मिलता है और उसी का सम्मान होता है।'

'कब तक राह देखूं?'

'किसकी?'

'तेरी।'

'मेरे में तुमने ऐसा क्या देखा है जो व्यर्थ में परेशान हो रहे हो?'

'यह मेरे देखने की बात है।'

'नहीं देखने में ही लाभ है।' समजू ने अपना सलूका सामने लिया और उसके मुँह पर एक मधुर मुस्कान आगई।

समजू की इस मधुर मुस्कान के सामने सनातन को सारे संसार की सुन्दरता फीकी लगी।

'अधिक बात करने का समय नहीं है।' सनातन ने जयसिंह भाई के आने का समय हो जाने से चिन्ता करते हुए कहा।

'मैं तुमको कहाँ रोक रही हूँ।'

'कब आयेगी?' सनातन ने नेह भरे नेत्रों से एक बार फिर समजू को देखा।

'आधी रात्रि में।'

'समजू ने जैसे ही बात पूरी की कि जयसिंह भाई के आने की आहट हुई। पांवों की आहट को सुनते ही सनातन जिस अवस्था में था उसी अवस्था में बैठक में आकर बैठ गया।

'जयसिंह भाई आप एक काम करो!'

'बताओ, भाई।'

'तुम खाना खाकर आराम से जानुड़ा जाओ और वहाँ से लाखा कोली को साथ लेकर पुनः सुबह लौट आना।'

'जानुड़ा क्या कोई दूर है? पत्थर भी यदि यहाँ से फैंका जाये तो

जाम्बुडा मे जाकर गिरे अभी पहुँच जाऊँ, भला इसमे सुबह क्या आना ? अभी चला जाऊँ और कहो तो खाना खाने से पहले ही आ जाऊँ।'

'नही लाखा आज ताल्लुके गया होगा इसलिए उसको लौटने मे रात हो जायेगी। व्यर्थ मे ही तुम्हे वहाँ बैठे रहना होगा, इसलिये आराम से खाना खाकर जाना और सुबह लौट आना। ऐसा कोई जल्दी का काम नही कि रात मे दु:ख देखना पडे।'

'तब ठीक।'

'खाना खाकर तुम चले जाना।' सनातन ने बात को दोहराते हुए कहा।

'ठीक भाई।'

तत्पश्चात् सनातन खाना खा लेने के समय तक वैसा-का-वैसा ही बैठा रहा। जैसे ही उसने भोजन किया जयसिंह को जाम्बुडा जाने की पुन याद दिलवाई तथा साफ साफ कहा कि 'यदि लाखा रातोरात ही आने को अधीर हो उठे तो कहना कि इस समय भाई तुम्हारी इतजार नही करेंगे, दिन उगने पर ही लाखा यहाँ आये।'

जयसिंह भाई को जाम्बुडा की ओर रवाना करके सनातन ने ड्योढी के दरवाजे बन्द कर लिए क्योकि आज उसे ऊपर के कमरे में ही सोना था।

जयसिंह भाई ने जाम्बुडा का मार्ग लिया।

शुक्ल पक्ष की सप्तमी का चन्द्रमा तजपुर की सीमा पर अपना मद मद प्रकाश फैला रहा था। चन्द्रमा की सवारी तेजी से आकाश के पटल पर फैलती हुई अनेक तारो के बीच परिभ्रमण कर रही थी। दिन भर की आतप्त धरा के रजकण चन्द्रमा की शीतलता के स्पर्श से आनन्दित हो उठे। किन्तु समजू की पल-पल राह देखने वाले सनातन के दिल को यह शीतल चन्द्रमा शान्ति नही दे सका।

अन्तत मध्य रात्रि का मोगरा खिला और सामने के नदी के किनारे से एक छाया चाँदनी रात मे आती दिखाई दी। देखते-देखते इस छाया ने नदी का किनारा तय कर लिया और गाँव मे घुस पडी। झोपडो की ओट लेती हुई वह ड्योढी तक आगई। उसी समय सनातन ने ड्योढी का कुन्दा खोल दिया और समजू की नकाब की काली ओढनी उतार दी। दबे पाँवो दोनो ऊपर के कमरे मे चढ गये। कमरे के एक कोने मे समजू खडी हो गई, अत सनातन ने कहा

'बैठ।'

समजू का हृदय धडकने लगा और वह पलग के किनारे पर बैठ गई। इस प्रकार पलग पर बैठने का यह उसके जीवन का पहला प्रसग था। उसका

हृदय धड़क रहा था। धड़क-धड़क करते हुए दिल से वह धीमे-सी बोली :

'सेठ, मेरे से प्यार करना छोड़ दो।'

'क्यों ?'

'हम जंगल में घूमने वाले प्राणियों को महल में रहना शोभा नहीं देता।'

'समजू ! तू तो इस हृदय में समा चुकी है'—कहते हुए सनातन ने समजू का सुन्दर गठीला हाथ खेंचा।'

'थोड़ी शर्म कीजिये !' कहते हुए समजू ने हाथ छुड़वा लिया और उसके गलफूल से गालों पर लज्जा की लालिमा आ गई। इस आई हुई लालिमा को सनातन ने पास में आकर चूम लिया। इससे समजू का दिल जोर से धड़कने लगा।

समजू की अति बलिष्ठ और गठी हुई देह के कारण उसने प्रीति की थी। कमरे के एक कोने पर मंद प्रकाश फैलाता हुआ दीपक इस सुखद मिलन के रंग भरे नहलके को पद्मासन लगाकर, स्थिर चित्त से देख रहा था। अपने गाल को साफ करती हुई समजू ने कजरारी आँखों से सनातन को देखा और एक दृष्टि का पैना तीर सनातन के अभेद अन्तर को बेध गया। कामबाणों से बिधा, सनातन के बाहु-पाश में केसरिया रंग की रंगीली चूँन्दड़ी में ढका हुआ, समजू का रूप से भरा शरीर एक साथ दबा और इससे समजू ने एक अवर्णनीय आनन्द प्राप्त किया।

प्रातःकाल जैसे ही मोर बोले, सनातन के कमरे की हलचल समाप्त होगई। दीपक की स्थिर ज्योति अब डिगमिगा उठी। दोनों के मुँह पर अथाह तृप्ति का वैसा ही आभास हो रहा था मानो दोनों ही तृप्ति सागर में डुबकी लगा चुके हों।

प्रातःकाल की किरणें अपना साम्राज्य फैलायें कि इससे पूर्व ही समजू अपने भ्रष्ट यौवन को समेटकर अपने मेमे में सुरक्षित पहुँच गई।

रूड़की की मृत्यु

रूडकी की बीमारी बढती ही गई। सकलीगरो को अब अधिक समय तक एक ही स्थान मे पडाव डाले रहना सम्भव नही था। गाँव मे अब काम नही रहा और काम करे बिना पेट को दोनो जून भरना असम्भव था। अभी रूडकी की बीमारी के कारण वे एक दिन और ठहर गये। अभी रूडकी का बुखार नही उतरा था तथा जल्दी ही रूडकी का बुखार उतर जायेगा, ऐसे लक्षण भी दृष्टिगत नही हो रहे थे। अत डगे के मुखिया ने ममजू से कहा·

'तेरी माँ को झोली मे डालकर चल दिया जाये।'

ममजू यह सुनकर व्याकुल हो उठी। उसे तेजपुर अभी नही छोडना था। वह स्वयं यह भलीभाँति समझती थी कि उसकी माँ अब अधिक नही जी सकती है। बुखार की गर्मी से उसका शरीर जर्जर हो चुका था। हेरफेर करने से एक दिन पहले मरेगी। वह यह भी स्पष्टरूप से समझती थी कि यदि तेजपुर छोडकर उसकी माँ कही दूसरी जगह मरेगी तो पूरी लकडियो का प्रबन्ध होना भी सम्भव नहीं है। यहाँ उसकी मृत्यु होने से उसका उद्धार हो जायेगा। सेठ सभी व्यवस्था विधिवत कर देगा किन्तु मन के इस भाव को वह किसी प्रकार से किसी को नही बता सकती थी—बाहर बात

करने लायक भी वह नहीं थी।

मुखिया के पूछने पर भी जब समजू चुप रही तो उसने फिर से पूछा :

'लड़की, जो कहता हूँ वह मान जा।'

अनेक विचारों में गोते खाती हुई समजू अन्ततः लड़खड़ाते स्वर से बोली :

'बुढ़िया कम जीने वाली है, व्यर्थ में ही क्यों हेरफेर किया जाये !'

'परन्तु यह क्या हमारे बाप का घर है ?'

'यह हमारा गाँव तो नहीं किन्तु हमारे लिये तो सारी दुनियाँ एक सी है !'

'अब इस गाँव से लाल-पैसा भी मिलना सम्भव नहीं। नए गाँव में जाने पर कम-से-कम आठ दिन तक तो दोनों जून खाने को मिल ही जायेगा!'

'यह बात तो ठीक है किन्तु……मेरा मन नहीं कहता है।'

'ऐसा क्यों ?'

'कारण तो बस यही कि जब तक माँ के प्राण हैं उसे गाँव-गाँव में लेकर नहीं भटकूँ। सारा जीवन ही भटक-भटककर व्यतीत कर दिया। अब यह शांति से मरे यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है।'

'बुढ़िया की क्या अभिलाषा है ?'

'बुढ़िया को क्या कहना है। शान्ति से पड़ी रहने दो। इसमें ही उसे शान्ति है।'

'बुढ़िया मर जायेगी तो अकेली क्या करेगी ?'

'सिर पर हजार हाथ वाला है तो, जो होना है होकर रहेगा।'

'लड़की अभी तू नादान है ? शायद तू यह नहीं जानती कि मनुष्य की मौत मनुष्य के लिये ही भारी हो जाती है ! यदि तेरी माँ मर जायेगी तो न कोई कंधा देने वाला है और न कोई सहारा देने वाला ही है। अकेली खड़ी-खड़ी चीखती रहेगी।'

'जो भगवान की इच्छा होगी वह होगा।'

'चल कर आसमान की ओर पत्थर फेंक कर सिर पर झेलने से क्या मतलब ?'

'चाहे कुछ भी हो। मैं तो एक भी कदम यहाँ से नहीं चलूँगी।'

'व्यर्थ में बचपना मत कर। चुपचाप लूगड़ा बाँध ले।' मुखिया ने लाल आँखें करके कहा।

'कह दिया कि मुझे तो अभी यहीं पड़े रहना है।'

'अच्छी बन और मान जा। नहीं तो व्यर्थ में ही बुढिया के शरीर को कौवे-कुत्ते नोच-नोच कर खा जायेंगे।'

'जो भाग्य मे लिखा होगा होकर रहेगा।'

डगे की दूसरी सब गाडियाँ तैयार होगई। परम्परा के अनुसार डगे के भोजा मुखिया के कदम न बढाने तक कोई आगे नही बढ सकता है और इसी रीति के कारण सारी तैयार गाडियाँ भोजा के हुक्म की राह जो रही थीं।

'अब भी कहता हूँ मेरा कहना मान जा।'

भोजा ने आखिर तक समजू को समझाने का प्रयास किया। किन्तु समजू ने अपना नकारात्मक उत्तर ही बनाये रखा। इसलिए भोजा एक कठोर दृष्टि कर वहाँ से चल दिया। इसके पीछे-पीछे गाडियो की पक्ति चल दी। मात्र एक तम्बू वहाँ दिखाई दे रहा था।

भगवान् सूर्य देव आ चुके थे। सदा ही कई वर्षों तक एक साथ रहने वाली गाडियाँ उसको अकेला छोडकर चल दी थी। समजू इन जाती हुई गाडियो की पक्ति को ध्यान से देखती रही। विधाता ने न जाने उसके भाल मे क्या लिखा है ? अपनी जाति को छोडकर आज वह अकेली ही तेजपुर के इस भयकर जगल मे पडी रही। किस कारण से ? एक फक्कड़ युवक का आकर्षण उसके रोम-रोम मे नई चेतना जगा रहा था। उसकी आँखो के सामने सनातन की एक कल्पना मूर्ति आ गई। कैसा युवक ! जिसके भाग्य अच्छे हो वही इस घर मे आयेगा।

तम्बू से उसकी माँ का धीमा मन्द स्वर सुनाई दिया और वह कल्पना लोक से जगी। दूर-दूर जाती हुई गाडियाँ धीरे-धीरे अदृश्य होगईं। वह जल्दी से तम्बू मे घुसी।

बुढिया का जर्जर शरीर और अधिक जर्जर हो गया था। शरीर मे बुझते दीपक-सी दो आँखें चमक रही थी। इसके अलावा चैतन्यता का कोई अन्य लक्षण नही प्रतीत हो रहा था। बुढिया की जीभ सूख गई थी। सूख कर हलक से चिपकी जीभ हटा कर बुढिया बोली :

'बेटी ""पानी""'

और समजू ने मिट्टी के घडे में-से कटोरा भरकर बुढिया के मुँह मे पानी टपकाया। सूखते हलक मे पानी की बूँदें पहुँचते ही बुढिया को चैन मिला और फिर उसने आँखें मूँद ली।

सनातन द्वारा ताल्लुके से बुलवाया हुआ वैद्य दवा की पुडिया दे गया था, किन्तु उनसे कुछ भी फर्क नही हुआ। समजू यह भलीप्रकार जानती थी

कि वृद्धावस्था की बीमारी मनुष्य को सदा ही काल के गाल में छोड़कर जाती है। इसमें किसी की भी कुछ नहीं चलती है। जब यमराज ही ग्रसने को आ जाये तो उनसे कौन पीछा छुड़वा सकता है। फिर भी सनातन वैद्य को बराबर बुलवाता रहता था।

वैसे तो सनातन सेठ का नियम था—और वह भी झेवरसेठ के समय से—एक से, एक हजार भी यदि खर्च हों तो कोई आपत्ति नहीं, किन्तु तेजपुर की सीमा में दवा के अभाव में किसी की मृत्यु न हो। बीमार आदमियों के लिये उनकी घोड़ागाड़ी वैद्य को लाने-लेजाने के लिए दौड़ती रहती। दवाओं के लिए उसकी तिजोरी के ताले सदा खुले रहते थे। तदुपरांत आदमी निरा-धार हो या मध्यमवर्ग का, उसकी कोई बात नहीं थी। सनातन ने इस परम्परा को यथावत बनाये रक्खा था। वह परम्परा समजू के लिये ही नहीं थी अपितु सबके लिए थी। परन्तु समजू को इस बात का बोध न होने कारण वह यह समझती थी कि सनातन उसकी मां को स्वस्थ बनाने के लिए कितना प्रयत्न कर रहा है। किन्तु सभी प्रयत्न उस समय निष्फल हो जाते हैं जब जिन तिलों में तेल नहीं, उनको पेर कर तेल निकालने की आशा की जाती है। बहुत मना करने पर सेठ मानता ही नहीं था। समजू ने अपना जीवन ही सनातन को समर्पित कर दिया था। फिर उसकी आज्ञा टालने का कोई प्रश्न ही नहीं था। इस विचार के कारण ही वह सनातन के आदेश का अक्षरशः पालन करती जा रही थी। उसने यह कल्पना नहीं की कि विवाह करना और प्रेम करना दो भिन्न-भिन्न बातें हैं। उसके मतानुसार चाहे सनातन विवाहित नहीं था फिर भी उस एक को ही अथाह प्रेम करके जीवन पूरा करना था, और एक बार दृढ़ निश्चय कर लेने पर अपने मन्तव्य से डिग जाने वाली भी समजू नहीं थी। वह बड़े ही पक्के निश्चय वाली स्त्री थी।

बुढ़िया ने पुनः गहरी बैंसी हुई आंख की पुतलियां ऊँची कीं और पुतलियां खोलकर अपनी कोख से पैदा की हुई समजू पर एक नजर डाल कर कहने लगी : 'बेटी !'

बुढ़िया के शब्दों को भलीप्रकार सुनने के लिये समजू ने अपने कान बुढ़िया के मुँह पर लगा दिये।

बुढ़िया ने भी अपनी सारी शक्ति बोलने के लिए एकत्रित की और फिर बोली : 'बेटी ! अब मैं घड़ी-दो-घड़ी की मेहमान हूं।'

'मां ! ऐसी बात मत बोल।'

'जो मुझे दृष्टिगत हो रहा है वही तो मैं कहती हूं।'

'मैं आंचल फैला कर भगवान् से प्रार्थना करती हूं कि मां तू शीघ्र ही स्वस्थ हो जाये।' समजू की आवाज भारी हो गई। उसका गला रुंध गया।

'बेटी, यह बात अब भगवान् को मजूर नही हो सकती है।'

'क्यो कर नही मजूर करेगा ?'

'अजल-पानी जो छूट गया है।'

'समय निकल गया।'

'हाँ, बेटी। मनुष्य की आयु बीतने मे समय नही लगता। प्रचण्ड वायु के मात्र एक ही थपेडे से जैसे दीपक बुझ जाता है वैसे ही जीवन का दीपक भी बुझ जाता है।'

'माँ। यह तो मिट्टी का दीपक होता है।'

'यह शरीर भी ऐसा ही होता है। यह शरीर भी मिट्टी के दीपक-सा होता है जिसे बुझते समय नही लगता है। बिना किसी प्रकार की बीमारी के भी नष्ट हो जाये। इस पर भी मेरी तो उम्र पक चुकी है। मेरा कितने दिनो का भरोसा!'

माँ की बात सुनकर समजू की पानीदार आँखें डबडबा गईं।

'माँ तू ऐसा मत बोल।'

'बेटी, मुझे तुझे दो बातें कहनी हैं।'

'माँ! कह मैं सुन रही हूँ।'

'सुनना ही नही है जीवन मे उनका पालन भी करना होगा।'

'वचन पालने योग्य होगा तो पालूँगी।'

बुढ़िया की गहरी धँसी आँखें कुछ क्षणो के लिए बन्द होकर पुन खुली। हलक से लगी जीभ को पोपले मुँह मे थूक से गीला करके वह बोली

'सवर्ण लोगो का विश्वास नही करना चाहिए।'

समजू ने आँखें नीचे करली। आँखो म भरे हुए आँसू बाहर बहने लगे। रूडकी अब फिर से कहने लगी

'मैं भी ऐसे ही माया के लोभ मे चप्पड खा चुकी हूँ। उच्चवर्ग के लोग अपनी इज्जत को ढकने के बहाने लाखो बातें करते हैं। जिस दिन हमल ठहर जाता है, उस दिन कोई भी अपना नही रहता है। उस दिन ऊपर आकाश और नीचे धरती ही होती है। कोई धीरज देने वाला नही होता। बेटी तू अभी खिलता फूल है। समय आने पर सभी बातें तू स्वय जान जायेगी।'

'देह मे से हसा उडे इससे पहले मैं हल्की हो जाऊँ तो मैं शान्ति स मर सकूँगी।' कहते हुए रूडकी की जबान बन्द हो गई। बडी कठिनाई से वह बोली :

'तू भी सवर्ण वश का खून है।'

मृत्यु की अन्तिम घडिया मे माँ को अपने जीवन का रहस्य खोलते

कि वृद्धावस्था की बीमारी मनुष्य को सदा ही काल के गाल में छोड़कर जाती है। इसमें किसी की भी कुछ नहीं चलती है। जब यमराज ही ग्रसने को आ जाये तो उनसे कौन पीछा छुड़वा सकता है। फिर भी सनातन वैद्य को बराबर बुलवाता रहता था।

वैसे तो सनातन सेठ का नियम था—और वह भी झवेरसेठ के समय से—एक से, एक हजार भी यदि खर्च हों तो कोई आपत्ति नहीं, किन्तु तेजपुर की सीमा में दवा के अभाव में किसी की मृत्यु न हो। बीमार आदमियों के लिये उनकी घोड़ागाड़ी वैद्य को लाने-लेजाने के लिए दौड़ती रहती। दवाओं के लिए उसकी तिजोरी के ताले सदा खुले रहते थे। तदुपरांत आदमी निराधार हो या मध्यमवर्ग का, उसकी कोई बात नहीं थी। सनातन ने इस परम्परा को यथावत बनाये रखा था। वह परम्परा समजू के लिये ही नहीं थी अपितु सबके लिए थी। परन्तु समजू को इस बात का बोध न होने कारण वह यह समझती थी कि सनातन उसकी माँ को स्वस्थ बनाने के लिए कितना प्रयत्न कर रहा है। किन्तु सभी प्रयत्न उस समय निष्फल हो जाते हैं जब जिन तिलों में तेल नहीं, उनको पेर कर तेल निकालने की आशा की जाती है। बहुत मना करने पर सेठ मानता ही नहीं था। समजू ने अपना जीवन ही सनातन को समर्पित कर दिया था। फिर उसकी आज्ञा टालने का कोई प्रश्न ही नहीं था। इस विचार के कारण ही वह सनातन के आदेश का अक्षरशः पालन करती जा रही थी। उसने यह कल्पना नहीं की कि विवाह करना और प्रेम करना दो भिन्न-भिन्न बातें हैं। उसके मतानुसार चाहे सनातन विवाहित नहीं था फिर भी उस एक को ही अथाह प्रेम करके जीवन पूरा करना था, और एक बार दृढ़ निश्चय कर लेने पर अपने मन्तव्य से डिग जाने वाली भी समजू नहीं थी। वह बड़े ही पक्के निश्चय वाली स्त्री थी।

बुढ़िया ने पुनः गहरी धँसी हुई आँख की पुतलियां ऊँची कीं और पुतलियाँ खोलकर अपनी कोख से पैदा की हुई समजू पर एक नजर डाल कर कहने लगी : 'बेटी !'

बुढ़िया के शब्दों को भलीप्रकार सुनने के लिये समजू ने अपने कान बुढ़िया के मुँह पर लगा दिये।

लड़की ने भी अपनी सारी शक्ति बोलने के लिए एकत्रित की और फिर बोली : 'बेटी ! अब मैं घड़ी-दो-घड़ी की मेहमान हूँ।'

'माँ ! ऐसी बात मत बोल।'

'जो मुझे दृष्टिगत हो रहा है वही तो मैं कहती हूँ।'

'मैं आंचल फैला कर भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि माँ तू शीघ्र ही स्वस्थ हो जाये।' समजू की आवाज भारी हो गई। उसका गला रुँध गया।

'बेटी, यह बात अब भगवान् को मजूर नही हो सकती है ।'

'क्यो कर नही मजूर करेगा !'

'अजल-पानी जो छूट गया है ।'

'समय निकल गया ।'

'हाँ, बेटी । मनुष्य की आयु बीतने मे समय नही लगता। प्रचण्ड वायु के मात्र एक ही थपेडे से जैसे दीपक बुझ जाता है वैसे ही जीवन का दीपक भी बुझ जाता है ।'

'माँ । यह तो मिट्टी का दीपक होता है ।'

'यह शरीर भी ऐसा ही होता है । यह शरीर भी मिट्टी के दीपक-सा होता है जिसे बुझते समय नही लगता है । बिना किसी प्रकार की बीमारी के भी नष्ट हो जाये । इस पर भी मेरी तो उम्र पक चुकी है । मेरा कितने दिनो का भरोसा !'

माँ की बात सुनकर समजू की पानीदार आँखें डबडबा गईं ।

'माँ तू ऐसा मत बोल ।'

'बेटी, मुझे तुझे दो बातें कहनी हैं ।'

'माँ ! कह मैं सुन रही हूँ।'

'सुनना ही नही है जीवन मे उनका पालन भी करना होगा ।'

'वचन पालने योग्य होगा तो पालूँगी ।'

बुढिया की गहरी धँसी आँखें कुछ क्षणो के लिए बन्द होकर पुन खुली। हलक से लगी जीभ को पोपले मुँह के थूक से गीला करके वह बोली

'सवर्ण लोगो का विश्वास नही करना चाहिए ।'

समजू ने आँखें नीचे करली । आँखो में भरे हुए आँसू बाहर बहने लगे । रूडकी अब फिर से कहने लगी .

'मैं भी ऐसे ही माया के लोभ मे थप्पड खा चुकी हूँ । उच्चवर्ग के लोग अपनी इज्जत को ढकने के बहाने लाखो बातें करते हैं । जिस दिन हमल ठहर जाता है, उस दिन कोई भी अपना नही रहता है । उस दिन ऊपर आकाश और नीचे धरती ही होती है । कोई धीरज देने वाला नही होता । बेटी तू अभी खिलता फूल है । समय आने पर सभी बातें तू स्वय जान जायेगी ।'

'देह मे से हसा उडे इससे पहले मैं हल्की हो जाऊँ तो मैं शान्ति से मर सकूँगी ।' कहते हुए रूडकी की जबान बन्द हो गई । बडी कठिनाई से वह बोली :

'तू भी सवर्ण वश का खून है ।'

मृत्यु की अन्तिम घड़ियों में माँ को अपने जीवन का रहस्य खोलते

देखकर समजू रुड़की के और अधिक समीप आगई। वह अतीत की वात जानने को अति उत्सुक हो रही थी।

'मैं उस समय तुझसे उम्र में थोड़ी ही बड़ी थी। गढ़ के गोईंडा में खेमें गड़े हुए थे। और ठोकर खाई ! माया के मोह में ठोकर खाने से मेरे हमल रह गया। तदुपरान्त तू पैदा हुई। वेटी ! तेरे में दुर्लभसेठ के वंश का खून है। तुझे गोद में लेकर मैं जिस तेरे पिता दुर्लभ दोसी को तेरा मुँह वतलाने को गई तो उसने अपना मुँह अपने दोनों हाथों से ढक लिया। इसके वाद मैंने पक्का निश्चय कर लिया कि इन सवर्ण लोगों से कभी प्रीति नहीं करनी चाहिये। तेजपुर के युवक ने तेरे पर डोरे डालना शुरु किया है। इसी से दुर्लभ दोसी की वेटी के साथ विवाह होने वाला है। मैंने सुना है कि आज तो वम्वई में उसके पास खूब सम्पत्ति है।'

माँ का एक-एक शब्द सुनकर समजू सिसकने लगी। वुढ़िया कुछ देर रुक कर वोली :

'वेटी ! उस दिन मेरे पर सकलीगर का हाथ था। मैं विवाहित थी और सकलीगर जीवित था, किन्तु तू तो अभी कुमारी तथा अकेली है। तुझे तो लोग कच्चा खा डालेंगे। दृष्टि का मार सवसे बुरा होता है।'

समजू का सारा शरीर काँपने लगा। माँ के वचन उसे वहुमूल्य प्रतीत हुए। थोड़ी देर में उसने विचार किया कि तेजपुर छोड़कर विदेश को चल दूँ। वुढ़िया को झोली में डालकर फिर से अपने जाति भाइयों से मिल जाऊँ। किन्तु सेठ के साथ वचनवद्ध हूँ। यदि वचन तोड़ूँ तो विश्वासघाती कहलाऊँ !

इसी सोचविचार में रुड़की के हाथ-पाँव ठण्डे होने लगे तथा समजू कुछ भी वोले कि इससे पूर्व रुड़की ने इस असार-संसार से सदा के लिये विदा ले ली। समजू की आँखों से टपटप आँसू गिरने लगे। उसके रुदन से उजाड़ वन और भयंकर हो गया। रुदन की ध्वनि इस उजाड़ वन में विना किसी वाधा के फैल रही थी।

जैसे ही सनातन को रुड़की की मृत्यु के समाचार मिले उसी समय गाँव के दस-पाँच आदमियों को लेकर वह खेमे पर आ पहुँचा। उस समय समजू अपनी मृत माता की देह को पकड़ कर वैठी हुई थी। मानो उसे आशा थी कि रुड़की इस प्रकार से वैठने से पुनः जीवित हो उठेगी।

वुढ़िया के अन्तिम संस्कार करने के लिए खेमे के पास ही उसकी चिता चुनी गई और दाग में सम्मिलित होने वाले व्यक्तियों ने खेमे को तहस-नहस कर दिया। वुढ़िया की शैया के नीचे ही एक गड्ढा खुदा हुआ था। जव इसकी मिट्टी निकाली गई तो उसमें एक वन्द थैली मिली। वुढ़िया की

मिसकीयत लेकर धाय में सम्मिलित व्यक्ति सनातन के पास पहुँचे तथा थैली उसको दे दी। सनातन ने थैली खोली। उसमें एक 'बिल' व पचास रुपए निकले। 'बिल' सनातन के ससुर दुर्लभ दोसी के नाम का अठारह साल पहले का था। बुद्धिमान सनातन ने रसीला व समजू की समता का कारण मन-ही-मन समझ लिया।

थैली जैसी-की-तैसी बाँध कर रख दी। अकेली रह गई समजू को सनातन ने अपने विश्वास के आदमी लाखा को सौंप कर जात्रुडा के लिए रवाना कर दिया।

बेताज का बादशाह

दोसी ने तेजपुर वालों का काम जितना सुगम समझा वह उतना आसान नहीं मिला। कई कागज और नोटिस मिलने पर भी सनातन किसी प्रकार का उत्तर नहीं देता था। दूसरी ओर रामजी मेहता के लगातार एक-के-बाद-एक पत्र आ रहे थे। रामजी मेहता गुंदाला की दुकान में बैठे-बैठे अपने पुत्र रतीलाल के सम्बंध के लिए समय-समय पर तकादे करते थे।

आज से वर्षों पहले भी इसी प्रकार की जल्दी में रसीला का सम्बन्ध पक्का कर देने का दोसी को पश्चाताप हो रहा। वे इस समय उसी पश्चाताप की भट्टी में झुलस रहे थे। जीवन में उनसे एक यही भूल हुई थी। उसके अतिरिक्त किसी अन्य बात को वे भूल नहीं समझते थे। इस भूल को सुधारने के लिए दोसी ने कई प्रयत्न किए किन्तु उन्हें कभी सफलता नहीं मिली। उनका विचार था कि रसीला स्वयं ही आगे होकर स्वयं ही इस ग्रामीण युवक के साथ विवाह करने को इन्कार कर देगी, किन्तु वह नहीं हुआ और सनातन के साथ विवाह करने के मामले में रसीला मौन रही।

सनातन के जाने के बाद कुछेक दोसी के मन में बड़ी अशांति रही। पति को सदा ही व्याकुल देखकर माणिकबेन को बहुत दुःख होता किन्तु इस परिस्थिति को समाप्त करने के लिए उसके पास कोई उपाय नहीं था।

माणिक-बेन देख रही थी सेठ की खुराक दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है। चिंतातुर मन के कारण तामसी प्रवृत्ति से दोसी पल-पल मे क्रोध करते रहते थे। उनके इस क्रोध से छुटकारा पाने के लिए माणिक-बेन सदा चुप रहती तथा इस चुप्पी के कारण वह सदा सफल रहती।

रतीलाल उतना बुद्धिमान नही था जितना सोचा गया था। बम्बई मे आये रतीलाल को काफी समय हो जाने पर भी उसके मानस मे गहरे बैठे ग्रामीण संस्कार तनिक भी हल्के नही पड सके थे। रसीला को वह अपनी ओर नही खीच सका। दोसी का दांव उल्टा पडने का बस यही एक कारण था और इसी कारण वे प्राय मन-ही-मन कई बार बडबडाते—'निरा मूर्ख ही निकला।'

किन्तु एक ओर सनातन को छेडने तथा दूसरी ओर रामजी मेहता को दो पत्र लिखकर हाथ कटा देने के बाद रतीलाल को दामाद की भांति मान लेने के सिवाय कोई अन्य मार्ग नही था। जबकि दूसरी ओर उनको कुछ भी काम बनता नही दीख पड रहा था। सब अपनी-अपनी इच्छानुसार आचरण करते थे। हर एक की ताल अलग-अलग थी। इन विभिन्न स्वरो को एक लय-ताल मे करने के लिये दोसी सदा ही इनकी मात्रा मे फेरफार करते रहते थे। किन्तु अपने उद्देश्य मे दोसी को सफलता नही मिली थी।

दोसी इन दिनो बडे गमगीन रहते थे। उनको कुछ भी स्पष्ट नही दिखाई देता था। जहाँ एक ओर उनको सनातन के प्रति अति घृणा थी तो दूसरी ओर रतीलाल का कोई ठिकाना नही था। एक ओर जहाँ उनके स्वाभिमान और घमड का प्रश्न था तो दूसरी ओर बेटी का भविष्य। दोसी मन-ही-मन बहुत व्याकुल थे। क्या किया जाय वे सोच नही पा रहे थे।

बैंठक, रसोईघर आदि सभी बद करके माणिक-बेन पति के शयन-कक्ष मे आई और पलग के एक ओर बैठ गई। किसी प्रकार की विशेष मत्रणा करने को या दोसी के अस्वस्थ होने पर उनके हाथ पांव दबाने को ही माणिक-बेन पति के पास आकर उनके पलग पर बैठती थी। आज पत्नी को इस प्रकार से आया देखकर दोसी पलग पर लेटे-लेटे ही कहने लगे

'क्या कहना है, जो कहना हो जल्दी से कह दे। मेरा दिमाग इस समय बडा अस्थिर है। इसमे अनेक विचार आते हैं।'

'मैं यह सब जानती हूँ। तुम व्यर्थ मे ही परेशानी बढा रहे हो। सब के भाग्य अपने अपने होते हैं, जिसके भाग्य मे जैसा लिखा है वैसा होगा ही।'

'माता-पिता का दिल ही ऐसा है कि कई बातो का विचार करना पडता है।

'इसके लिए कौन रोकता है ?'

बेताज का बादशाह

दोसी ने तेजपुर वालों का काम जितना सुगम समझा वह उतना आसान नहीं मिला। कई कागज और नोटिस मिलने पर भी सनातन किसी प्रकार का उत्तर नहीं देता था। दूसरी ओर रामजी मेहता के लगातार एक-के-बाद-एक पत्र आ रहे थे। रामजी मेहता गुंदाना की दुकान में बैठे-बैठे अपने पुत्र रतीलाल के सम्बंध के लिए समय-समय पर तकादे करते थे।

आज से वर्षों पहले भी इसी प्रकार की जल्दी में रसीला का सम्बन्ध पक्का कर लेने का दोसी को पश्चाताप हो रहा। वे इस समय उसी पश्चाताप की भट्टी में झुलस रहे थे। जीवन में उनसे एक यही भूल हुई थी। उसके अतिरिक्त किसी अन्य बात को वे भूल नहीं समझते थे। इस भूल को सुधारने के लिए दोसी ने कई प्रयत्न किए किन्तु उन्हें कभी सफलता नहीं मिली। उनका विचार था कि रसीला स्वयं ही आगे होकर स्वयं ही इस ग्रामीण युवक के साथ विवाह करने को इन्कार कर देगी, किन्तु यह नहीं हुआ और सनातन के साथ विवाह करने के मामले में रसीला मौन रही।

सनातन के जाने के बाद दुर्लभ दोसी के मन में बड़ी अशांति रही। पति को सदा ही व्याकुल देखकर माणिकबेन को गहरा दुःख होता किन्तु इस परिस्थिति को समाप्त करने के लिए उसके पास कोई उपाय नहीं था।

माणिक-बेन देख रही थी सेठ की खुराक दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है। चिंतातुर मन के कारण तामसी प्रवृत्ति के दोसी पल-पल मे क्रोध करते रहते थे। उनके इस क्रोध से छुटकारा पाने के लिए माणिक-बेन सदा चुप रहती तथा इस चुप्पी के कारण वह सदा सफल रहती।

रतीलाल उतना बुद्धिमान नही था जितना सोचा गया था। बम्बई मे आये रतीलाल को काफी समय हो जाने पर भी उसके मानस मे गहरे बैठे ग्रामीण सस्कार तनिक भी हल्के नही पड सके थे। रसीला को वह अपनी ओर नही खीच सका। दोसी का दांव उल्टा पडने का बस यही एक कारण था और इसी कारण वे प्राय मन-ही-मन कई बार बडबडाते—'निरा मूर्ख ही निकला।'

किन्तु एक ओर सनातन को छेड़ने तथा दूसरी ओर रामजी मेहता को दो पत्र लिखकर हाथ कटा देने के बाद रतीलाल को दामाद की भांति मान लेने के सिवाय कोई अन्य मार्ग नही था। जबकि दूसरी ओर उनको कुछ भी काम बनता नही दीख पड रहा था। सब अपनी-अपनी इच्छानुसार आचरण करते थे। हर एक की ताल अलग-अलग थी। इन विभिन्न स्वरो को एक लय-ताल मे करने के लिये दोसी सदा ही इनकी मात्रा मे फेरफार करते रहते थे। किन्तु अपने उद्देश्य मे दोसी को सफलता नही मिली थी।

दोसी इन दिनो बडे गमगीन रहते थे। उनको कुछ भी स्पष्ट नही दिखाई देता था। जहां एक ओर उनको सनातन के प्रति अति घृणा थी तो दूसरी ओर रतीलाल का कोई ठिकाना नही था। एक ओर जहां उनके स्वाभिमान और घमड का प्रश्न था तो दूसरी ओर बेटी का भविष्य! दोसी मन-ही-मन बहुत व्याकुल थे। क्या किया जाय वे सोच नही पा रहे थे।

बैठक, रसोईघर आदि सभी बद करके माणिक-बेन पति के शयन-कक्ष मे आई और पलग के एक ओर बैठ गई। किसी प्रकार की विशेष मत्रणा करने को या दोसी के अस्वस्थ होने पर उनके हाथ पांव दबाने को ही माणिक-बेन पति के पास आकर उनके पलग पर बैठती थी। आज पत्नी का इस प्रकार से आया देखकर दोसी पलग पर लेटे-लेटे ही कहने लगे

'क्या कहना है, जो कहना हो जल्दी से कह दे। मेरा दिमाग इस समय बडा अस्थिर है। इसमे अनेक विचार आते हैं।'

'मैं यह सब जानती हूं! तुम व्यर्थ म ही परेशानी बढा रहे हो। सब के भाग्य अपने अपने होते हैं, जिसके भाग्य मे जैसा लिखा है वैसा होगा ही।'

'माता-पिता का दिल ही ऐसा है कि कई बातो का विचार करना पडता है।

'इसके लिए कौन रोकता है ?'

इस 'नहीं रोकने के लिए' मूर्खता के शब्द सुनकर दोसी ने कड़ी नजर से माणिक-बेन को देखा।

माणिक-बेन अब चुप हो गई। थोड़ी देर उन्हें चुप देखकर दोसी बोले :

'जो तुझे कहना हो कह दे जिससे बात समाप्त हो।'

'आज से तीन दिन बाद नवरात्र प्रारम्भ होंगे।'

'इससे क्या मतलब ?'

'हम लोग हर तीसरे वर्ष प्रसाद चढ़ाने के लिए देश जाते हैं। इन नवरात्रों में हमें तीसरा साल होगा अतः नवरात्र हेतु हमें अपने छोड़े हुए देश में प्रसाद के लिये जाना ही चाहिए।'

'मुझे इस समय अवकाश नहीं है।'

'किन्तु तीन साल से माताजी के पालागन के लिए तो चलना ही चाहिए।'

'परमात्मा भला करे ! इस साल तो मैं एक दिन के लिये भी बम्बई नहीं छोड़ सकता हूँ।'

'ऐसा क्या है ?'

'विदेश में युद्ध प्रारम्भ होने की अफवाहें आ रही हैं। वस्तुओं की कीमतों में घटा-बढ़ी चलती रहती है। गाफ़िल रहना मुझे पसन्द नहीं। इस भावों के उतार-चढ़ाव में यदि कहीं घाटा लग जाय तो मैं उसे सहन करने की क्षमता नहीं रखता हूँ।'

'किन्तु काम तो तीन ही दिन का है।'

'तीन दिन तो दूर, मुझे तीन क्षण के लिए भी बम्बई छोड़ने का समय नहीं है।'

'तब फिर क्या किया जाये ? प्रसाद के लिए जाना अत्यावश्यक है।'

'तुम लोग जा-आओ और इस शुभाशुभ प्रसंग का पालन कर लो। तुम और रसीला चली जाओ। जिससे पालागन का दस्तूर पूरा हो जाये।'

'अकेले ही ?'

'इसमें क्या है ? यहाँ से रेलगाड़ी में बैठा दूँगा और आगे तुम लोगों को लेने को बैलगाड़ी आ जायेगी।'

जैसे ही दोसी ने यह कहा उसके मन में एक विचार आया और वह बोले : 'ऐसा करो मैं फला को साथ भिजवा रहा हूँ, किन्तु यह ध्यान रखना कि यदि तीन दिन से चौथा दिन निकल गया तो इस बंगले में तुम लोग पाँव नहीं रख सकोगे।'

दोसी के सामने तेजपुर तैरने लगा। गढ़का व तेजपुर जाने के लिए

एक ही स्टेशन पर यात्री को उतरना होता था। इन दिनों गाँवों के अतिरिक्त भी कई आसपास के गाँवों में जाने को भी उसी स्टेशन पर उतरना पड़ता था। इसलिये दोसी ने माणिक बेन और रसीला को अकेले भेजना उचित नहीं समझा और इसी कारण वे फूला को साथ भेजना चाहते थे। माणिक बेन को भी यह बात अच्छी लगी क्योंकि वह जानती थी कि धर्म के काम जाते हुए यदि किसी प्रकार की कठिनाई आये तो परिचित आदमी होने से किसी प्रकार का सकट सम्भव नहीं।

'अब तुम लोग कब जाओगे?'

'जब भी तुम कहो।'

'मैं तो कहता हूँ कि तुम यह काम जल्दी से पूरा कर लो जिससे दूसरे काम में मन लगे और ग्रामान्तर भी समाप्त हो जाए।'

'ठीक है।'

पति की आज्ञा लेकर जब माणिक-बेन कमरे से बाहर निकली तब घर में नीरव शांति छाई हुई थी। बढ़ारदा रास्ते की मोटरों के हार्न इस नीरव शांति को भंग कर रहे थे फिर भी तीन दिन गढ़का में रहने तथा चार दिन आने-जाने के इस प्रकार से कुल सात दिनों के लिए घर के इन विषाद पूर्ण वातावरण से मुक्ति पाने के आनन्द के कारण माणिक-बेन को बिछौने में पड़ते ही नींद आ गई।

दोसी सवेरे जैसे ही सो कर अपने कमरे से बाहर निकले कि उनकी नजर रसीला पर पड़ी। रसीला को देखकर दोसी बोले

'बेटी, जल्दी आजाना।'

रसीला को दूसरे गाँव जाने का भान नहीं था, अतः उसने आगे होकर प्रश्न किया।

'कहाँ से?'

'देश से।'

'कहाँ जाना है, मुझे तो कुछ भी पता नहीं।'

'कल सुबह की गाड़ी से तू और तेरी माँ फूला को लेकर गढका चन जाओ और भोग का काम पूरा कर आओ।'

'क्या आप नहीं चलेंगे?'

'नहीं बेटा मैं दुकान नहीं छोड़ सकता। मुझे फुरसत नहीं है।'

'तो ठीक।' कहकर रसीला दातुन करने चल दी।

सुबह-सुबह ही इस प्रकार से आठ दिन के लिए घर से बाहर जाने के समाचार ज्ञात होने से वह आनन्द-विभोर हो गई। उसके मन में लहरें उठने लगीं। गढका से तेजपुर दस कोस दूर था किन्तु स्टेशन तो एक ही है। कदाचित

सनातन ही मिल जाये, तो कैसा ! जो दो बातें अब तक नहीं हो सकीं, वे हो जायें तो मन हल्का हो जाये। माँ साथ रहेगी यह रसीला को अच्छा लगा परन्तु फूलचन्द का साथ जाना उसे रुचिकर नहीं लगा। यह सोचकर उसके उमंगित मन में तनिक नैराश्य की झलक आई। फिर भी वह अपने काम में व्यस्त हो गई। अपने वस्त्र इकट्ठे करके रसीला ने अपना बैग तैयार किया। बाहर जाने के लिए आवश्यक सामान इकट्ठा करके उसने बैग में डाला। एक रात गाड़ी में ही काटनी थी इसलिए बैडिंग तैयार किया। रसीला को इस प्रकार से बाहर जाने के लिए तैयारी करते देखकर माणिक-माँ बोली :

'रसीला कहाँ की तैयारी कर रही हो ?'

'क्यों री, देश जाने की ?'

'किसने कहा। पिताजी ने ?'

'क्यों ! तुम जानती-बूझती भी बात को व्यर्थ में छिपा रही हो। मुझसे बात छिपाने का क्या कारण है ?'

यह सुनकर माणिक-माँ को हँसी आ गई।

रात तक गाँव जाने की यह सब तैयारियाँ चलती रहीं। माँ-बेटी यह सोचकर आखिर बिस्तरों में ढल गईं कि कब सुबह हो और कब इस घर से बाहर निकलें।

दूसरे दिन सब उठे। सदा से ही फुटपाथ पर सोने वाला फूलचन्द आज गाड़ी में जाने वाला था इसलिए बँगले पर ही सो गया था।

सबसे पहले फूलचन्द ने बिस्तर छोड़ा और उसने सबको जगाया। कपड़े बदलकर तीनों ही मोटर में जब बैठ गए तो माँ-बेटी के हृदय में अथाह शांति व्याप्त हो गई।

थोड़ी-थोड़ी देर में बार-बार हॉर्न बजाती हुई मोटर जब बम्बई के कोलाहल पूर्ण वातावरण से गुजरकर स्टेशन पर पहुँची तो उस समय गाड़ी के रवाना होने में आध घण्टे का समय शेष था। तेजपुर के प्रथम श्रेणी के तीन टिकिट फूलचन्द लेने गया, किन्तु तेजपुर से छोटे स्टेशन के तीन टिकिट प्रथम श्रेणी के उपलब्ध न होने के कारण उनको बनाने में थोड़ी देर लगी। इसलिए रसीला को फूलचन्द की प्रतीक्षा में सामान के पास ही खड़े रहना पड़ा। यह बात उसे अच्छी नहीं लगी परन्तु फूलचन्द के न आने तक स्टेशन के अन्य यात्रियों के समान रसीला ने अपने मटरगश्ती करने के मनोभावों को दबाये रक्खा। बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के बाद फूलचन्द आया और गेट पार करके तीनों यात्री स्टेशन के भीतर घुस पड़े। प्लेट-फार्म के नम्बर ज्ञात करके फूलचन्द ने कुली को [illegible] की ओर चलने का आदेश दिया। डिब्बे में सामान

रखकर तीनो व्यक्तियो मे-से फूलचन्द व माणिक-माँ भीतर बैठ गये किन्तु रसीला प्लेटफार्म के एक बुक-स्टॉल पर गई और अपनी पसन्द के एक दो साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएँ खरीद लाई। इसी डिब्बे में इन तीनो के सिवाय एक नया जोडा बैठा था। सारे डिब्बे मे इन पाँच व्यक्तियो के सिवाय और कोई नही था। अत· सबके आराम से बैठने को पर्याप्त स्थान था।

अपने सामने बैठे नए विवाहित जोडे को देखकर रसीला के मन मे एक विचार उठा और पलभर मे विलीन हो गया। मैं भी इसी प्रकार सनातन के साथ ब्याहकर बम्बई से तेजपुर जाऊँगी! इस प्रकार का विचार आते ही लज्जा से उसका मुँह लाल हो गया। इस प्रकार की कल्पना से ही उसे लज्जा आ गई, परन्तु जहाँ विचारो के तूफान उठे उसमे बहकर भी क्या कर सकती है?

इजन ने एक जोरदार सीटी दी तथा दूसरे ही क्षण एक झटका लगा। इस धक्के के कारण नव-विवाहित वर वधू के कन्धे एक दूसरे से भिड गये। इस टकराहट के कारण वधू का मुँह शर्म से लाल हो गया। यह सब देखकर रसीला बोली·

'इस प्रकार से अब तक भी, लज्जा करने से काम नही चलने वाला है।'

रसीला के इस प्रकार की व्यंगवाणी को सुनकर नव-वधू का मुँह लज्जा से और झुक गया। शर्म से उसका मुँह लाल हो गया। इससे अब तक का व्याप्त मौन सहसा टूट गया और एक दूसरे का परिचय हुआ। रसीला ने वर से पूछा:

'इनको कहाँ ले जा रहे हो?'

युवक काठियावाड का था। वह रसीला का सहज ही लोहा मानने वाला नही था अतः उसने प्रश्न-सा ही उत्तर दिया:

'मैं इनको नही ले जा रहा, ये तो स्वय ही आ रही हैं।'

'आप झूठ कहते हैं! लेने के लिये तो भाणवड तक आप ही गये थे।'

रसीला भी वर-वधू के मध्य चल रही इस बात को प्रसन्न मुद्रा मे टुकर-टुकर देख रही थी।

बहुत देर तक दोनो के बीच वाक्-युद्ध चलता रहा। अन्त मे वरराज बोले:

'तुम वास्तव मे सूत्र हो, बहिन। अभी से हम लोगों के बीच मे वाद-विवाद प्रारम्भ करा दिया।'

गजानन ही मिल जाये, तो कैसा! जो दो बातें अब तक नहीं हो सकीं, वे हो जायें तो मन हल्का हो जाये। माँ साथ रहेगी यह रसीला को अच्छा लगा परन्तु फूलचन्द का साथ जाना उसे रुचिकर नहीं लगा। यह सोचकर उसके उमंगित मन में तनिक नैराश्य की झलक आई। फिर भी वह अपने काम में व्यस्त हो गई। अपने वस्त्र इकट्ठे करके रसीला ने अपना बैग तैयार किया। बाहर जाने के लिए आवश्यक सामान इकट्ठा करके उसने बैग में डाला। एक रात गाड़ी में ही काटनी थी इसलिए बेडिंग तैयार किया। रसीला को इस प्रकार से बाहर जाने के लिए तैयारी करते देखकर माणिक-माँ बोली :

'रसीला कहाँ की तैयारी कर रही हो?'

'क्यों री, देश जाने की?'

'किसने कहा। पिताजी ने?'

'क्यों! तुम जानती-बूझती भी बात को व्यर्थ में छिपा रही हो। मुझसे बात छिपाने का क्या कारण है?'

यह सुनकर माणिक-माँ को हँसी आ गई।

रात तक गाँव जाने की यह सब तैयारियाँ चलती रहीं। माँ-बेटी यह सोचकर आखिर बिस्तरों में ढल गई कि कब सुबह हो और कब इस घर से बाहर निकलें।

दूसरे दिन सब उठे। सदा से ही फुटपाथ पर सोने वाला फूलचन्द आज गाड़ी से जाने वाला था इसलिए बँगले पर ही सो गया था।

सबसे पहले फूलचन्द ने बिस्तर छोड़ा और उसने सबको जगाया। कपड़े बदलकर तीनों ही मोटर में जब बैठ गए तो माँ-बेटी के हृदय में अथाह शांति व्याप्त हो गई।

थोड़ी-थोड़ी देर में बार-बार हॉर्न बजाती हुई मोटर जब बम्बई के कोलाहल पूर्ण वातावरण से गुजरकर स्टेशन पर पहुँची तो उस समय गाड़ी के रवाना होने में आध घण्टे का समय शेष था। तेजपुर के प्रथम श्रेणी के तीन टिकिट फूलचन्द लेने गया, किन्तु तेजपुर से छोटे स्टेशन के तीन टिकिट प्रथम श्रेणी के उपलब्ध न होने के कारण उनको बनाने में थोड़ी देर लगी। इसलिए रसीला को फूलचन्द की प्रतीक्षा में सामान के पास ही खड़े रहना पड़ा। यह बात उसे अच्छी नहीं लगी परन्तु फूलचन्द के न आने तक स्टेशन के अन्य यात्रियों के सामान वगैरह के [illegible] अपने मटरगश्ती करने के मनोभावों को दबाये रखा। बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के बाद फूलचन्द आया और गेट पार करके तीनों [illegible] के भीतर घुस पड़े। प्लेटफार्म के नम्बर ज्ञात करके फूलचन्द ने कुली को [illegible] की ओर चलने का आदेश दिया। डिब्बे में सामान

रखकर तीनो व्यक्तियो मे-से फूलचन्द व माणिक-माँ भीतर बैठ गये किन्तु रसीला प्लेटफार्म के एक बुक स्टॉल पर गई और अपनी पसन्द के एक दो साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएँ खरीद लाई। इसी डिब्बे मे इन तीनो के सिवाय एक नया जोडा बैठा था। सारे डिब्बे मे इन पाँच व्यक्तियो के सिवाय और कोई नही था। अत सबके आराम से बैठने को पर्याप्त स्थान था।

अपने सामने बैठे नए विवाहित जोडे को देखकर रसीला के मन मे एक विचार उठा और पलभर में विलीन हो गया। मैं भी इसी प्रकार सनातन के साथ ब्याहकर बम्बई से तेजपुर आऊँगी। इस प्रकार का विचार आते ही लज्जा से उसका मुँह लाल हो गया। इस प्रकार की कल्पना से ही उसे लज्जा आ गई, परन्तु जहाँ विचारो के तूफान उठे उसमे बहकर भी क्या कर सकती है?

इजन ने एक जोरदार सीटी दी तथा दूसरे ही क्षण एक झटका लगा। इस धक्के के कारण नव-विवाहित वर वधू के कन्धे एक दूसरे से भिड गये। इस टकराहट के कारण वधू का मुँह शर्म से लाल हो गया। यह सब देखकर रसीला बोली :

'इस प्रकार से अब नव भी, लज्जा करने से काम नही चलने वाला है।'

रसीला के इस प्रकार की व्यंगवाणी को सुनकर नव-वधू का मुँह लज्जा से और झुक गया। शर्म से उसका मुँह लाल हो गया। इससे अब तक का व्याप्त मौन सहसा टूट गया और एक दूसरे का परिचय हुआ। रसीला ने वर से पूछा

'इनको कहाँ ले जा रहे हो?'

युवक काठियावाड का था। वह रसीला का सहज ही लोहा मानने वाला नही था अत. उसने प्रश्न-सा ही उत्तर दिया

'मैं इनको नही ले जा रहा, ये तो स्वय ही आ रही हैं।'

'आप झूठ कहते हैं। लेने के लिये तो भाणवड तक आप ही गये थे।'

रसीला भी वर-वधू के मध्य चल रही इस बात को प्रसन्न मुद्रा मे टुकर-टुकर देख रही थी।

बहुत देर तक दोनो के बीच वाक्-युद्ध चलता रहा। अन्त मे वरराज बोले :

'तुम वास्तव मे खूब हो, बहिन। अभी से हम लोगों के बीच मे वाद-विवाद प्रारम्भ करा दिया।'

यह सुनकर सब खिल-खिलाकर हँस पड़े।

इस हँसी में फूलचन्द ने सहयोग नहीं दिया। उसको इस प्रकार की हँसी-ठिठोली बिल्कुल पसन्द नहीं थी। तदुपरान्त एक युवा-युवती किसी अपरिचित व्यक्ति के साथ इतनी घुल-मिलकर बात करे यह उसको बिल्कुल पसन्द नहीं था।

प्रसन्न वातावरण में गाड़ी आगे बढ़ती जा रही थी। इस प्रसन्नता में किसी को भान नहीं रहा कि कब संध्या ढल चुकी है। सदा से घर के एक ही प्रकार के गम्भीर वातावरण से रसीला कई बार बाहर निकल चुकी थी, इस कारण से प्रसन्न वातावरण ने उसे अधिक आनन्द आ रहा था। उसको यह वातावरण अधिकाधिक प्रफुल्लित कर रहा था। सामने ही पश्चिम की ओर आकाश के क्षितिज पर संध्या उतर रही थी। इस उतरती संध्या के कारण क्षितिज पट लाल व केसरिया हो रहा था। प्रकृति के इस मनमोहक दृश्य को रसीला अपलक नेत्रों से देखती रही।

रसीला को इस प्रकार से प्रकृति के सौन्दर्य में डूबते देखकर युवक ने पूछा :

'क्या तुम्हें प्रकृति से प्रेम है ?'

'प्रकृति-प्रेमी हूँ, यह तो मैं कैसे बताऊँ ! किन्तु फिर भी प्रकृति-लीला के लालित्य, कला-सौन्दर्य, विधाता के मस्तिष्क की रचना-दर्शन आदि देखना तो बड़ा मनभावना लगता ही है।'

'इसका ही नाम तो प्रेम है।'

'इसकी व्याख्या तो ऐसे कैसे की जा सकती है ?'

'जो देखने योग्य हो, जिसे देखने से आँखों में शांति का आभास हो वह क्या उसके प्रति अनुराग नहीं है ?'

'वैसे तो तमाशा देखना भी आँखों को अच्छा लगता है। तब फिर यह क्या मान लिया जाए कि तमाशे के लिए हमारा अनुराग है ?'

'किन्तु देखना तो अच्छा लगता ही है न ?'

'हाँ, देखना तो अच्छा लगता है किन्तु थोड़ी देर के लिए। एक ही दृश्य को कई बार देखने से ऊब होना स्वभाविक है। तब भी प्रेम शाश्वत है। जिसे इस जन्म में तो अनुभव करना अच्छा लगता है किन्तु भविष्य में भी जिसके लिए प्राणी आतुरता से राह देखता है। अर्थात् दूसरे जन्म में भी प्राणी अपने प्रेमी को ढूँढ़ता रहता है।'

युवक को रसीला की स्नेहपूर्ण वाणी के सन्दर्भ से उसमें व्याप्त आदर्श की भावनाओं की जानकारी मिली। रसीला के उत्तरों का उसी वेग से उत्तर देना युवक के लिए सहज काम नहीं था।

गाडी तेज रफ्तार से आगे बढ रही थी। मार्ग तय करने के अतिरिक्त गाडी के पास कोई चारा भी नही था।

बम्बई छोडकर जैसे-जैसे गाडी आगे बढ रही थी वैसे-वैसे रसीला का मन सनातन के अधिकाधिक समीप जा रहा था। उसका अन्तर सनातन के सस्मरणो से ओत प्रोत हो रहा था। किसी भी बहाने से यदि सनातन से मिलना हो जाये तो अच्छा रहे! कई व्यक्तियो के जीवन मे सुखद सयोग आते ही हैं, ऐसा ही सुखद सयोग यदि यकायक मेरे जीवन मे भी आ जाये तो कितना अच्छा रहे! भगवान् मेरी यह तुच्छ प्रार्थना क्यो कर स्वीकार नही करते हैं? सयोग की सुखद कल्पना से उसका मन आशा से परिपूर्ण हो जाता तो दूसरी ओर शका के भावो से घिर जाता था। वह सोचती थी कि कही वह आशा की सीढियो से गिर न पडे। क्या ऐसे ही सनातन से भेंट होना सम्भव है?

चारो ओर अधकार धीरे-धीरे फैलता जा रहा था। ट्रेन मे ऊपर-नीचे की सीटो पर सब लोग अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार सोने लगे। लगातार गाडी मे बारह घण्टे बैठे रहने के कारण माणिक-माँ तो थककर चूर-चूर हो गई थी। अत वे तो न जाने कब से ही सो गई थी। मात्र रसीला को नीद नही आ रही थी। इसके साथ-ही-साथ सख्त चौकी-दारी करता हुआ फूलचन्द भी जाग रहा था। इन दोना के सिवाय डिब्बे के सभी मुसाफिर सो चुके थे।

सारी रात रसीला सनातन के विचारो म गोते खाती रही। उसके मन मे सनातन के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पनायें उठती रही। भोर फटने से पहले ही बोटाद का स्टेशन आते ही वह वर-जोडा उतर पडा क्योकि उनको यहाँ गाडी बदलनी थी। जबकि उनको भावनगर के सीधे डिब्बे मे बैठने के कारण सुबह सात बजे सीधे ही तेजपुर के स्टेशन पर उतरना था।

धीरे धीरे इसी प्रकार रात बीती और सुबह के पाँच बजे। रसीला को अब नीद आने का कोई प्रश्न ही नही था। इसलिए वह चुपचाप उठी और हाथ-मुँह धोकर तैयार होने लगी। बालो की खुली लटें हवा के मद मद झोका से उड रही थी। उसके हृदय मे अद्भुत आनन्द था। दो घण्टे पश्चात ही अब तेजपुर आ जायेगा। कदाचित् सयोग से सनातन से मेल हो जाये।

छह बजते-बजते तो वह बिल्कुल तैयार हो गई। काँच की खिडकी खोलकर वह तेजपुर के आने की राह जोने लगी।

अन्तत सात बजे और वह तेजपुर आ गया जिसकी राह गत चौबीस घण्टो से रसीला बडी आतुरता से जोरही थी। स्टेशन पर ट्रेन के बहुत कम समय तक ठहरने के कारण फूलचन्द ने पहले से ही सारा सामान खिडकी के

पास जमा कर लिया था। फूलचन्द ने माणिक-माँ और रसीला को भी दरवाजे के पास आकर खड़े हो जाने को कहा जिससे जैसे ही गाड़ी रुके कि तुरन्त ही उतरना सम्भव हो सके।

गाड़ी रुकी और तीनों ट्रेन से उतर पड़े। रसीला की आँखें सारे मैनपुर के स्टेशन पर इधर-उधर घूमने लगीं किन्तु जिस चेहरे को वह ढूँढ़ रही थी वह चेहरा कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा था।

स्टेशन के बीचों-बीच आदमियों की भीड़ इकट्ठी हो रही थी। गाड़ी के रवाना हो जाने का समय हो जाने पर भी गार्ड हाथ में लाल-हरी झंडियाँ लिए हुए उस भीड़ की ओर बढ़ा। फूलचन्द भी रसीला और माणिक-माँ को लेकर स्टेशन से बाहर निकलने को चल दिया।

गार्ड को आता देखकर भीड़ ने उसे आने के लिए रास्ता दिया। गार्ड ने भीड़ के मध्य में खड़े एक आदमी से नमस्ते की। युवक ने हँसते हुए नमस्ते का जवाब दिया।

हँसते हुए सनातन ने गार्ड को उत्तर दिया: ये थानेदार साहब रात्रि को पधारे थे। उन्हीं को छोड़ने आया हूँ।

'अच्छा!' कहकर गार्ड ने नमस्ते की और सनातन ने पहले की तरह सा ही उत्तर दिया और स्टेशन से बाहर निकलने को नजर फैलाई।

उसी समय रसीला ने उस फक्कड़ युवक को देख लिया। वह जिसके लिए अब तक छटपटा रही थी, उसे इस प्रकार से यकायक मिलने के कारण उसका मन खुशी से बाँसों उछलने लगा। किन्तु सनातन ने अब तक रसीला को नहीं देखा था। जन-समूह उसे रास्ता दे रहा था और वह बेताज बादशाह की अदा से जन-समूह के दिए मार्ग से, आगे बढ़ता जा रहा था। उसके व्यक्तित्व की झलक चारों ओर फैल रही थी। सनातन के पीछे ही उसका अंग रक्षक कन्धे पर दुनाली बन्दूक रखकर तथा कारतूसों की माला पहने उसी खुमारी से आगे कदम बढ़ा रहा था। स्टेशन के गेट पर सभी इकट्ठे हो गए।

सनातन ने जैसे ही माणिक-माँ को देखा दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। माणिक-माँ को देखने तथा नमस्कार कर लेने के बाद उसकी नजर रसीला और उसके पीछे ही सामान लेकर आते हुए फूलचन्द पर पड़ी। माणिक-माँ ने मन-ही-मन सोचा जिसका भय था वह तो यकायक संयोग से ही मिल गया। अब क्या किया जावे! रसीला के पिता को यदि इसकी जानकारी हो गई तो वे घर के बाहर भी निराधार सन्देह करेंगे। किन्तु शिष्टाचार के नाते कुछ बोलना भी आवश्यक था।

'कहो लल्ला! कैसे हो?' माणिक-माँ ने पूछा।'

'कुशल हैं। किन्तु बीच में ही कैसे समाचार पूछ रही हैं ? क्यों तेजपुर नहीं चलना है ?'

'नहीं, इस समय तो गढवादेवी के भोग के लिए आई हूँ।'

सनातन ने आग्रह करते हुए कहा—'कल चले जाना।'

'नहीं, आज ही जाना जरूरी है।' माणिक बेन मानो इस समय भारी मुसीबत मे फँस गई हो।

'किन्तु आप लोग किस सवारी से जायेंगे ?'

'गाडी मँगवाई है।' फूलचन्द बीच मे ही बोल उठा।

स्टेशन के बाहर चारो ओर नजर दौडा लेने के बाद सनातन ने कहा 'यहाँ तो कहीं भी गाडी नहीं दिखाई देती है।

'सम्भव है समय पर तार न पहुँचा हो।' जल्दी से फूलचन्द ने उत्तर दिया।

'ऐसा हो सकता है। किन्तु इस बीच में ही कहाँ रहेंगे आप लोग ! चलिए मैं तुम को छोड आऊँ।' सनातन ने अति विनम्रता से मध्य-मार्ग का रास्ता निकालते हुए कहा।

'किस सवारी से ले चलोगे ?'

'माणिक-बेन, भगवान् की कृपा है। आपकी अति दया है। आप जैसी मोटरें हमारे यहाँ उपलब्ध नहीं किन्तु आपके पुण्य से हमारे लायक तो साधन हैं ही।' सनातन ने बात का हँसते हुए जवाब दिया।

रसीला सनातन के प्रत्येक शब्द को बडे ध्यान से सुनकर दिल मे रखती जा रही थी। उसे चुपचाप सब बातो को बिना किसी प्रकार का उत्तर दिए सुन लेने के सिवाय कोई उपाय नहीं था। इस समय दो बात कहने का उसके पास समय नहीं था। फूलचन्द को इधर-उधर करने के लिये उसने दो तीन उपाय सोचे पर सफलता नहीं मिली।

सनातन ने जैसे ही स्टेशन की सीढ़ियाँ उतरी कि कोचवान ने घोडा गाडी सनातन के पास लाकर खडी कर दी। सनातन ने कोचवान से कहा : 'तू जा, मैं मेहमानो को छोड आता हूँ।'

एक दो मिनट बाद कुछ सोचकर सनातन ने जयसिंह भाई से कहा . 'जयसिंह भाई तुम भी चले जाओ।'

'बहुत अच्छा !' कहकर उसने अपने कंधे से बारह बोर की बन्दूक उतारी और घोडा-गाडी मे रख दी।

'जयसिंह भाई इसकी कोई जरूरत नहीं।'

'भाई, साथ मे बन्दूक रहे तो ठीक। आते समय देर हो सकती है।'

सामान जमा कर लिया था। फूलचन्द ने माणिक-माँ और रसीला को भी दरवाजे के पास आकर खड़े हो जाने को कहा जिससे जैसे ही गाड़ी रुके कि तुरन्त ही उतरना सम्भव हो सके।

गाड़ी रुकी और तीनों ट्रेन से उतर पड़े। रसीला की आँखें सारे तेजपुर के स्टेशन पर इधर-उधर घूमने लगीं किन्तु जिस चेहरे को वह ढूँढ़ रही थी वह चेहरा कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा था।

स्टेशन के बीचों-बीच आदमियों की भीड़ इकट्ठी हो रही थी। गाड़ी के रवाना हो जाने का समय हो जाने पर भी गार्ड हाथ में लाल-हरी झंडियाँ लिए हुए उस भीड़ की ओर बढ़ा। फूलचन्द भी रसीला और माणिक-माँ को लेकर स्टेशन से बाहर निकलने को चल दिया।

गार्ड को आता देखकर भीड़ ने उसे आने के लिए रास्ता दिया। गार्ड ने भीड़ के मध्य में खड़े एक आदमी से नमस्ते की। युवक ने हँसते हुए नमस्ते का जवाब दिया।

हँसते हुए सनातन ने गार्ड को उत्तर दिया : ये थानेदार साहब रात्रि को पधारे थे। इन्हीं को छोड़ने आया हूँ।

'अच्छा!' कहकर गार्ड ने नमस्ते की और सनातन ने पहले की तरह [illegible] उत्तर दिया और स्टेशन से बाहर निकलने को नजर फैलाई।

उसी समय रसीला ने उस फबीले युवक को देख लिया। वह जिसके लिए अब तक छटपटा रही थी, उसे इस प्रकार से यकायक मिलने के कारण उसका मन हर्ष से बाँसों उछलने लगा। किन्तु सनातन ने अब तक रसीला को नहीं देखा था। जन-समूह उसे रास्ता दे रहा था और वह बेताज बादशाह की अदा से जन-समूह के दिए मार्ग से, आगे बढ़ता जा रहा था। उसके व्यक्तित्व की झलक चारों ओर फैल रही थी। सनातन के पीछे ही उसका अंग रक्षक कन्धे पर दुनाली बन्दूक लटकाकर तथा कारतूसों की माला पहने उसी खुमारी से आगे कदम बढ़ा रहा था। स्टेशन के गेट पर सभी इकट्ठे हो गए।

सनातन ने जैसे ही माणिक-माँ को देखा दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। माणिक-माँ को देखने तथा नमस्कार कर लेने के बाद उसकी नजर रसीला और उसके पीछे ही सामान लेकर आते हुए फूलचन्द पर पड़ी। माणिक-माँ ने मन-ही-मन कहा जिसका भय था वह तो यकायक संयोग से ही मिल गया। अब क्या किया जावे! रसीला के पिता को यदि इसकी जानकारी हो गई तो वे घर से बाहर ही निकालकर संतोष करेंगे। किन्तु शिष्टाचार के नाते अब बोलना अति आवश्यक था।

'[illegible]-माँ कैसी हैं?' माणिक-माँ ने पूछा।'

नहीं मिल सकता है।

किन्तु फूलचन्द तो उसका पीछा नहीं छोड रहा था।

'आप लोग उतरकर चलें मैं सामान लेकर आता हूँ।' फूलचन्द ने माणिक-बेन को सम्बोधित करते हुए कहा।

रसीला व माणिक-बेन घोडा-गाडी से उतर पडी। फूलचन्द सामान लेकर पीछे-पीछे आया। रसीला ने सोचा यदि आज का अवसर गया तो सदा के लिए अवसर गया। अतः उसने एक उपाय सोचा। 'मेरा रुमाल गाडी मे ही रह गया।' ऐसे कहते हुए वह दौडी और तेजपुर की ओर जाने वाली गाडी को रुकवाने के लिए आवाज दी। अच्छी नस्ल का घोडा हवा से बातें करता हुआ किसी प्रकार रुका। सनातन ने पीछे मुडकर देखा तो पाया कि रसीला तेजी से आ रही है। वह सनातन को देख रही थी। जल्दी से उसने कहा 'जरा ठहरिए मुझे बात करनी है।'

'बात करने के लिए पिताजी से आज्ञा ली है?'

'इससे तुम्हे क्या मतलब है? मेरी बात तो सुनो।'

'ठीक, किन्तु·········।'

'किन्तु क्या?'

'जब बापूजी को इस बात का पता लग जायेगा तो तुम्हारी खबर ले लेंगे।'

'तुम व्यर्थ मे परेशान मत हो ओ। इस सबसे तुम्हें क्या मतलब है? इसका क्या जवाब देना और कैसे देना यह सब मैं भलीप्रकार से जानती हूँ।'

'तुममे इस प्रकार की हिम्मत कहाँ से आगई?'

'मात्र तुम्हारे व्यक्तित्व के दर्शनो के कारण।'

'बम्बई मे तो मुझे यह सब देखने को नही मिला।'

'आप कदाचित् नही जानते है कि कई बार ऐसे अविच्छन्न अनुभवो के स्मरण मात्र से ही ऐसी हिम्मत आ सकती है। तदुपरान्त बम्बई मे तो मैं बन्धन मे थी।'

'और यहाँ?'

'यहाँ पर बन्धन ढीले हैं।'

पीछे मुडकर जैसे ही उसने देखा वैसे ही उसे फूलचन्द दिखाई दिया तो वह बोली:

'देखिये मेरे पीछे-पीछे चौकीदार आ रहा है। किन्तु मुझे तो यही

कहना है कि मैं तुम्हारी ही हूँ, अडिग रहना।'

'बहुत ठीक।' कहकर सनातन ने घोड़े को इशारा किया और देखते-देखते सनातन की घोड़ागाड़ी रसीला की आँखों से ओझल हो गई।

'रुमाल मिला।' पास में आकर फूलचन्द ने पूछा।'

'नहीं, दिखता है कहीं रास्ते में ही गिर पड़ा होगा।' रसीला ने ऐसा कहकर फूलचन्द के प्रश्न को उड़ा दिया। आखिर फूलचन्द की आँखों में धूल झोंक कर रसीला ने सनातन के साथ दो बात कर ही लीं। इससे उसका मन-ही-मन दुःखी होना स्वाभाविक था, किन्तु रसीला को कुछ कहने या सुनने की उसको हिम्मत नहीं थी। अतः चोट को सहने के सिवाय कोई उपाय नहीं था।

●

गुप्त परामर्श

शाम को जब खाना खाकर बैठक मे बैठे तो माणिक माँ ने अपनी कुर्सी दोसी के पास खींच ली। माणिक-माँ को अपने पास आया देखकर दोसी समझ गये कि इसे कुछ कहना है। अत वे जानबूझ कर चुप ही रहे।

मेज पर रखे सुपारी और सरौते को माणिक-माँ ने उठाया और वे सुपारी को काटते हुए बोली 'अब यह रतीलाल यहाँ पर कब तक रहेगा?'

दोसी ने अपने मन की बात घर मे किसी को नही बतलाई थी किन्तु जब उन्होंने देखा कि आज माणिक-माँ ने आगे होकर बात चलाई तो उनको अपने मन की गुप्त योजना को स्पष्ट करने मे कोई परेशानी नही लगी।

'अब यही रहने को है।'

'क्या दुकान पर काम करवाना है?' माणिक-माँ ने लगते ही प्रश्न किया।

'इसके मन मे जैसा आये वैसा करे।'

दोसी के इस प्रकार के रहस्यमय वाक्यों को माणिक-माँ नही समझ सकी, अत. वे फिर से बोली :

'क्या गुँदाले से रूठ कर आया है?'

'इसकी क्या मजाल जो रूठ कर आए? इसे तो हमने ही बुलवाया है।'

'किस काम से ?'

'तुम्हें यदि यह बात जानना ही है तो आज समझ लो और सुनलो। तेजपुर वाले अपनी ओर से आखिरी उत्तर दें। बस मैं उनका उत्तर जानने को ही बैठा हूं। रतीलाल को मुझे अपना दामाद बनाना है।'

'आपका दिमाग तो नहीं चकरा गया है ?'

'मेरा दिमाग चकरा गया या नहीं किन्तु तेरा दिमाग अवश्य चकरा गया दिखाई देता है। तूने तो उन्हीं परम्परागत विचारों को गले से चिपका रखा है।'

'परन्तु रतीलाल में शहूर ही क्या है ? मात्र पैसे के बोझ से बुद्धि तो नहीं आ गई है।'

'यह सब सीख जायेगा !'

'क्या खाक सीख जायेगा ! न तो वह बात ही करना जानता है और न उसे कपड़े पहनना ही आता है ! आज कल करते-करते दो माह निकल चुके हैं किन्तु आज भी वह गुंदाले की भांति ही काम करता है। जब स्नान करने को बैठता है तो उसे नल चलाना तक नहीं आता है तथा बिजली जलाने के लिए बटन दबाना नहीं आता है।'

'शायद तुम आदमी को पहचानना नहीं जानती हो। मेरे विचारानुसार तो यह हीरा ही है। हीरे की कीमत तो जौहरी ही बता सकता है, तुम क्या जानो ? यह हीरा जैसे-जैसे खराद पर तराशा जायेगा अधिकाधिक रूप निखरता रहेगा। इसमें कुछ दोष तो तुम मां-बेटियों का भी है। तुम इसकी परवाह ही नहीं करती हो।'

'इसमें हम क्या कर सकती हैं ?'

'इसको बम्बई के रहन-सहन की तुम शिक्षा दो। इसे तुम ये बातें बताओ। तुम्हें इसे शिक्षित करना है। परन्तु दुःख की बात तो यह है कि रमीला इसे तैयार ही नहीं करती है जबकि उसे ऐसा करना चाहिए।'

'रमीला को तो इसको देखना ही अच्छा नहीं लगता है।'

'वह तो अभी लड़की ही है। वह दुनियादारी में क्या समझे ? मेरे अनुसार तो यह लड़का तेजपुर वाले उन्हीं मल लड़के से बहुत अच्छा है। न तो इसे बनी बातें करना आता है और न कोई ढोंग ही। बड़ों की आज्ञा का कैसे पालन किया जाये यह इसे भलीप्रकार से आता है। इन सबके उपरांत रामजी सेठ का घराना बहुत अच्छा है। यह तुम क्यों भूल जाती हो !'

'मेरी समझ में यह बात नहीं आ सकती है।'

'मैं जो कुछ कर रहा हूं तुम देखती जाओ, मुझे अपने विचारानुसार काम कर लेने दो इसके बाद कहना।'

'जब तुम्हारे-सा ही आदमी हो जाये तो फिर क्या कहना ?'

'मैं कोई लड़की का दुश्मन नहीं हूँ। तुम जितनी उसे सुखी देखना चाहती हो मैं उससे अधिक उसे प्रसन्न देखना चाहता हूँ।'

'परन्तु तेजपुर वालों ने तुम्हारा क्या अनर्थ कर दिया है ?'

'तुम तो उनका नाम भी मत लो।'

'बिना किसी कारण के ही।'

'कई कारण हैं। यदि गिनती की जाये तो गिनाते-गिनाते सुबह हो जाये। तदुपरान्त हमें जिस गाँव नहीं जाना उसका रास्ता क्यों कर जाना जाये ?'

'लेकिन यह तो जीवन का सवाल है।' माणिक-माँ ने अति गम्भीर होकर कहा।

'यह मैं नहीं जानता, तुम यही मान लो ?'

'जानते क्यों नहीं हो ?'

'तब ?'

'किन्तु पहले के किए काम को बेकार करके यह नया काम करने से क्या लाभ ?'

'परम्परागत की बातों को बतलाना तुम भूल जाओ। तुम कुछ भी क्यों न कहो मुझे अपनी रसीला को तेजपुर के सनातन को नहीं सौंपनी है।'

'किन्तु तुम्हें मालूम नहीं कि रसीला और रतीलाल में अभी ही नहीं पटती है तो फिर आगे के जीवन में कैसे चल सकेगा ?'

'रतीलाल को भी इसी बँगले में निर्वाह करना है ? कोई जरा तेज आवाज से बोले तो चमड़ी उतार लूँगा!'

'इसका मतलब है किसी प्रकार का तनिक भी परिवर्तन सम्भव नहीं! अपने मन के अनुसार वह कर लेना।

'अरी, इस बात में क्या रखा है ?'

'तुम तो सचमुच में गदहे पर छत्र रखने की इच्छा रखते हो।'

'यह गदहा है या गजेन्द्र आज से दो माह बाद कहना।'

'क्या करेंगे ? क्या आप फाँसी पर लटका देंगे ?'

'अब मैं कल सुबह से इसे अपने साथ ले जाऊँगा और दुकान के धंधे में होशियार बनाऊँगा।'

'यह तो राख के ढेर में लोटने योग्य है!'

'तुम तो मात्र इसके अवगुणों की रट लगाये रहो। तुम्हें दूसरा पक्ष देखने की क्या जरूरत है।'

'मैं तो स्पष्ट कहने वाली हूँ जो मन में आया बोल ही देती हूँ।'

'किस काम से ?'

'तुम्हें यदि यह बात जानना ही है तो आज समझ लो और सुनलो। तेजपुर वाले अपनी ओर से आखिरी उत्तर दें। बस मैं उनका उत्तर जानने को ही बैठा हूं। रतीलाल को मुझे अपना दामाद बनाना है।'

'आपका दिमाग तो नहीं चकरा गया है ?'

'मेरा दिमाग चकरा गया या नहीं किन्तु तेरा दिमाग अवश्य चकरा गया दिखाई देता है। तूने तो उन्हीं परम्परागत विचारों को गले से चिपका रखा है।'

'परन्तु रतीलाल में सहूर ही क्या है ? मात्र पैसे के बोझ से बुद्धि तो नहीं आ गई है।'

'यह सब सीख जायेगा !'

'क्या खाक सीख जायेगा ! न तो वह बात ही करना जानता है और न उसे कपड़े पहनना ही आता है ! आज कल करते-करते दो माह निकल चुके हैं किन्तु आज भी वह गुंदाले की भांति ही काम करता है। जब स्नान करने को बैठता है तो उसे नल चलाना तक नहीं आता है तथा बिजली जलाने के लिए बटन दबाना नहीं आता है।'

'शायद तुम आदमी को पहचानना नहीं जानती हो। मेरे विचारानुसार तो वह हीरा ही है। हीरे की कीमत तो जौहरी ही बता सकता है, तुम क्या जानो ? यह हीरा जैसे-जैसे खराद पर खराशा जायेगा अधिकाधिक रूप निखरता रहेगा। इसमें कुछ दोष तो तुम मां-बेटियों का भी है। तुम इसकी परवाह ही नहीं करती हो।'

'इसमें हम क्या कर सकती है ?'

'इसको बम्बई के रहन-सहन की तुम शिक्षा दो। इसे तुम ये बातें बताओ। तुम्हें इसे शिक्षित करना है। परन्तु दुःख की बात तो यह है कि रसीला इसे तैयार ही नहीं करती है जबकि उसे ऐसा करना चाहिए।'

'रसीला को तो इसको देखना ही अच्छा नहीं लगता है।'

'वह तो अभी लड़की ही है। वह दुनियादारी में क्या समझे ? [illegible] तेजपुर वाले उच्छृंखल लड़के से बहुत अच्छा है। न तो इसे बड़ी बातें करना आता है और न कोई ढोंग ही। बड़ों की आज्ञा का कैसे पालन किया जावे यह इसे [illegible] से आता है। इन सबके उपरांत रतीलाल [illegible] बहुत अच्छा है। यह तुम क्यों भूल जाती हो !'

'मेरी समझ में यह बात नहीं आ सकती है।'

'मैं जो कुछ कह रहा हूं तुम देखती जाओ, मुझे अपने विचारानुसार काम करने दो इसमें बाद कहना।'

होता ? किन्तु आज की बात अति भिन्न थी। माणिक माँ की अवस्था पक चुकी थी। मारो जाति में उसका खानदान बहुत प्रतिष्ठित था। अत दोनों को चुप्पी साधे रखने के सिवाय कोई उपाय नही था।

गुँदाले के रतिया को भी रतीलाल बनने का सौभाग्य इसी बम्बई में ही मिला था। रतीलाल को भी गुँदाले की अपेक्षा बम्बई अधिक अच्छी लगती थी। खाने, पीने और रहवास की अति सुन्दर व्यवस्था तो थी ही भूख लगने पर सेठ के साथ-साथ खाने को सूखा मेवा मिलता था। गुँदाल के खजूर और खोखे खाना अब वह भूल गया था। यहाँ रतीलाल को दुख था तो यही कि उसकी वाग्दत्ता उसको देखते ही गुब्बारे की भाँति मुँह फुला लेती थी तथा उसमें इतनी हिम्मत नही थी कि वह इस बड़े घर की लड़की से बातचीत करे। उसने गाँव में पहने जाने वाले वस्त्र धोती, कुर्ता और टोपी पहनना अब छोड़ दिया था और सेठ ने अच्छे कपड़े के कोट-पेण्ट सिलवा दिए थे परन्तु इस धोती, कुर्ता पहनने वाले रतीलाल को कोट-पेण्ट की पोशाक अच्छी नही लगती थी। धोती में पालथीमार कर बैठने सा आराम रतीलाल ने पतलून में महसूस नही किया। कभी यदि बैठने का प्रयत्न भी करता तो इससे पेट पर बड़ा भारी बोझ अनुभव करता। इस पर भी अब सेठ ने उसे दुकान पर लाने-लेजाना की व्यवस्था जो करली थी। इससे वह और अधिक बेचैन हो गया। एक ही सप्ताह में इस परेशानी से परेशान होकर रतीलाल ने अपने पिता को एक बहुत लम्बा पत्र लिखा। उसने पत्र में लिखा कि 'मेरा अब यहाँ मन नही लगता है। अब मुझे कब गुँदाले बुलवाओगे ? बम्बई में तो मैं इस प्रकार की परेशानी से मर ही जाऊँगा। खाने, पीने और रहने के विषय में मैं बहुत सुखी हूँ किंतु घर म मेरा कोई सम्मान नहीं करता आदि।'

रतीलाल का लम्बा पत्र पढ़कर रामजीसेठ बड़बड़ाये 'मूर्ख है न! स्वर्ग म बैठाया है तब भी कहता है बेचैन हूँ। अरे मूर्ख तुझे किस बात की परेशानी ? तुझे यहाँ कोई धन्धा चलाना है जो परेशानी है! सीधा भोजन करना और मौज उड़ाना। परन्तु कर्महीन को मिले नहीं भली वस्तु का जोग।

रामजी मेहता ने तुरन्त पत्र का उत्तर दिया

'भले आदमी, गिरी हुई चौथ अपने साथ मिट्टी लेकर ही उठती है। यदि डटा रहेगा तो कल सब ठीक हो जायेगा। व्यर्थ में जल्दी करने से कोई लाभ नहीं। मन में सन्तोष करके कुछ दिन और निकाल ले। फिर तो सब मेरे हाथ की बात है। गुँदाने में तेरी कोई नही चल सकती है। वीरान व चोर गाँव में दो पैसे पैदा करना तेरे बस की बात नही है। यहाँ रहना तो परमात्मा से मिलने के समान है। अच्छा यही है कि तू जहाँ है वहीं पड़ा रह।'

पिताजी का उपरोक्त उपदेशात्मक पत्र पढ़कर रतीलाल ने मन-ही-मन सोच लिया कि अब बम्बई में रहने के सिवाय कोई उपाय नहीं। दृढ़ निश्चय करके उसने मन को बम्बई में लगाया। दोसी के साथ जाकर वह दुकान पर भगवान् सालिग्राम की भाँति बैठ जाता और दोपहर को दोसी के साथ मोटर में बैठकर घर चला आता। नित्य-प्रति के लगातार एक ही प्रकार के कार्यक्रम को देखकर नौकरों में कानाफूसी होने लगी कि भाईसाहब सेठ के भावी दामाद हैं और इस कारण से रतीलाल सभी बड़ों-छोटों की नजर में आगया।

एक बार किसी खास काम से सेठजी बाजार में गये हुए थे। इससे नौकरों को रतीलाल से हँसी-मजाक करने का अवसर मिल गया।

गद्दी-तकिए पर बड़े आराम से रतीलाल को बैठा देखकर उस के पास आकर एक नौकर ने कहा : 'सेठजी मिठाई खिलाइए !'

'किस कारण से ?'

'अरे भाईसाहब हमसे क्यों बन रहे हो ? आप तो हमारे होने वाले सेठ हैं !'

रतीलाल को इस व्यंग के समझने की बुद्धि ही कहाँ थी। यह सुनकर घबराकर रतीलाल दुकान के अन्दर के भाग से बाहर आया और दो चार नौकरों के सामने आँखों को फेरता रहा।

'आज तो कम-से-कम खिला ही दीजिए।' आँख मारते हुए टीभला ने कहा।

'परन्तु क्यों खिला दें ?'

'मीठा मुँह करने को खिला दें।'

'मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ।'

'यह तो सब वैसे ही कहते हैं, क्यों ठीक है ?' कहते हुए टीभला ने अपनी बात को पक्का करने के लिए सबकी ओर एक उड़ती नजर से देखा। सब एक साथ बोले :

'बिल्कुल ठीक।'

टीभला की बात से रतीलाल परेशान हो गया। वह मन-ही-मन कहने लगा कि यदि उठकर रस्ते पर चला जाऊँ तो बहुत अच्छा रहे।

रतीलाल समय-समय से बराबर मेहताजी की ओर देख रहा था। किन्तु वे भी चश्मा चढ़ाकर नामा-लेखा करने में व्यस्त थे। व्यस्तता के कारण मेहताजी को आँख उठाने का भी समय नहीं था कि वे रतीलाल की मदद करें।

रतीलाल को लाचार बैठा देख कर टीभला गद्दी के पास आकर कहने लगा :

'सेठजी ऐसा करिये । तनिक अन्दर आओ । भीतर-ही-भीतर हम काम भी करेंगे व बातें भी कर सकेंगे ।'

रतीलाल ने थोडा तकिये का ज्यादा सहारा लिया । इस पर भी टीभला उसका पीछा थोडे ही छोडना चाहता था । टीभला रतीलाल का हाथ पकडकर अन्दर ले ही गया ।

रग वे एक खाली डिब्बे वे खोखे को जमीन पर जमा टीभला ने कहा

'लो, सेठ इस पर बैठ जाओ ।'

और रतीलाल घबराते-घबराते खोखे पर मूढ बन कर बैठ गया ।

'टीभला ने भी मजाक शुरू की ।'

'बहिन से तो मिलना होता ही होगा ?'

'कौनसी बहिन ? मेरी तो कोई भी बहिन बम्बई मे नही रहती । मात्र एक ही मेरे बहिन है और उसका विवाह राजुले हो गया है ।'

रतीलाल की उपरोक्त बात सुनकर सब खिल-खिलाकर हँस पडे । जैसे ही हँसी की आवाज कम हुई टीभला कहने लगा

'मैं तुम्हारी बहिन की बात नहीं करता हूँ ।'

'तब कौन-सी बहिन की ?'

'बँगले मे रहने वाली बहिन की ।'

'कौन है बँगले मे ? बगले मे मेरी कोई बहिन नही रहती है ।' रतीलाल की बेवकूफी की बात सुनकर सब खिलखिला कर हँस पडे ।

'अरे सेठ ! हम तो रसीला बहिन की बात करते हैं ।' टीभला ने हँसते-हँसते बात को स्पष्ट किया ।

रसीला का नाम सुनते ही रतीलाल का मुँह नव-वधू सा शर्म से लाल हो गया ।

'देखा न ! सेठ कितने निपुण हैं । सब जानते है फिर भी हमको बना रहे हैं ।'

'अरे भाई इस बात को गोली मारो ।'

'क्योंकर गोली मारो ? जरा बताइए तो, दिन मे कितनी बार बहिन से मिलते हो ?'

'परन्तु तुम्हे क्या मालूम कि रसीला का मुँह भी बडी मुश्किल से दिखाई देता है ।'

'ऐसा कैसे सम्भव है ?'

'तुम्हारी सौगंध ।'

अब तक रतीलाल की बाजू मे टीभला जाकर बैठ गया और मिठाई खाने की योजना बनाने लगा ।

'तब दो दिन में तो मिलते ही होंगे न ?'

'किसी भी दिन नहीं ?'

'क्या बात करते हो ?'

'हां, मैं झूठ नहीं कहता हूँ।'

'तब तुम ही नहीं बात करते होगे।' टीभला ने चुटकी लेते हुए कहा।

'अरे भाई मैंने तो कई प्रयत्न करके देख लिए, किन्तु·······श्रीमंत की लड़की बोलती ही दूसरी तरह से है। रसीला ऐसा बोलती है मानो सुनने वाले के कानों के कीड़े झड़ जायें।'

'बहिन तो शरमा जाती होगी।' टीभला ने कहा

'दूसरों के साथ तो बड़ी हँस-हँस कर बोलती रहती है।'

'किंतु तुम बहिन को खुश करने को कुछ नहीं लेजाते होंगे ?'

'कुछ ले तो नहीं जाता।'

'तब क्या धूल बोले ? आज ऐसा करना कि बर्फी लेजाना, बर्फी।'

'फिर ?'

'फिर क्या ? एक ओर बुलवाना।'

'नहीं आये तब ?'

'इशारे से गले पर अंगुली फेरना और अपनी सौगंध देना। यह करके देखना कि फिर वह तुम्हारे पास भागी आ जायेगी और खड़ी हो जायेगी। जैसे ही आकर खड़ी हो मुँह में एक बर्फी का टुकड़ा ठूँस देना।'

'अब तक रोकी हुई हँसी नौकरों से रोके नहीं रुकी। सबकी दबी हुई हँसी फूट पड़ी। उसकी गूँज बाहर तक आ रही थी। इसी समय दोसी बाहर से आकर दुकान में घुसे। जोरदार हँसी की आवाज सुनकर दोसी गुस्से में आकर कहने लगे :

'अन्दर क्या हो रहा है ?'

'महाराज बोले : 'अन्दर रतीलाल है।'

सेठ दोसी के मुँह पर गहरी निराशा छागई। उनको समझने में देर नहीं लगी कि उनकी अनुपस्थिति में यह हीन बुद्धि का रतीलाल नौकरों के लिए खिलौना बन गया—दयनीय !

पहली चिनगारी

जैसे-जैसे समय निकलता जा रहा था वैसे-ही-वैसे दोसी अधिकाधिक चिन्तित होते जा रहे थे। दूसरी ओर रतीलाल रसीला से मिलने को बहुत ही आतुर होता जा रहा था। यद्यपि उसे रसीला के बजाय दोसी की अथाह सम्पत्ति का मालिक बनने की ज्यादा चाह थी। किन्तु दोसी की अथाह सम्पत्ति उसे उसी दशा में मिल सकती थी जबकि रसीला से उसका विवाह हो जाये। इस प्रकार उसने यह भलीप्रकार समझ लिया था कि दोसी की अथाह सम्पत्ति का मालिक बनने के लिए रसीला को मनाना अत्यावश्यक है। यदि यह सभव नहीं तो फिर दोसी के पैसे की आशा करना बालू में से तेल निकालने के समान है। गुंदाले से उसके पिताजी पत्र लिखकर उसे बार-बार आगाह करते रहते थे कि बम्बई में चिपके रहने में लाभ है। इस पर भी रसीला ने कभी भी रतीलाल से नजर मिलाने का प्रयास नहीं किया। वह उसके स्पर्श को ही छूत मानकर उससे दूर रहने का प्रयास करती थी।

टीकमा का वर्षा बिगाने का नुस्खा उसे बड़ा अच्छा लगा। नुस्खे को व्यावहारिक रूप देने का लोभ वह संवरण नहीं कर सका। इसलिए उसने वर्षा खरीद कर उसकी पुड़िया कोट की जेब में रख ली। किन्तु रसीला तो अपने हठ पर अडिग थी, वह तो बाहर ही नहीं निकलती थी। अतः उससे मिलना

'तब दो दिन में तो मिलते ही होंगे न ?'

'किसी भी दिन नहीं ?'

'क्या बात करते हो ?'

'हाँ, मैं झूठ नहीं कहता हूँ ।'

'तब तुम ही नहीं बात करते होगे ।' टीभला ने चुटकी लेते हुए कहा।

'अरे भाई मैंने तो कई प्रयत्न करके देख लिए, किन्तु……श्रीमंत की लड़की बोलती ही दूसरी तरह से है । रसीला ऐसा बोलती है मानो सुनने वाले के कानों के कीड़े झड़ जायें ।'

'बहिन तो शरमा जाती होगी ।' टीभला ने कहा

'दूसरों के साथ तो बड़ी हँस-हँस कर बोलती रहती है ।'

'किंतु तुम बहिन को खुश करने को कुछ नहीं लेजाते होंगे ?'

'कुछ ले तो नहीं जाता ।'

'तब क्या धूल बोले ? आज ऐसा करना कि बर्फी लेजाना, बर्फी ।'

'फिर ?'

'फिर क्या ? एक ओर बुलवाना ।'

'नहीं आये तब ?'

'इशारे से गले पर अंगुली फेरना और अपनी सौगंध देना । यह करके देखना कि फिर वह तुम्हारे पास भागी आ जायेगी और खड़ी हो जायेगी । जैसे ही आकर खड़ी हो मुँह में एक बर्फी का टुकड़ा ठूँस देना ।'

'अब तक रोकी हुई हँसी नौकरों से रोके नहीं रुकी । सबकी दबी हुई हँसी फूट पड़ी । उनकी गूँज बाहर तक आ रही थी । इसी समय दोसी बाहर से आकर दुकान में घुसे । जोरदार हँसी की आवाज सुनकर दोसी गुस्से में आकर कहने लगे :

'अन्दर क्या हो रहा है ?'

'महाराज बोले : 'अन्दर रसीलाल है ।'

सुनकर दोसी के मुँह पर गहरी निराशा छागई । उनको समझने में देर नहीं लगी कि उनकी अनुपस्थिति में यह हीन बुद्धि का रसीलाल नौकरों के लिए खिलौना बन गया—रसमहीन !

माणिक-माँ भी एक ही आवाज सुनकर बाहर आगई।

'बेटा! कहाँ जाना है?' दोसी की आवाज से स्नेह फूट पड़ रहा था।

'टाउन हॉल में सांस्कृतिक कार्यक्रम है।'

'ठीक! अभी मोटर भेज देता हूँ।' कहते हुए दोसी जल्दी में सीढ़ियाँ पार कर गये। रसीला भी बाल सँवारने के उद्देश्य से शयन-खंड में घुसी। काँच में उसका सारा शरीर प्रतिबिम्बित हो रहा था। खिड़की की मंद मंद हवा से उसके बालों की लटें उड़ रही थीं। स्नान करने से उसके रोम-रोम में स्फूर्ति आगई थी।

रूखे बालों में उसने सुगन्धित तेल लगाया और बड़े कलात्मक ढंग से उनको सँवारा। रसीला जब भी बँगले से बाहर पाँव रखती तो बड़ी सजधज कर निकलती थी। उसकी वेशभूषा या केश विन्यास में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं बताई जा सकती थी। स्नो या पाउडर की परतें लगाने की उसको बिल्कुल आवश्यकता नहीं थी। स्नो या पाउडर लगाकर वह अपने प्राकृतिक सौंदर्य का अपमान नहीं करना चाहती थी।

उसने आसमानी रंग की एक बारीक धोती निकालकर पहनी। इसी रंग के ब्लाउज के कारण उसके सौंदर्य में चार चाँद लग रहे थे। साड़ी का आसमानी रंग उसकी शरबती आँखों से प्रतिबिम्बित हो रहा था। जिस समय वह तैयार होकर टाउन हॉल जाने के लिए हाथ में पर्स लेकर बाहर आई उस समय माणिक-माँ पूजा के कमरे में थी तथा बैठक में मूर्ख की छाया बैठी हुई थी।

वह रतीलाल को मूर्ख ही समझती थी। जिस समय वह रतीलाल के सम्बन्ध में कल्पना करती उस समय उसे अपने पिता के पागलपन पर हँसी आती और उसकी समझ में नहीं आता था कि आखिर रतीलाल के किन गुणों के कारण वे उसे मेरे योग्य समझते हैं? जिस समय उसके दिमाग में ये विचार आते उस समय उसकी नींद हराम हो जाती। और पिता के इस प्रकार के झुकाव के कारण उसका विद्रोही मन अपने निश्चय पर दृढ़ होता जाता था। पिता को चाहे अच्छा लगे या बुरा मैं तो विवाह के सम्बन्ध में अपनी इच्छानुसार ही काम करूँगी। यद्यपि कई बार उसे गुंदाले वाले रतीलाल की हालत देखकर दया आती। वह कई बार सोचती कि उसे बुलाकर कह दूँ कि भाई, व्यर्थ में किस काम से यहाँ जमा हुआ है? व्यर्थ में प्रतीक्षा मत कर और गुंदाले की दुकान जाकर सम्भाल ले। यदि ऐसा नहीं करेगा तो यह सम्भव है कि गाँव की दुकान पर काम में आने वाली गंदी थैलियों का बाँधना-खोलना ही भूल जाये।

फिर भी बिना किसी कारण के रसीला घर के वातावरण को अशान्त

'कर्नाटकी नृत्य।'

'अरे यह क्या होता है ?'

'देखने लायक है। देखकर आश्चर्य में डूब जाओगे ऐसा है।'

'ऐसा ?'

'तब मैं कोई मूर्ख नहीं जो समय और पेट्रोल नष्ट करने देखने को जाऊँ ?'

'मुझे ही ले चलो।'

'कहाँ ?'

'जहाँ तुम जा रही हो ?'

'पर एक बात तो बताओ क्या कुआरी लड़कियाँ के साथ तुम घूम सकते हो ?'

'बम्बई में तो ऐसा ही होता है।'

'वे सब विवाहित होते है, इसलिए तुम भी जल्दी विवाह कर लो।'

'भई, मैं तो इसके लिए इन्तजार कर रहा हूँ किन्तु तुम.....।'

रतीलाल की बात सुनकर रसीला मन-ही-मन में हँसी। वह बोली

'क्या मैं ?'

'हाँ.....हाँ.. मैं तुम्हारी ही तो बात कर रहा हूँ।'

'क्या बात कर रहे हो ?'

'पहले तुम हाँ भर लो, बस इतनी ही देर है।'

'किसकी ?'

'विवाह करने की। इसके सिवाय कौन-सी बात ?'

'अरे भाई मैंने तो विवाह करने का विचार ही छोड़ दिया है।'

'अरे तुम यह क्या कह रही हो ?'

'मैं सच ही कह रही हूँ।'

'ऐसा कैसे हो सकता है ? यह तो सुना है कि जन्म लेने वाले पुरुष तो अविवाहित रहते है, किन्तु यह नहीं सुना कि स्त्रियाँ भी अविवाहित रहती हैं।'

'तुम्हें मालूम नहीं मैं अपने पिता के लिये पुत्र हूँ।'

'दामाद और लड़का तो एक से ही होते हैं।'

'तदुपरांत भी यदि मैं ही लड़का बन कर रहूँ तब ?'

गुंडा वाला रतीलाल रसीला को इस प्रकार खुल कर बात करते देख कर मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने विचार किया कि सचमुच में गोरी धीरे-धीरे मार्ग पर आ रही है। इस प्रकार की मान्यता के कारण उसने कोट की जेब में गाँठ में हो छिपी चर्खी की पुड़िया बाहर निकाली और रसीला की

था। दिल्ली जाते समय के प्रोग्राम में-से समय लेकर संचालकों ने इस कार्यक्रम की व्यवस्था की थी। रात्रि के समय कु० उर्जिता का एक विशेष कार्यक्रम दिल्ली के धनाढ्य परिवारों के समक्ष होने वाला था। इस कारण से सुबह का समय यहाँ दिया गया था।

बिजली की चमक के समान न जाने एक मिनिट कब बीत गया इसका किसी को पता नहीं लगा। दूसरे ही मिनिट में स्टेज का पर्दा धीरे-धीरे हटने लगा। दर्शकों ने देखा—

'कु० उर्जिता ने विरहणी राधा का भेष बनाया है। उसने कृष्णावतार के वस्त्र और अलंकार धारण कर रक्खे हैं। वह दबे पाँवों विरही नेत्रों से किसी को ढूंढ़ती हुई स्टेज पर आती दृष्टिगत हुई।'

मोहक कृष्ण को ढूंढते हुए जब कु० उर्जिता अपने यौवन के बोझ से बोझिल अंगों को मरोड़ती थी तब दर्शकगण वाह ! वाह खूब ! कहकर उसकी लाक्षणिक अदा की सराहना करते थे।

नृत्य के आरम्भ से अंत तक हॉल में नीरव शान्ति छाई हुई थी। दृश्य के बाद दृश्य पूरे होते जा रहे थे। प्रत्येक दृश्य दर्शकों को बहुत अच्छा लगता था। कु० उर्जिता के अंगों का मरोड़, उसके हाव-भाव व नृत्य-कला इतने आकर्षक व सुन्दर थे कि हॉल से उठने का मन ही नहीं होता था। राधा और कृष्ण के प्रेम की कथा उसने दर्शकों के सामने अंग मरोड़ कर प्रस्तुत की थी। फिर भी वह कला से परिपूर्ण थी जिससे दर्शकों के मनों में यह कथा पूरी तरह से भा गई थी। कु० उर्जिता के अंग-मरोड़ की मनोरम नृत्यकला को देखकर दर्शकों को लगा कि उनके सम्मुख कु० उर्जिता नहीं अपितु प्रेममयी राधा ही खड़ी है। दर्शक टाउन हॉल को भूल गए थे। उनकी नजरें तो वृन्दावन की कुंज-गलियों की ओर लगी हुई थी।

रसीला का गुस्सा अब ठण्डा होगया था। वह इस प्रकार के मन-भावने दृश्य देखकर अत्यंत प्रसन्न होगई थी। घर का गम्भीर वातावरण वह भूल गई।

थोड़ी देर पहले वाली घर पर घटित अशोभनीय घटना की याद आते ही उसको थोड़ा दुःख हुआ। वह अपने किये पर पछताने लगी। गुस्से में उसने रतीलाल के जो तमाचा लगा दिया था इस बात से उसे दुःख हुआ। तमाचा इतने जोर से उसने मारा था कि दर्द के कारण उसकी हथेली अब भी दुख रही थी। उसने मन-ही-मन सोचा कि बेचारा मुफ्त में पिट गया। क्यों न घर जाकर क्षमा-याचना करूँ ? किन्तु क्या उसके सामने पर्दा पड़ा हुआ था. किस कारण से यह हुआ ? उसे इस प्रकार का अभद्र व्यवहार करते हुए लज्जा नहीं आई ? तदुपरान्त भी वह यह भली-भांति जानती थी कि उसने

बहुत जल्दी की है। पिताजी को जैसे ही इस बात का पता लगेगा वे घर में कोलाहल मचा देंगे। फिर भी उसने निर्णय कर लिया कि, गिरने के लिये अधीर होने वाली बिजली को अन्ततः एक बार तो गिरने ही देने चाहिए। ऐसा होने से वास्तविकता की जानकारी आसानी से हो सकेगी।

कु० उर्जिता के नूपुरों की झंकार ने रसीला की विचार तन्द्रा को तोड़ दिया। उसने स्टेज पर टकटकी लगाकर देखना शुरू किया। स्वच्छ, सफेद बिजली के प्रकाश में उसके कर्णफूल चमक रहे थे और कु० उर्जिता का प्रत्येक अंग कर्नाटकी नृत्य द्वारा दक्षिणी भारत की भव्य कला का प्रदर्शन कर रहा था। परम्परा से सुरक्षित चली आरही इस नृत्यकला को पुनः वर्तमान में सनातन रूप से चलाने का कार्य कु० उर्जिता भलीप्रकार से कर रही थी।

एक मोहक वातावरण उपस्थित करके कु० उर्जिता ने बाजीगर के समान अपनी कला समेट ली। उसने अंतिम दृश्य प्रस्तुत किया और पर्दा धीरे-धीरे गिरने लगा और अन्ततः सारा स्टेज पर्दे से ढक गया।

प्रोग्राम समाप्त होने पर बहुत भीड़ हो कि रसीला अपने स्थान से उठी और जल्दी से हॉल के बाहर आगई। जल्दी से मोटर में बैठकर वह घर की ओर चल पड़ी।

अब तक दोपहरी होगई थी। रास्ते में आदमियों की अपार भीड़ थी। उस अपार भीड़ में से आगे बढ़ने से मोटर बार-बार रुक रही थी इस प्रकार धीरे-धीरे रसीला अपने बंगले के अहाते में पहुँची और मोटर से नीचे उतरी। जल्दी से उसने सीढ़ियाँ पार कीं। बैठक में पिताजी बैठे थे। उनका चेहरा बहुत गम्भीर था। नाणिक-माँ इस समय रसोई घर में थीं। 'मूर्ख' पिताजी के पास ही बैठा था। उसको देखकर भी कोई कुछ नहीं बोला। वातावरण बहुत गम्भीर था।

मन-ही-मन रसीला समझ गई कि चिनगारी पड़ चुकी है। इस चिनगारी से अब बहुत जल्दी आग की प्रज्ज्वलित लपटें सारे वातावरण को जला देंगी। वह कपड़े बदलने अपने कमरे में चली गई।

-

झगड़े की फरियाद

रसीला कपड़े बदलकर सीधी ही रसोई में खाना खाने को चली गई।
...नि छाई हुई थी। एक दूसरे से कोई बातचीत नहीं कर रहा
... में खाना खाने के लिए आई समझकर माणिकबेन ने
... जान-बूझकर शांत वातावरण को रसीला अशांत
... भी चुपचाप खाना खाना शुरू कर दिया।
... विचार आ रहे ... किन्तु वह यह नहीं
... परन्तु उसने मन-ही-
... निःसंकोच स्पष्ट

... थी। जब
... दृढ़ निश्चयी
... था।
... हृदय
...
...
...

बहुत जल्दी की है। पिताजी को जैसे ही इस बात का पता लगेगा वे घर में कोलाहल मचा देंगे। फिर भी उसने निर्णय कर लिया कि, गिरने के लिये अधीर होने वाली बिजली को अन्ततः एक बार तो गिरने ही देने चाहिए। ऐसा होने से वास्तविकता की जानकारी आसानी से हो सकेगी।

कु० उर्जिता के नूपुरों की झंकार ने रसीला की विचार तन्द्रा को तोड़ दिया। उसने स्टेज पर टकटकी लगाकर देखना शुरू किया। स्वच्छ, सफेद बिजली के प्रकाश में उसके कर्णफूल चमक रहे थे और कु० उर्जिता का प्रत्येक अंग कर्नाटकी नृत्य द्वारा दक्षिणी भारत की भव्य कला का प्रदर्शन कर रहा था। परम्परा से सुरक्षित चली आरही इस नृत्यकला को पुनः वर्तमान में सुचारु रूप से चलाने का कार्य कु० उर्जिता भलीप्रकार से कर रही थी।

एक मोहक वातावरण उपस्थित करके कु० उर्जिता ने बाजीगर के समान अपनी कला समेट ली। उसने अंतिम दृश्य प्रस्तुत किया और पर्दा धीरे-धीरे गिरने लगा और अन्ततः सारा स्टेज पर्दे से ढक गया।

प्रोग्राम समाप्त होने पर बहुत भीड़ हो कि रसीला अपने स्थान से उठी और जल्दी से हॉल के बाहर आगई। जल्दी से मोटर में बैठकर वह घर की ओर चल पड़ी।

अब तक दोपहरी होगई थी। रास्ते में आदमियों की अपार भीड़ थी। इस अपार भीड़ में से आगे बढ़ने से मोटर बार-बार रुक रही थी इस प्रकार धीरे-धीरे रसीला अपने बँगले के अहाते में पहुँची और मोटर से नीचे उतरी। जल्दी से उसने सीढ़ियाँ पार कीं। बैठक में पिताजी बैठे थे। उनका चेहरा बहुत गम्भीर था। माणिक-माँ इस समय रसोई घर में थीं। 'मूर्ख' पिताजी के पास ही बैठा था। उसको देखकर भी कोई कुछ नहीं बोला। वातावरण बहुत गम्भीर था।

मन-ही-मन रसीला समझ गई कि चिनगारी पड़ चुकी है। इस चिनगारी से अब बहुत जल्दी आग की प्रज्ज्वलित लपटें सारे वातावरण को जला देंगी। वह कपड़े बदलने अपने कमरे में चली गई।

झगड़े की फरियाद

रसीला कपड़े बदलकर सीधी ही रसोई मे खाना खाने को चली गई। घर मे नीरव शांति छाई हुई थी। एक दूसरे से कोई बातचीत नही कर रहा था। रसीला को रसोई मे खाना खाने के लिए आई समझकर माणिक्यबेन ने चुपचाप खाना परोस दिया। वे जान-बूझकर शांत वातावरण को रसीला अशांत नही बनाना चाहती थी। उसने भी चुपचाप खाना खाना शुरू कर दिया। भोजन करते समय उसके मन मे कई विचार आ रहे थे। किन्तु वह यह नही सोच पाई कि आखिर इन सबका क्या परिणाम होगा। परन्तु उसने मन-ही-मन दृढ निश्चय कर लिया कि समय आने पर सारी बात निःसकोच स्पष्ट रूप से कह दी जाये।

रसीला जितनी भावुक थी उतनी ही दृढ निश्चयी भी थी। जब वह किसी प्रकार का सकल्प कर लेती या किसी बात के लिए दृढ निश्चयी हो जाती तब फिर उसे उसके सकल्प से कोई भी नही हटा सकता था।

सनातन के साथ मे वह अपना सुखद भविष्य देखती थी। उसके हृदय पर सनातन ने अपना पूर्ण प्रभुत्व जमा लिया था। वह सनातन के सिवाय किसी को भी परखना नही चाहती थी। वह यह समझने मे असमर्थ थी कि उसके सनातन के साथ अथाह प्रेम होने पर भी ये सब क्योकर उसे तुड़वाने के

प्रयास कर रहे हैं। वह यह तो भलीभाँति जानती थी कि सनातन घर जमाई बनकर रहने को राजी नहीं था। पिताजी भी सनातन को पसन्द अवश्य करते थे किन्तु घर-जमाई के रूप में ही। वे उसे तेजपुर के सनातन को भी भाँति किसी भी दशा में मानने को तैयार नहीं थे। बात का भी यहीं अन्त हो जाता था। एक ओर पिताजी की बात सनातन स्वीकार नहीं करना चाहता था तो दूसरी ओर पिताजी भी किसी दूसरी तरह से सनातन को स्वीकार नहीं करना चाहते थे। और वह बात वास्तव में विचारणीय भी थी ही! क्या कोई सनातन-सा प्रतिभा सम्पन्न, बुद्धिमान, स्वतंत्र विचारक तथा स्वाभिमानी पुरुष घर-जमाई रहना पसन्द करेगा। इस पर सनातन क्योंकर घर-जमाई रहने का इच्छुक होता!

इस प्रकार के अनेकानेक विचारों के मंथन में रसीला ने खाना खाया। उसके मन में आज न किसी प्रकार की चिन्ता थी और न भय ही। वैसे वह आज पूर्ण स्वस्थ थी। नेपकीन से हाथ साफ करती-करती वह रसोईघर से बाहर निकली उसने अपने कमरे में जाने के लिए कदम बढ़ाये कि पिताजी ने आवाज दी: 'रसीला'!'

वह एकदम रुक गई। अब तक की नीरव शांति भंग हो गई। दोसी की अति कड़वी आवाज आनन्द की लहरों में गोते खाती हुई रसीला के कानों में गूँज उठी। वह रुकी, उसी समय दोसी ने दुबारा पुकारा:

'रसीला तनिक इधर आ।'

रसीला ने बड़ी शांति और स्वस्थ मन होकर बैठक की ओर कदम बढ़ाये और पिताजी के सामने आकर खड़ी हो गई।

'आखिर तेरा क्या विचार है?' कहते हुए दोसी ने एक प्रश्नसूचक दृष्टि से अपनी लाड़ली को देखा।

वह चुप रही। पिताजी के सामने इस प्रकार कभी न आने के कारण रसीला को तनिक क्षोभ हुआ। उसने पलकें नीची कर लीं और आँखें धरती की ओर गड़ाना शुरु कर दिया।

'बोल, उत्तर दे!' दोसी पुनः चिल्लाए।

'मेरे कुछ भी समझ में नहीं आया।' सब कुछ जानते हुए भी अनजान बनने का बहाना करके रसीला का उत्तर सुनकर दोसी को और अधिक गुस्सा आना स्वभाविक ही था। वे बोले:

'सुबह क्या हुआ?'

'सुबह तो कुछ भी नहीं हुआ।' रसीला ने सारी बात पर पर्दा डालने का प्रयत्न किया। वह सोचती थी कि सुबह की घटना वह अपने मुँह से नहीं

रहे तो ठीक ही रहे, परन्तु अति उग्र स्वभाव के दोसी इतनी सरलता से बात का पीछा छोड़ने वाले व्यक्ति नहीं थे।

'कुछ भी था तो मुझे बतलाना चाहिए था। मैं कोई अभी मर नहीं गया हूँ!' दोसी के चीखने से सारा कमरा ही गूँज उठा।

रसीला ने अपनी पलकें उठाईं। उसकी आँखों में एक प्रकार की अद्भुत चमक थी। स्पष्ट रूप से सब बता देने की उसकी इच्छा हुई। फिर भी उसने अपनी सभी भावनाओं को दबाए रक्खा और चुपचाप शान्ति से कहने लगी

'पिताजी आप यह सब क्या कर रहे हैं?'

'तब क्या सिर फोड़ूँ?' दोसी के मुँह से अधिकाधिक कड़ुवे शब्द निकल रहे थे। रसीला इस वातावरण के कारण बहुत दुःखी थी। उसकी व्यथा का कोई छोर नहीं था। तदुपरान्त भी, इस बात का आज अन्तिम फैसला होने के सिवाय कोई दूसरा उपाय नहीं था। कई दिनों से घमंड में बौराए मनुष्य का आज दर्प चूर्ण कर ही देना चाहिए, ऐसा उसने दृढ़ निश्चय कर लिया। प्रत्येक वस्तु का अन्त होता ही है। उसी प्रकार आज इस बात का भी आखिर निर्णय करके अन्त कर देने का उसने निश्चय किया।

अपने प्रश्न का किसी भी तरह का कोई उत्तर न सुनकर दोसी का पारा और तेज हो गया और गुस्से में लाल-पीले होते हुए वे बोले:

'जो कहना हो वह जल्दी मुँह से उगल दे।'

'पिताजी! आप किसकी बात कर रहे हैं, यह तो पहले स्पष्ट करो? इसके बाद मैं स्पष्टीकरण करूँ।' रसीला यह कह तो गई किन्तु उसके ओठ काँपने लगे, उसकी आवाज भर्रा गई।

'उस रतीलाल को क्या मारा? उसने आखिर तेरा क्या नुकसान किया?'

'यह तो आप उससे ही पूछ लो।'

'मुझे जो कुछ पूछना था वह तो मैंने पूछ लिया। अब तो तुझे ही पूछना बाकी रहा है। रामजी मेहता ने मेरे विश्वास पर, मेरे कहने के कारण, उसे यहाँ भेजा है। अब वह मेरे ही घर पर दुत्कारा जाय, यह मैं सहन नहीं कर सकता हूँ।'

'तो मैं भी उसकी बदतमीजी सहन नहीं कर सकती हूँ।'

'आखिर आज उसने एक ही दिन में तुझे क्या कर दिया जो तेरा हाथ उस पर उठा?'

'मैंने जो किया है बिल्कुल ठीक ही किया है।'

'रसीला योग्यता और अयोग्यता का निर्णय करने की तेरी सामर्थ्य नहीं।'

'पर अपने जीवन की हित की बात तो समझने की मुझे में समझ है ही।'

'क्या मैंने तुझे इसीलिए पढ़ाया है?'

'पर मैं कब ऐसा कहती हूँ?'

'तब ऐसा कहने के लिये क्या और कुछ विशेष गुण चाहिए?'

'नहीं।'

'तब फिर?'

सारे कमरे में थोड़ी देर के लिए फिर शांति छा गई। रसीला मौन हो गई। पिताजी के साथ बराबर जबानदराजी करना उसे अच्छा नहीं लगता था। वह वहाँ से चले जाने की सोचने लगी और चलने के लिए एक कदम बढ़ाया। कदम बढ़ाते ही दोसी बोले . 'रसीला।'

रसीला के आगे बढ़ते कदम रुक गये।

'मैं यह सब तेरे सुख के लिए ही कर रहा हूँ। तू इस घर से बाहर न जाये इसी कारण से मैं यह सब कर रहा हूँ।'

'पिताजी आपका मार्ग ठीक नहीं।' रसीला की आवाज में नम्रता के साथ-ही-साथ गहरे दुःख की एक झलक थी।

'बेटा, तेरा पिता होकर क्या मैं तेरे सुख की कामना नहीं करता हूँ?'

'आप मेरे सुख की कामना करते हैं, अन्तर्मन से मेरे सुख की कामना करते हैं...... परन्तु आपका मार्ग ठीक नहीं। इससे आप मेरे सुख की कामना करने की अपेक्षा दुःख को ही निमंत्रण देंगे।'

'रसीला तेरी यह मान्यता भ्रमपूर्ण है।'

'पिताजी मुझे मेरा भविष्य इस मार्ग से अन्धकारमय प्रतीत होता है।'

'निरा छिछोरपन है— छिछोरपन।' इस प्रकार कहते हुए दोसी गहरे विचार में खो गए। किन्तु थोड़ी देर रुक कर बोले :

'रसीला चाहे कुछ भी हो, तेजपुर वाले को तो मैं अपने घर में पाँव भी नहीं रखने दूँगा!'

'कारण?'

'इसके कारण गम्भीर हैं।'

'उन गम्भीर कारण में-से एक भी तो कारण स्पष्ट कर दीजिये!'

पिता-पुत्री के बीच में विह्नलतापूर्ण शब्दों का वाक्-युद्ध प्रारम्भ हुआ।

रसीला को इस प्रकार से पिता के सामने बोलना तनिक भी रुचिकर नहीं लगता था। फिर भी जब उसके भविष्य का नक्शा बनाया जा रहा था, तब उसमें वह अपना मन्तव्य भलीप्रकार न रक्खे तो जीवन भर आँसू बहाने के और कोई उपचार नहीं रह जाता। इसीलिये न बोलना चाहते हुए भी, वह पिताजी के सामने बराबर बोलती जा रही थी।

'सबसे पहली बात तो यह कि सनातन अभिमानी व्यक्ति है और यह मुझे अच्छा नहीं लगता।'

रसीला इस बात के लिये मन-ही-मन सोचने लगी कि कौन अभिमानी था? पिताजी या सनातन? सनातन के स्वाभिमानी स्वभाव को वे अभिमानी कहते थे।

'बम्बई और तेजपुर में बहुत अन्तर है।'

'है ···।'

'हमारे तथा उनके रहन-सहन में बहुत अन्तर है। इस पर भी मैंने विचार किया है कि यदि तेजपुर छोड़कर बम्बई में आकर वह रह जाये तो मैं यह सम्बन्ध प्रसन्नता से कर सकता हूँ। किन्तु वह तो मन-ही-मन फूला है। उसके लिए मैं कौन हूँ?' दोसी की सनातन के प्रति मन-ही-मन छिपी अरुचि अन्तिम शब्दों में स्पष्ट हो रही थी।

'किन्तु पिताजी अपना सम्मान तो सबको प्रिय होता है।' अपने सम्मान के बिना मानव का जीवन क्या जीवन कहलाता है?'

'किन्तु उसके स्वाभिमान को यहाँ कौन धूल-धूसरित करने वाला था? बम्बई में किसकी हिम्मत थी जो उसे कोई ऊँची-नीची बात कहता?'

'यदि बम्बई में आने से ही उसे अपने स्वाभिमान को ठेस लगे तब?'

'तब फिर तेजपुर में ही धूल फाँकते पड़े रहने में उसका हित है। मुझे उसकी कोई परवाह नहीं है।'

रसीला ने अब बड़ी दृढ़ता से उत्तर दिया 'तुम्हें परवाह नहीं किन्तु मुझे तो उसकी जरूरत है ही।'

'किसलिए?' दोसी ने प्रश्न-सूचक भाव से कहा।

'तुमने ही तो यह सबन्ध किया है। तुमने ही जबान दी है।'

'इससे क्या होता है। जबान दी तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि मैं अपनी लाडली का जीवन नष्ट कर दूँ।'

'परन्तु इसमें जीवन नष्ट होने का कोई प्रश्न नहीं!'

'है, बेटा! बहुत डर है। मैं यह बात सुनना चाहता हूँ।'

'किन्तु मैं तो इस बात को नहीं छोड़ सकती हूँ।'

'बेटी तू तो बँधी हुई नहीं है? बँधा हुआ तो मैं ही हूँ।'

'किन्तु, पिताजी वचन-बद्ध होने का कारण तो मैं ही हूँ।'

'मैं आज ही सनातन को एक रजिस्ट्री से नोटिस देकर इस संबन्ध को तोड़ देना चाहता हूँ। आज तक यदि उसने इस घर पर नजर डाल रक्खी हो तो अब वह इस धोखे में नहीं रहे। बढ़ कर नाक काट लिया है कि भाई तुम्हारा हमारा मेल सम्भव नहीं हो सकता है। तू किस प्रतीक्षा में बैठा है? तू अपना कोई दूसरा ठिकाना देख! जाति के सभी व्यक्ति समाप्त नहीं हो गये हैं?'

रसीला चुपचाप सुनती रही। वह कैसे कहे कि मैंने ही तो उसे मना किया है। मैंने ही उसे वचन दिया है कि मैं तुम्हारी हूँ। तुम दृढ़ रहना। बस फिर सब ठीक हो जायेगा। मैं अपना मन तुम्हें दे चुकी हूँ, इसका ध्यान रखना।

विचार-तन्द्रा में रसीला को देखकर दोसी ने अनुमान किया कि रसीला कुछ नम्र हो गई है। अतः वे फिर से बोले:

'तेरे सुख के लिए बेटी आखिर हम भी तो चिन्तित हैं ही। हम तेरे शत्रु तो नहीं हैं?' पिता के वचनों में अब काफी नरमी थी। किन्तु वचनों की यह नरमी रसीला को मात्र ढकोसला-सी लगी। उसने फिर से साहस बटोर कर कहा:

'पिताजी अब मुझे किसी दूसरे की चूँनरी नहीं ओढ़नी है। तेजपुर के झौंपड़े में ही मैंने अन्न-जल लेने का निश्चय किया है।'

'यह सम्भव नहीं हो सकता।'

'पिताजी आप व्यर्थ में ही क्योंकर हठ कर रहे हो? मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है। अब मुझे किसी दूसरे में रस नहीं रहा है।'

'पर मैं यह नहीं समझ सका कि घर बैठे आये तथा थूक तक न उगालने वाले रतीलाल में तुझे क्या कमी दृष्टिगत हो रही है? इसमें कौन-सा दोष है?'

'कुछ भी नहीं।'

'तो फिर।'

'इसकी चर्चा करना ही बेकार है।'

रसीला बराबर अपना केस मजबूत बनाती जा रही थी। इससे दोसी के अभिमान के अंकुर समाप्त होते जा रहे थे। दोसी को स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि रसीला इतनी दृढ़ता व अटलता से अपनी बात कह सकेगी।

'परन्तु मेरी प्रतिष्ठा?'

'प्रतिष्ठा नहीं अपितु अभिमान की बात कीजिए।'

'इसका मतलब! तो क्या मैं अभिमानी हूँ?'

आवेश-ही-आवेश में रसीला को जो कहना था वह कह गई किन्तु जैसे ही उसे ध्यान आया कि उसने अपने पिता को अभिमानी कहा है, तो उसे इस का क्षोभ हुआ। अब बात को बदलने के लिये वह बोली .

'पिताजी ! आप व्यर्थ में ही हठ कर रहे हैं। मेरे ख्याल से आपकी प्रतिष्ठा इस सबन्ध को तोडने के स्थान पर बनाए रखने में है।'

'यह सब बातें गाँवों की हैं। बम्बई में ऐसा नहीं।'

'किन्तु बम्बई में कौन-सी अड़चन आ रही है ?'

'तुझे केवल हठ ही करना है या मेरे स्वाभिमान का भी कुछ ध्यान है ?'

'मैंने, पिताजी हर प्रकार से सोच लिया है।'

'क्या ?'

'तेजपुर जाने का।'

दोसी का अब तक का दबा क्रोध आखिर फूट ही पड़ा। वे जल्दी से खड़े हुए। क्रोध के कारण वे काँप रहे थे। आँखों से आग के अंगारे निकल रहे थे। क्रोध से ओंठ काँप रहे थे। गुस्से में आकर उन्होंने रसीला के गाल पर एक तमाचा जड़ दिया।

मनुष्य क्रोध में उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रखता। अब तक कभी भी रसीला से ऊँचे स्वर से एक भी शब्द न बोलने वाले दोसी ने अन्ततः रसीला के एक तमाचा लगा ही दिया। परिस्थिति की पूर्ण उग्रता को देखकर निर्बल मानस का रतीलाल अपनी कोठरी की ओर चला गया। अब उसे इन तिलों में तेल नहीं लगता था। वह रसीला की दृढ़ता और अटलता को देखकर सोचने लगा कि अब यहाँ उसकी कोई सामर्थ्य नहीं है। उसने यह भी समझ लिया कि उसका बम्बई में आकर रहना सब बेकार रहा। रसीला अब उसे किसी भी दशा में पसन्द नहीं करने वाली थी।

उसके मन में उथल-पुथल मचने लगी। गरीब का भाग्य भी गरीब ही होता है। इस कहावत के अनुसार वह अपने भाग्य को ही दोष देने लगा। इसी प्रकार के विचारों में डूबा हुआ रतीलाल सिर पर हाथ रखकर न जाने कब तक अपनी कोठरी में बैठा रहा।

बाहर अभी तक दोसी की गर्जना सुनाई दे रही थी . 'सब लोग यहाँ से निकल जाओ! मुझे किसी से कोई मतलब नहीं।' दोसी की आवाज से अब तक भी उग्रता टपक रही थी।

माणिक-माँ ने रसीला को बगल में लेकर पूछा :

'यह सब क्या है ?'

'तुम सब इकट्ठे होकर मेरी नाक कटवाना चाहते हो !'

'तनिक शांति से भी बात करो। व्यर्थ में क्यों चिल्ला-चिल्लाकर घर को सिर पर उठा रहे हो?'

'मेरा जीवन धूल-धूसरित करने को ही यह बेटी हुई है।' दोसी बड़ी तेजी से जल्दी-जल्दी बोल रहे थे और उस आवाज में माणिक-बेन की आवाज दबी जा रही थी।

माणिक-बेन ने दो-चार बार पति को शांत रहने का निवेदन किया और इस पर भी वे चुप नहीं हुए तो लाचार होकर माणिक-बेन ने रसीला का हाथ पकड़ा और उसे उसके कमरे में छोड़ आई और स्वयं रसोईघर में चली गई। माणिक-बेन यह बात भलीभाँति समझती थी कि क्रोधित होते हुए दोसी के सामने चुप रहना ही उचित है। इसी प्रकार वह चुप रह जाती, जिससे घर का वातावरण शांत रह जाता।

कमरे में घुसते ही रसीला अपने पलंग पर लुढ़क गई तथा हिचकियाँ ले लेकर रोने लगी। इस विषम परिस्थिति के कारण वह इतनी परेशान हो गई थी कि वह यह निर्णय नहीं कर सकी कि इसका क्या परिणाम होगा। इस पर भी अपना भविष्य तय करने के लिए वह किसी स्पष्ट निर्णय पर पहुँचना ही चाहती थी और ऐसा उसने दृढ़ संकल्प कर लिया था।

घण्टों तक वह जैसी-की-तैसी ही पलंग में पड़ी रही। शाम को वह उठी और बाहर निकल कर सीढ़ियाँ पार करके छत पर जा पहुँची। छत पर रखी एक बाँस की कुर्सी खींच कर वह खुले में बैठ गई। कई घण्टों तक लगातार कमरे में पड़ी रहने के कारण उसका मन बहुत ही व्याकुल था।

वह स्वच्छ हवा का सेवन करना चाहती थी। छत के सामने ही सागर लहरा रहा था। लहराते सागर में आज तूफान आ रहा था। तूफान के बीच में एक मछियारा ऊपर-नीचे गोते खाता हुआ किनारे पहुँचने का अथाह प्रयास कर रहा था। रसीला को यह दृश्य बड़ा अच्छा लगा। समुद्र के तूफान को चीरता हुआ मछियारा किनारे की ओर बढ़ रहा था। ऐसा ही उसके जीवन में घट रहा था। वह भी क्या उसी प्रकार के तूफान में मछियारे की भाँति अडिग रहकर किनारे लगने के लिए अथाह परिश्रम नहीं कर रही थी? संकटों से डर कर मछियारा हिम्मत नहीं हारता था; वह विजय तथा जीवन के लिए संघर्ष कर रहा था तब वह भी तो एक मनुष्य ही थी। जीवित-जागती अनन्त शक्ति का प्रतीक! 'घर में चल रहे इस तूफान से क्या थक कर हार मानली जाये? नहीं! नहीं! मैं दृढ़ता से इन सब परिस्थितियों का सामना करूँगी। मानव मात्र को अपने जीवन का मार्ग निश्चय करने का अधिकार होता है। प्रतिष्ठा या किसी बुरे ख्याल से पिता ने जो कुछ करने का निश्चय किया है

मैं उनका डटकर सामना करूँगी। मैं अपने जीवन में मनानन के सिवाय किसी को स्थान नहीं दे सकती हूँ।

शहर के आलीशान मकानों के पश्चिम में भगवान् सूर्य देव अस्ताचल की ओर चले जा रहे थे। और इसके साथ ही-साथ सध्या भी शोभायमान हो रही थी। सध्या में पश्चिम दिशा का आकाश शोभायमान हो रहा था, किन्तु इस सध्या ने अति शीघ्रता से अपनी शोभा को समेट लिया और आकाश में चारों ओर कालिमा छा गई। कालिमा पृथ्वी पर भी चारों ओर दृष्टिगत होने लगी। धीरे-धीरे रात्रि-रानी का साम्राज्य चारों ओर हो गया। रसीला अब समुद्र देखने में असमर्थ थी। अब तक मछियारों भी किनारे लग चुका था। इस कारण से रसीला अब अपने स्थान से उठी और कुर्सी को केबिन में रखकर वह सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आ गई।

पिताजी के कमरे में अब तक आवाज आ रही थी। स्वाभाविक रूप से बात को जान लेने की उत्सुकता से वह दबे पाँव कमरे तक आई और एक दीवार का सहारा लेकर बातें सुनने लगी। कमरे से माणिक चन्द के बोलने की आवाज आ रही थी -

'कहती हूँ कि बहुत ऐंठ लगाने से टूट जायगी।'

'क्या हो जायेगा, वह तो दो दिन रो-कलप कर रह जायेगी।'

'व्यर्थ का हठ मत करो, लड़की का दिल कुचलना ठीक नहीं।'

'मैं किसी स्वार्थ से उसका मन नहीं कुचल रहा हूँ।'

रसीला ने देखा कि माँ-पिताजी से प्रार्थना कर रही है। उसने मन-ही-मन विचार किया, माँ क्योंकर इतनी विनम्रता दिखा रही है? यदि विवाह करना है तो मनानन से ही करना है अन्यथा आजीवन कुमारी ही रहूँगी। दूसरों को तो मैं भाई या पिता समझती हूँ। उसने एक क्षण के लिए विचार किया कि अन्दर चलकर मैं इसी बात को पिताजी को साफ-साफ बतला दूँ। परन्तु ऐसा करने में उसे लज्जा आ गई।

'कमरे में-से आवाज आई। इस बार पिताजी बोल रहे थे।'

'यदि रसीला को रतीलाल पसन्द नहीं है तो अन्य स्थानों की कौन-सी कमी है?'

'नहीं, अब सब बात बिगड़ जायेगी।'

'तेरे कहने से बात बिगड़ जायेगी परन्तु मैं तो कोई ऐसा अनहोना नहीं सोचता हूँ।'

'मैं तुम्हारे सामने आँचल पसारती हूँ। तुम बेटी के विवाह के विषय में बात करना छोड़ दो।' माणिक-चन्द ने भर मन से दोनों से प्रार्थना की।

माणिक-बेन की बात सुनकर दोसी को बहुत गुस्सा आया। उन्होंने मन-ही-मन सोचा, क्यों न एक लात मार कर इसे बाहर निकाल दिया जाये। पर बड़ी मुश्किल से उन्होंने अपने गुस्से पर काबू किया। थोड़ी देर पुनः शांति हो गई। परन्तु फिर थोड़ी देर बाद दोसी अन्तर के गहरे उद्‌गार करते हुए कहने लगे :

'मेरी बात न मानकर उसे यदि तेजपुर ही जाना है तो घर के दरवाजे खुले हैं। किन्तु याद रखना फिर इस घर में वह पांव नहीं दे सकती है।'

'ऐसा क्रोध हम कर सकते हैं?'

'एक बार नहीं कई बार सम्भव है।'

'हम तो उसके मां-बाप हैं। हमें छोड़कर वह कहाँ जायेगी!'

'कुए में जाए।'

'ऐसा बुरा मत कहिए।'

'तब क्या कहूँ? मेरी बात तुम क्यों नहीं मान लेते हो? व्यर्थ में ही अनकहे शब्द कहकर और उस दरिद्री को अच्छा बनाने का प्रयास तुमने ही किया है और मुझे ऐसा समय देखना पड़ा। मेरा तो रामजी मेहता के सामने नाक कट गया। अब मैं उनसे किस मुँह बात करूँ।'

'सम्बंध के काम में तो ऐसी कई बातें होती ही हैं।'

लगातार उसका ही पक्ष लेने वाली माँ को शत-शत प्रणाम करने का रसीला का मन हुआ।

'यदि जान-बूझ कर ही आग से खेलना चाहते हो तो कूदो, मैं इसमें क्या कर सकता हूँ।'

अपनी ओर झुक रहे पति पर अन्तिम और पूर्ण विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से माणिक-बेन ने मिठास से कहा :

'इसके भाग्य ही ऐसे ही हैं! हम कर भी क्या सकते हैं? यदि वह मन से तेजपुर को ही चाहती है तो फिर हम इसमें कर भी क्या सकते हैं?'

'चलो अब यहाँ से चल दो।'

'यहाँ से जाकर कहाँ खड़ी रहूँ।'

'गड़का जाकर!'

'क्या काम है?'

'किस काम के लिए, क्या चार भांवर पाड़ने को।'

'ऐसी भी क्या जल्दी है?'

'नहीं, मुझे अब यह बोझा सिर पर नहीं रखना है। बम्बई में अपनी जाति वालों को बताने की उग्र इच्छा थी कि मैंने भी विवाह किया है, किन्तु

जहाँ बेटी ही बदल गई, उसके भाग्य बदल गये, फिर क्या हो सकता है? सारी उमंगें मन-की-मन में रह गईं।'

'सनातन को जिस बात से सुख मिले माता पिता के लिए वही सबसे बड़ा संतोष है।' कहते हुए माणिक-बेन उठ खड़ी हुईं। वह कमरे से बाहर निकले कि रसीला अपने कमरे में चली गई। उसका मन का भार हल्का हो गया। और उसी नाविक-सा जो तूफान में ऊपर नीचे हो रहा था। उसके मन में शांति हो गई।

दोसी बैठक में गए और हाथ में कलम कागज लिया। जिस पत्र द्वारा दोपहर में सनातन को सम्बन्ध-विच्छेद करने की सूचना देनी थी, उसी पत्र द्वारा उन्होंने सनातन को विवाह निश्चित करने की तिथि निश्चित करने की सम्मति लिख दी।

मात्र आठ दिन में तो विवाह की तिथि भी निश्चित होकर आ गई। विवाह के लिए दोसी ने बम्बई जाने का निश्चय किया।

और गुंदाले का रसीलाल पुनः गुंदाले सुरक्षित पहुँचा दिया गया।

समय पर आक्रमण

सारा तेजपुर सजाया जा रहा है। गरीब किसान से लेकर धनाढ्य किसानों के घर मिट्टी-गोबर से लिप-पुत रहे हैं। दरवाजों पर अशोक वृक्ष के पत्तों की वंदनवारें लटका दी गई हैं। मात्र तेजपुर ही नहीं अपितु आसपास के सभी गांव इस उत्सव को मनाने के लिए व्याकुल हो रहे हैं। इस विवाह का आनन्द लेने के लिए बालक-वृद्ध सभी प्रसन्न हो रहे हैं।

सनाननसेठ का विवाह होने वाला है। बरात जाने में अंगुलियों पर गिनने को दिन रह गये। रोज मेहमानों के झुण्ड के झुण्ड आ रहे हैं। आने वाले मेहमानों को ठहराने की उनकी हैसियत मुताबिक व्यवस्था की जा रही है। नाश्ते करने वालों तथा भोजन करने वालों की संख्या बराबर बढ़ती जा रही है।

इस ढलती उम्र में ओसम-मां भी गड्ढों में बैठी आंखों के सामने हाथ का छज्जा लगाकर आने वाले मेहमानों का खुले दिल से स्वागत कर रही थी। ओसम-मां के स्वागत से आगन्तुक को आत्मीयता के दर्शन होते थे। सबको आने की इतनी बड़ी प्रसन्नता होती थी। वे सोचते थे कि आये तो कितना मधुर स्वागत किया गया।

सुबह-शाम घोड़ागाड़ी मेहमानों को लाने के लिए बराबर घूम रही

थी। इस काम के लिए तेजपुर से थानेदारजी ने अपनी स्वयं की गाडी भिजवा दी थी। गाडी भिजवाए आज उनको तीन दिन हो गए थे। दूर-दूर के कई गंधी इत्र लेकर सनातनसेठ के घर तक बराबर आ रहे थे। सब सोचते थे कि भाग्यानुसार कुछ-न-कुछ तो अवश्य मिलेगा ही। माल बेचने वाले भी सेठ के मेहमान होते थे। सनातन सभी का मुस्करा कर स्वागत करता था।

सनातन मेहमानों को खाने आदि के लिए पूछकर बैठक में आया। यहाँ इस समय तीन गंधी आये हुए थे।

गंधियों ने अपनी इत्र की शीशियाँ खोलते हुए कहा: 'भाई कानपुर का हिना है, बनारस का असली केवड़ा है।'

'तुम्हें जो कुछ देना हो दे दो और ओघामेहता से पैसे ले लो।'

'परन्तु भाई आप पसन्द भी करो।'

'तुम जो दे दोगे वह सब ठीक।'

'यह तो ठीक, पर भाई आपको हिना पसन्द है पावडी-केवड़ा या नाग-चम्पा?'

'मुझे तो सब पसन्द है।'

यह सुनकर ओघामेहता अपने सहज स्वभाव अनुसार बड़बड़ाये

'अरे साहब म क्यों परेशान कर रहे हो? चलिए अपनी सदूकें बंद करो! सारी जगह गंध फैला दी।'

'मेहता! जो ये देते हैं वह ले लो!'

'पर लिया कितना जाए! मालूम है बस एक गंधी आया और पच्चीस रुपए का माया मसा गया और आज ये फिर तीन आगए!'

'मेहता! यह पुन जीवन म दूसरी बार तो आने से रहे। देखो कितना लम्बा रास्ता काट कर आए हैं। इनको खुश करो। समय पर आए हुए को यों खाली हाथ लौटाना मेहताजी ठीक नहीं है।'

'पर कितने व्यक्तियों को?'

'जो भी आये उन सबको! आओ भाई, आओ। महता को एक नागचम्पा की सीक दे देना इससे ये बहुत प्रसन्न हो जायेंगे और तुम्हें जितना देना हो दे देना।'

सनातनसेठ की बात सुनकर ओघामेहता की आँखें चश्मे में कुछ तनी और वे बोले

'परन्तु पैसे देने का भी कोई हिसाब बताओ?'

'जितने माँगें उतने द देना। बच्चा के मुँह म जायेंगे। इस दरवाजे पर आगामी बीस साल तक किसी का निवाह नहीं होगा? किसी का दिल न दुखे इसका अवश्य ध्यान रखना!' सनातन ने ओघामेहता की आत्मीयता

पर हँसते हुए कहा :

'चलो भाई अपना काम पूरा करो।' तथा मेहता को सम्बोधन करते हुए कहा :

'मेहता शायद तुम्हें मालूम नहीं कि हम किसके भाग्य के कारण यह सब भोग रहे हैं ?'

गत दो दिनों से तो तेजपुर में कई कपड़े, खिलौने और छोटी-बड़ी वस्तुओं के व्यापारी आए। सबको अपने-अपने भाग्य के अनुसार कुछ-न-कुछ मिला ही।'

दोपहर का भोजन करके बरात तैयार हुई। इत्र के कुप्पे खुले। ऊँची किस्म के अनोखी सुगन्ध से सारा वातावरण सुगन्धित होकर महक उठा। तेजपुर के सभी निवासियों ने नए-नए कपड़े पहने। नीची-से-नीची जाति के व्यक्ति से लेकर ऊँची से ऊँची जाति के व्यक्ति तक सभी सनातन के विवाह का आनन्द उठा रहे थे। ओंधामेहता को यह काम बताया गया कि गाँव के अस्पृश्य लोगों को एक-एक जोड़ी नए कपड़ों की दे दी जाये। अस्पृश्यता में विश्वास करने वाला ओंधामेहता इस प्रकार के बिल्कुल नए कपड़े अस्पृश्य लोगों के मुहल्ले में जाकर जल्दी से दे आए थे।

जिस समय सनातन अपने शयनखंड से सजधज कर बाहर निकला उस समय उसका रूप देख कर इन्द्र की अप्सरा भी मोहित हो जाती थी। वह इस समय चूड़ीदार पायजामा और जरी की अचकन पहने था। इन कपड़ों में उसका स्वस्थ शरीर इतना मनोहर लगता था कि सारे वातावरण पर उसके व्यक्तित्व की एक अनोखी छाप पड़ रही थी। इस पर भी प्रकाश की किरणों से स्पर्द्धा करता हुआ उसका सुनहरी गोटे से भरा हुआ साफा उनके व्यक्तित्व को एक भिन्न रूप प्रदान करता था।

गढ़का से दोशीसेठ ने कहलवाया था कि वरराज के लिए मोटर भेज दी जायेगी। पर सनातन ने जब भावनगर के डाक्टर की मोटर भिजवाने की ऑफर को ही अस्वीकृत कर दिया तब दोशी की तो बात ही क्या ? वह तो अपने जीवन-मरण की जातवंत बावली घोड़ी पर सवार होकर बरात में सबसे आगे चलने वाला था।

शकुन लेकर 'घोड़ी चढ़े रे वरराज' के मंगल गीत के स्वरों के बीच सनातन ने बावली के गले पर एक प्रेम भरी थाप मारी और पातड़ों में पाँव रखे।

ढोलियों ने परिश्रम से ढोल बजाना शुरू किया। शहनाई-वादकों ने गले फुला-फुलाकर शहनाइयाँ बजाना शुरू किया। स्त्रियों ने मधुर-कण्ठ से मंगल गीत गाना प्रारम्भ किया।

ऐसे उल्लासपूर्ण वातावरण में बरात चली। सनातन की बावली घोड़ी अत्यन्त उमंग से बरात के आगे चल रही थी।

घोड़ी के पीछे लगभग पच्चीस गाड़ियाँ आ रही थी। गाड़ियों के दोनो ओर पाँच-पाँच दो-नाली बन्दूक वाले हवा में अपने घोड़े उड़ाते हुए चल रहे थे।

गोढ़डा पार करके बरात गढका की ओर मुड़ी। धूल के बादल सारे वातावरण मे फैल रहे थे।

सीमा आते ही बिना रास्ते ही घोड़े को ऐड़ी मारकर दौड़ता हुआ एक घुड़सवार दिखाई दिया। चचल सनातन ने टकटकी लगाकर घुड़सवार को देखना शुरू किया। परन्तु जैसे ही घुड़सवार पास में आया सनातन ने उस को पहचान लिया। घुड़सवार जामुड़ा का लाखा था। ज्ञाति से लाखा कोली था परन्तु सनातन के साथ बचपन से ही इसके सम्बन्ध भाई से अधिक थे। पूर्वजन्म के सस्कारो के कारण उनका मेल इस प्रकार का था मानो पूर्वजन्म का कुछ लेन-देन शेष रह गया हो।

लाखा को इस प्रकार आते देखकर सनातन ने विचार किया कि यह तो सीधा ही गढ़का आने वाला था, यहाँ सीमा पर क्यो कर मुझ से मिला। जामुड़े से गढका का मार्ग बिल्कुल सीधा था फिर यह क्यो कर बिना मार्ग का रास्ता पार कर रहा है!

लाखा जैसे ही नजदीक आया सनातन ने घोड़ी की लगाम खींची। इशारे मात्र से मानव-मन के भावो को जानने वाली बावली एकदम ठहर गई।

लाखा ने भी घोड़ा रोका। वह अब तक हाँफ रहा था। इससे यह स्पष्ट होता था कि उसने थोड़े समय मे लम्बा रास्ता तय किया है। पलभर मे सनातन के मस्तिष्क में कई विचार आये। लाखा का श्वास ठीक हो इससे पहले ही सनातन ने आगे होकर पूछा:

'क्यो लाखा क्या बात है जो इस प्रकार से बरात को रास्ते में ही रोकना पड़ा?'

'दुश्मन ने पीठ से आक्रमण किया है।'

'पर बात क्या है?'

लाखा अब अपने घोड़े को सनातन के कुछ पास में लाया और कान मे मुँह डालकर कहने लगा: 'हमीर ने आक्रमण किया है।'

'लाखा जरा शांति से जो कुछ कहना हो कह दे। नाहक में तू क्यों घबरा रहा है।'

'हमीर ने किया ही ऐसा काम है कि घबराना आवश्यक है। तुम

मुझे छुट्टी दे दो जो हमीर का लम्बा नाक नहीं काट दूँ तो मेरी माँ का दूध लजा जाये।'

'परन्तु भाई, बात का सिर-पैर तो मालूम हो जाये, फिर तुझे जो करना हो करना!'

'मुझे तुम्हारी ओर से छूट है न?'

'नहीं।'

'तब?'

'पहले जो बात है वह बता।'

उसने देखा तो बरात की गाड़ियाँ अभी पीछे रह गई हैं। दूर-दूर से बराती विवाह के गीत गाते चले आ रहे थे। गीतों की आवाज बड़ी धीमी थी। इसके सिवाय सारा वातावरण शांत था।

'हमीर ने आज देखकर फरियाद की है। ताल्लुके के थाने पर जाकर रिपोर्ट की है कि जाबुड़ा में रह रही समजू के हराम का हमल है। इस हमल को गिराने की समजू कुछ कोशिश करे, उसको गिरफ्तार कर लिया जाये।'

'फिर?'

'फिर क्या हमीर ने लिखित रूप में शिकायत की और शिकायत पर अँगूठा लगा दिया।'

'फौजदार ने क्या कहा?'

'वह क्या कहता! जब लिखित में शिकायत ही की गई है तब पेट की बात सबसे पहले होनी है। फौजदार फौरन जाबुड़ा आया। मुझे एकान्त में बुलाकर उसने बताया कि वह समजू को ताल्लुके ले जा रहा है। जमानत-दारी की मैं व्यवस्था कर दूँगा। भाई को कहना कि व्यर्थ में परेशान न हो। इसके बाद मैं सारी बात गढ़का से लौट आने पर कर लूँगा।'

सनातन लाखा की बात सुनकर विचारों में डूब गया। उसके सामने यौवन की मदभरी मस्ती में मस्त समजू का चेहरा आगया। अपूर्व प्रेम करने व प्रेम-धारा से सींच-सींचकर उष्मा व मधुर सम्बल देने वाली समजू फौजदार की अदालत में खड़ी रहे तथा भ्रष्ट पुलिस अधिकारियों की नजर उस पर पड़े यह सनातन को कैसे सहन हो सकता था? उसका रोम-रोम खड़ा हो गया। वह सनसना उठा। सदा ही साथ रहने वाले लाखा से सनातन का यह परिवर्तन सहन नहीं हो सका!

'लाखा मैं यह नहीं समझ सका कि फौजदार ने किस प्रकार हमीर की रिपोर्ट ले ली।'

फौजदार ने पहले उसे झगड़ालू कहकर टाल दिया। पर हमीर चोरिया

भी कम नहीं है। उसने फौजदार को उल्टी डाँट देकर कहा था तो तुम मेरी शिकायत न लो अन्यथा मैं उच्च अधिकारियों से आपकी भी शिकायत करूँगा।'

'फौजदार ने उसे उच्च अधिकारियों के पास क्यों नहीं जाने दिया?'

'पर भाई तुम तो जानते हो फौजदार की इतनी सामर्थ्य कहाँ है?'

'मूर्ख है फौजदार।'

'भाई इसमें उसका कोई दोष नहीं। नौकर होते हुए भी उसने इतना तो किया कि भाई को जाकर कहना कि किसी प्रकार की चिन्ता न करे। मैं इसकी जमानत लेकर अपनी पत्नी के साथ रख लूँगा।'

'पर लाला, यह कैसे सम्भव है?'

'दूसरा उपाय भी क्या हो सकता है?'

'समजू को खुद जाकर छुड़ा लाओ।'

'मैं जाऊँ?'

'नहीं तेरे जाने से उसको सन्तोष नहीं मिल सकता है।'

'तब?'

'मैं जाता हूँ और अभी लौटता हूँ।'

'सिर पर मौर-बँधे ही?'

'हाँ। जब उसने मुझे अपना शरीर सौंपते हुए किसी प्रकार का विचार नहीं किया तो आज मैं मौर बँधे की बात सोचकर सोचता रहूँ, यह कहाँ का न्याय है?'

'भाई, जल्दी मत करो।'

'जल्दी की बात नहीं लाला! मेरा यह कर्तव्य है। इतनी देरी हो गई, यह भी सबसे बड़ा पाप है।'

बरातिया के स्वर स्पष्ट सुनाई दे रहे थे। गाड़िया की घरघराहट में बरातिया के स्वर दबे जा रहे थे।

सनातन व बरात की गाड़िया में बहुत थोड़ा अन्तर रह गया था।

थोड़ी देर सोचकर उसने मन-ही-मन दृढ़ निश्चय कर लिया।

देखते-देखते गाड़ियाँ सनातन के पास आकर रुक गईं, क्योंकि वरराज का घोड़ा खड़ा रहे तो बराती आगे बढ़कर लोक मर्यादा का खंडन करने वाले नहीं थे। बराती यद्यपि निपट किसान थे पर फिर भी भूल करने वाले नहीं थे।

'भाई, बात करते-करते मझदार की ओर देखो। इस समय क्या कर ठहरे हो? अब जल्दी से ही समधी के गाँव की ओर घोड़े को दौड़ाओ।' एक ग्रामीण बराती ने सनातन को कहा।

सनातन ने उसकी ओर मुड़कर कहा: 'तुम लोग बरात को

गढ़का की ओर रवाना करो। मैं अभी ताल्लुके जा रहा हूँ। समय पर हर हालत में गढ़का आकर ही रहूँगा।'

'अरे भाई! यह कोई खेल नहीं है, विवाह है!' जयसिंहभाई ने कहा।

मन में चल रही विचारों की गम्भीर उथल-पुथल को दबाये, किसी प्रकार की चिंता के भावों को मुँह पर लाये, मुस्कराते हुए सनातन ने कहा: 'काका! मैं निश्चित समय पर आ जाऊँगा। जीवन-मरण का प्रश्न है। मुझे तो ताल्लुके जाना ही होगा!'

'किसका?' बड़ी आतुरता से जयसिंहभाई ने पूछा।

'वैसे काम तो दूसरे का ही है। किन्तु हमारे साथ सात्विक होकर उपकार करने वाले को मझदार में ही छोड़ देने के समान कौन-सा बुरा काम होगा? क्या यह सबसे बड़ा पाप नहीं है? काका! मुझे मत रोको। मैं भाँवर के समय निश्चित रूप से आ जाऊँगा।'

सनातन को अपने दृढ़ निश्चय से हटाने की सामर्थ्य किसी में नहीं थी।

सनातन के सामने अब कोई बात नहीं कर सका। उसे समय मिल गया। गाड़ीवालों से सनातन ने कहा: 'तुम लोग चल दो! मैं सीधे रास्ते से समय पर गढ़का पहुँच रहा हूँ।'

गाड़ीवानों ने सनातन के आदेश का पालन किया और बैलों को टिटकारी दी। बैल मानो टिटकारी की ही प्रतीक्षा कर रहे हों, इस प्रकार संकेत मिलते ही सींग हिलाते, पूँछ फटकारते हुए गढ़का के रास्ते की ओर चल पड़े। जैसे ही थोड़ी दूर गाड़ियाँ आगे बढ़ीं कि सनातन ने घोड़े के ऐड़ मारी और तेजपुर की चल पड़ा। वह तेजपुर के फौजदार के दफ्तर की ओर दौड़ रहा था। उसके साथ सीधे मार्ग में चल रहा साक्षा दिखाई दे रहा था।

विष को पीने वाला

शाम होते-होते मैले कपड़ों में सत्यानन्द रामपुर के फौजदार के दफ्तर में पहुँचा। सत्यानन्द बिना किसी को पूछे सीधा कार्यालय में पहुँच गया। फौजदार उस समय आवश्यक कागज़ों पर हस्ताक्षर कर रहा था। वह अपने काम में इतना व्यस्त था कि उसने सिर तक नहीं उठाया तो सत्यानन्द ने ही कहा :

'साहब मैं हाज़िर हूँ।'

उस समय सत्यानन्द को अपने कार्यालय में देखकर फौजदार को बड़ा आश्चर्य हुआ।

'कहिए तुम?'

'क्या करूँ? तुमने इस समय पकड़ा जो दिया है।'

'परन्तु आज तो तुम्हारा विवाह है न?'

'हाँ है।'

'तब फिर?'

'अपना कर्तव्य निभाने आया हूँ।'

'मन तो वहीं बैठा है।'

'पर तो ठीक किन्तु......।'

'तब विवाह नहीं हुआ।'

'विश्वास तो पक्का है। किन्तु आप को जमानतदारों की तलाश करनी पड़े, मैं तुम्हें ऐसी व्यर्थ की विपदा में नहीं डालना चाहता हूँ। मैं स्वयं जमानतदार हूँ।'

'सब निपट जाता।'

'पर जब आया ही हूँ तो सब मैं ही ठीक कर दूँ।'

'तुमने बहुत अन्याय किया।' फौजदार ने आतुरता से कहा। उसके प्रत्येक शब्द से चिन्ता के भाव व्यक्त हो रहे थे।

'क्या हो सकता है? सभी कानून के अनुसार काम करते हैं? इसमें तुम्हारा क्या दोष?'

'क्या बताऊँ भाई पेट के लिए सब कुछ करना पड़ता है। जीवन में जब कई बार ऐसे प्रसंग आते हैं, जिनसे छुटकारा पाना कठिन होता है तो मन में आता है, नौकरी पर लात मार दी जाये। परन्तु अब तो बहुत बीती और थोड़ी रह गई है। अब कोई दूसरा काम कर नहीं सकते।' फौजदार ने अपनी परेशानी बताई।

'साहब कोई बात नहीं। मैं आपका आभारी हूँ कि आपने समय पर मुझे सूचना दे दी।'

'भाई मैं आपके समय पर काम नहीं आ सका, इसका मुझे हार्दिक खेद है।'

'आपने जो कुछ किया है वही क्या कम है?'

'यह तो आपकी महानता है।'

'समजू कहाँ है?'

'मेरे घर है।'

'तब आप इसकी जमानत ले लीजिये!'

'तब आप ही जमानतदार होंगे?'

'क्यों नहीं!'

'स्पष्ट रूप से?'

'इसमें छिपाने की क्या बात है?'

'फौजदार ने जमानत पत्र की सारी सूचनाएँ भरीं और सनातन के हस्ताक्षर करवा लिए। हर प्रकार की खानापूर्ति करके सनातन बोला :

अब आप हमें क्यों कर देर कर रहे हो?'

'कैसे?'

'समजू को हमें दे दीजिए!'

'इस समय कहाँ ले जायेंगे?'

'किसी सुरक्षित स्थान पर!'

'क्या मेरे घर पर आप उसे असुरक्षित समझते हैं ?'

'नहीं !'

'तब !'

'वह तो जंगल में घूमने वाले प्राणी हैं, इनको गाँवों या शहरों में रहना अच्छा नहीं लगता है।'

'आपका यह अच्छा समय बीत जाये अर्थात जब आप विवाह से निपट जायें तब आप समजू को यहाँ से ले जाना।'

'नहीं, साहब इस सा शुभ समय मेरे लिए और नहीं हो सकता है।'

दोनों उठे। तेजपुर के पीढ़ियों से सेठ सनातन को ताल्लुके के बाजार वाले दाँतों तले अँगुली दबाकर देखते रह। जिस सनातन की आज शाम को गढ़का बरात जाने वाली है तथा जिसकी आज भाँवर पड़ने वाली हैं उसे ही बाजार मे ऐसे घूमते देखकर सबको आश्चर्य होना स्वभाविक था। थोड़ी ही देर में पुलिस स्टेशन से कानाफूँसी होते होते सारे बाजार म खबर फैल गई कि सनातन यहाँ समजू की जमानत देने आया है। फिर क्या कर लोक-चर्चा कम रहे! बातों के बवंडर उड़ने लगे। सब तरफ बातें होने लगी 'देखा! इस सनातनसेठ को जो सेठ का तुर्रा लगाकर रौब से चलता था! देखो इसके काले कारनामे! मक्लीगरनी को घर में बैठा रक्खा है। पाप का घड़ा कहीं फूटे बिना रह सकता है! देख लो, अन्त गाजे-बाजे सहित भाँडा तक आया ही। जहाँ एक ओर विवाह का मंडप सजा है, वहीं दूसरी ओर मातम पोशी हो रही है, इसलिए फौजदार ने बुलवाया होगा। सुना तुमने विवाह नहीं हो सकेगा। यह तो अंग्रेजी सरकार के अफसर है! कानून म आन पर अपने पिता को भी नहीं छोड़ते! जब पिता को ही नहीं छोड़ते तो बेचारे सनातन की तो बात ही क्या? यदि ऐसे बुरे काम नहीं किए होते तो क्यों कर ऐसे समय में नाक कटती।

इसी प्रकार की जन-चर्चाओं का बवंडर क्षण भर में चारों ओर फैल गया। जिसको जैसी समझ में आना वैसी-वैसी ही बातें बनाना और सनातन को धिक्कारता।

समजू फौजदार की पत्नी के साथ उसके घर म बैठी थी। उसके मुँह पर इस बात का भारी क्षोभ टपक रहा था कि उसे ताल्लुके में आना ही पड़ा। इसके सिवाय उसे किसी और बात की चिन्ता नहीं थी।

फौजदार की भली पत्नी जिसने आधी उम्र पार कर ली थी तथा दुनियाँ के उतार-चढ़ाव देखे थे वह समजू के मुँह पर आई शोक की गहरी रेखाओं को मिटाने के लिये, उसकी मजबूत पीठ पर हाथ फेर रही थी। समजू ने इस वात्सल्यपूर्ण हाथ के स्पर्श से ऐसा अनुभव किया मानो उसकी माँ ही

बड़े दुलार से उसकी पीठ सहला रही हो। आज से वर्षों पहले उसकी स्वर्गीय माँ इसी प्रकार से उसकी भरावदार पीठ पर बड़े प्रेम से हाथ फेरती थी और वह उसकी गोद में बड़े आराम से सो जाती थी। माँ की याद आते ही उसका गला भर आया। उसकी आँखो में आँसू चमकने लगे। समजू को इस प्रकार से दुःखी होते देख कर फौजदार की पत्नी ने उसे धैर्य देने का प्रयत्न किया वह बोली :

'बेटी ! संसार में तेरे लिए यह कोई नई बात नहीं है। ऐसा तो प्रायः अनेक स्त्रियों के जीवन में होता ही रहता है। तेरे लिए इसमें नवीनता भले ही हो, संसार के लिए इसमें कोई नयापन नहीं।'

'माँ !'

समजू के एक-एक शब्द के कारण फौजदार की पत्नी के हृदय में प्रेम का सोता फूट पड़ा। समजू की आँखों के भीगे कोने से उसका अन्तर करुणा से भर गया।

'बोल, बेटा ! तुझे क्या कहना है.......?'

इससे वह इतनी प्रेमातुर होगयी कि आगे बोलने में. वह गला भर आने से असमर्थ हो गई।

समजू ने अपने नेत्र ऊंचे करके, अकारण ही इतना प्रेम प्रदर्शित करने वाली माता समान फौजदार की पत्नी की ओर देखा। वह इस नजर से मानो उसके हृदय में भरे प्रेम-सागर को नाप रही थी। फौजदार की पत्नी की आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी।

समजू नीची निगाह करके कहने लगी :

'माँ पांव भारी होने का मुझे लेशमात्र दुःख नहीं। किन्तु........मुझे अपनी माँ की याद आगई। आज तुमने भूली बात की याद पुनः दिलवा दी। आज यदि वह जीवित होती तो तुम्हारे ही समान कहती।'

'बेटा, पुरानी बातें याद करने से दुःख होता है। ऐसी बातों को तो भुला देना ही ठीक है।'

'माँ ! तुम तो बड़े घर की बहू हो। आपकी लाज-मर्यादा और प्रतिष्ठा है। मुझ सी दर-दर ठोकर खाने वाली रांड़ को हृदय से प्रेम कर रही हो, यह आपका बड़प्पन है, आपकी महानता है।'

'बेटी, सारी स्त्री जाति एक-सी होती है। भगवान् ने सभी स्त्रियों को शरीर व ममता एक समान दी है।'

'यह तो ठीक।'

'ठीक, तब क्या ?'

'पर माँ मुझे तो आदमियों की नजर काँटों-सी लगती है।'

'बेटी, यह भी पहले जैसा ही मानना है। फिर जिस प्रकार भी मैं सबैव से भी हो सकता है, उसी प्रकार यह अपमान हो जाते हैं। किसी आदमी के साथ सुधारना सम्भव नहीं? साथ मेरा स्वरूप भूल गया इसमें बताई जैसे किला आग भी मानव जीवन में क्रिया बनता ही रहता है। इस प्रकार का स्वरूप भूले भी सब से सामने मान आ जाए और अब स्वरूप न भूले भी आपकी प्रतिष्ठित हो जाये। आपका इतना मैं पर सबकी समझ दूर सकती है। किसी कोई नहीं जो विश्वास गलत हो।'

'तो तुम कैसी बात न करो हो?'

'हाँ, बेटी यह दरिद्रता का संबंध होना ही ठीक है। जैसे आनन्दमयु निरन्तरता आवश्यक है, उसी प्रकार सबको भी जीवन भी आवश्यक है। जीवन पर प्रकाश पहुँचाना भी आवश्यक है तो उसमें कभी भी जानती ही है। दुनियाँ जानती है तो इसे रोज भी यह सिखाना ही है। यह तो आदि काल से चला आ रहा है।'

बाबूजी ने जौहरबाई की बातों को इन सामाजिक बातों से समझ कर आया। थोड़ी देर के लिए यह बड़ी परिस्थिति दूर गई। फिर रात न आज मन प्रश्न करती गई। इस प्रकार अर्थात भावनात्मक किसी न समाज का समाजो गड़बड़ाया।

सुबह ही साथ जौहरबाईजी सामने चार दिखाई दिए। चार पाँच की परिस्थिति समझाया गया।

समाचार का विचार बाबूजी बोले। वह कुछ स्वर से बोली

'पंडितजी आप इस समय नहीं हैं?'

'हाँ।'

'किसलिए?'

'पूछे न जाने के लिए।'

'कहाँ?'

'सुरक्षित स्थान पर।'

'ये तो यही ठीक है।'

'बाबूजी इस संसार में सबकी सब बात नहीं कर सकती है। और यदि बहुत करोगी तो मर जायेगी।'

थोड़ी देर तक बाबूजी समाचार की बात को सोचते रहे और फिर किसी निर्णय पर पहुँचकर बोले, 'जैसा आप उचित समझें करें।'

'तैयार हो जा। आप थोड़ी है सच्चा सुन्दर समय है।'

बीच में जौहरबाई बोली, 'इतने में कभी जल्दी कर रहे हो?'

'नहीं, साहब पहले से इस सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दूँ फिर मुझे'

काम होंगे !'

अनुभवी फौजदार की नजरों से यह बात छिपी नहीं रही कि 'देखा जायेगा' शब्दों में कितनी दृढ़ता है। हमीर बोरिचा के लिए जेलखाने की एक कोठरी खाली रखनी होगी। यह कोई नहीं जानता था कि सनातन कब उच्च अधिकारियों से मिल कर हमीर बोरिचा की गिरफ्तारी के हुक्म ले आये।

समजू ने अपनी मात्र एक जोड़ी कपड़ों की गठरी हाथ में ली। फौजदार के घर में से पाँव बाहर निकलने के पहले उसकी आँखों से अविरल अश्रुधार बह रही थी।

थोड़े से समय के परिचय में समजू ने अनुभव किया कि फौजदार की भली पत्नी उसकी माँ से किसी भी दशा में कम नहीं है। जिस प्यार की अनुभूति उसने अपनी स्वर्गीय माँ रुड़की से की वह प्यार आज उसे पुनः फौजदार की पत्नी से मिला था।

प्रेमगगी समजू को आवेश में देखकर सनातन पहले तो कुछ नहीं बोला। फिर उसके थोड़ा शांत होने पर कहने लगा : 'समजू।'

इतने से—संकेत मात्र से ही समजू मानो सब समझ गई हो। उसने जल्दी से चलने के लिए पाँव उठाए। दोनों जल्दी से फौजदार साहब की गली से बाहर निकले।

सनातन झट से बावली पर सवार हुआ और उसने हाथ का सहारा देकर समजू को अपनी पीठ पीछे बैठा लिया। बावली के मानो पर उग आये। वह हवा से बातें करने लगी। दोनों की सख्त चौकीदारी करता हुआ नाजा भी अपने घोड़े को दौड़ा रहा था।

थोड़ी देर में तीनों प्राणी पर्वतों की श्रेणी में उतर पड़े। घने जंग की नीरव शांति देखकर समजू कहने लगी :

'सेठजी ! ऐसे शुभ समय को छोड़कर आपने किस कारण धक्का खाया ?'

सनातन ने समजू को देखा। उसकी आँखों में इस समय बहु उलाहना देने के भाव स्पष्ट दृष्टिगत हो रहे थे।

'समजू यदि इस समय नहीं आता तो माँ का दूध लज्जित होता।'

'सेठ, आपकी बहुत अच्छी प्रतिष्ठा है, उज्ज्वल घर है···अ क्या मैं तो दर-दर भटकने वाली जाति की हूँ—दर-दर भटक क गुजारने वाली—'

'मेरे जीते जी ?'

'इसमें क्या है ?'

'किस कारण से ?'

'आपकी प्रतिष्ठा बचाने के लिए। मैं इस प्रकार से यहाँ से भाग जाती, मानो मैं तुम्हें जानती ही नहीं।'

'समजू तू कहाँ जाती ?'

'दूसरे देश चली जाती। धरती का लम्बा छोर है। धरती माता का पेट बहुत विशाल है।'

'मुझे दुःख है समजू कि तुमने मुझे नामर्द समझा ?'

'नहीं सेठ, आप ऐसा मत कहो।''''' '''परन्तु सेठ, व्यक्ति वास्तव में प्रतिष्ठा से ही उज्ज्वल गिना जाता है।'

'सुन समजू जो अपने काले कारनामों को छिपाने का प्रयत्न करता है वह प्रतिष्ठा-हीन होता है। इसके विपरीत अपने किए को स्वीकार करने वाला व्यक्ति ही प्रतिष्ठित होता है।'

'सम्भव है, ऐसा तुम्हारी बुद्धि से ठीक हो. पर दुनियाँ इसे ठीक नहीं समझती।'

'मुझे तो अपनी बुद्धि से काम है।'

'दुनियाँ की बुद्धि से नहीं ?'

'नहीं।'

'ऐसा भी क्या सम्भव है। इस सारे क्षेत्र में सेठजी आपकी कितनी ख्याति है। इस सारी प्रतिष्ठा व ख्याति में आज से दाग लग जायेगा और '''''और खेद की बात तो यह है कि वह भी मुझ-सी एक भाग्यहीन स्त्री के कारण ?'

'समजू मैं ऐसा कुछ नहीं मानता हूँ। इस संसार में अमृत के घूँट पीने के समय भी जहर के घूँट पीने की हिम्मत रखनी चाहिए। जिसने जहर पीया है वही जी भी सकता है। जो जहर पीना जानता है, वह जीना भी जानता है।'

'आपकी गहन बातों को मैं समझने में असमर्थ हूँ परन्तु इतना जरूर जानती हूँ कि जो कुछ तुमने किया बुरा किया।'

'समजू यह तो तेरी भूल ही है।'

'मैं दूसरी बात तो नहीं जानती परन्तु इतना अवश्य जानती हूँ कि इस समय आपका रहस्य खुला, यह अच्छा नहीं हुआ।'

'अब क्या एक ही बात का ढिंढोरा ही पीटती रहेगी ? कोई दूसरी बात भी तुझे आती है ?'

'नहीं सेठजी !'

'तब चुप रह !'

'पर चुप भी नहीं रहा जा सकता है।'

बावली रास्ता तय करती जा रही थी। उसका सवार बराबर उसे एड़ी मारकर यह सूचना कर रहा था, जात्रुड़ा को एक ओर रखकर, इसकी सीमा लांघ, घ्रासवेल के स्थान पर दो खेत छोड़कर, गढ़का में ठीक तोरण के समय पहुँच ही जाना है।

थोड़ी देर चुप रह कर छानबीन करने के प्रयोजन से सनातन ने समजू से पूछा :

'दिल में कमजोरी तो नहीं आरही है?'

'अरे सेठजी! आप भी कैसी भोली बातें करते हैं? यदि ऐसा होता तो मैं फौजदार के हाथों में पड़ने से पहले ही मर गई होती। तालुके में थाने की मजबूत सीढ़ियां चढ़ कर और तुम्हारा गुप्त रहस्य खुल जाने पर यदि अब मैं नतमस्तक होऊं तो सेठजी मेरा तुम्हारे आश्रय में रहना न रहना एक-सा है।

'शाबाश।'

'सेठजी पुरुषत्व तो आज आपका निखरा है। वास्तव में धन्य तो आपकी जाति को है।'

'जाति को।'

'धन्य है आपकी माँ जिसने आपसा पुत्र पैदा किया।'

'नहीं, समजू! शरीर के इस पाप को नौ-नौ महीने तक लिए फिरना यह आसान बात नहीं है।'

'पर सेठजी, स्त्री इस संसार में पैदा ही इसीलिए है।'

'पर इस प्रकार से नहीं।'

घोड़े अब तक जात्रुड़ा की सीमा लांघ चुके थे। सामने ही घ्रासवेल के स्थान का श्वेत झण्डा लहरा रहा था। बात करते-करते यकायक सनातन की नजर आकाश में लहराते ध्वज पर पड़ी और उसने बात समाप्त कर दी। समजू ने इसी बीच सनातन से दो तीन प्रश्न किए परन्तु गहरे विचारों में डूबा हुआ सनातन उसके प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दे सका। कई बार जब सनातन किन्हीं गहरे विचारों में तल्लीन हो जाता था तो उसे आसपास के वातावरण तक का ध्यान नहीं रहता था। इस समय वह अपने मन से बात करता रहता था। समजू को कई रात्रियों में इस प्रकार का अनुभव हुआ था। अतः समजू ने झट से चुप्पी साध ली।

धरती को चीरती एक प्रवाह से बह रही मीणसार नदी का किनारा दृष्टिगत हुआ और नदी के सामने के किनारे से दो रास्ते निकले। एक रास्ता घ्रासवेल को जाता था तथा दूसरा गढ़का को। उसने अब घोड़े की लगाम

खँची क्योंकि उसे लाखा से बात करनी थी। लाखा पीछे आरहा था।

दो ही क्षण बीते कि लाखा सनातन के पास आ पहुँचा। सनातन ने लाखा से कहा : 'तू रात ही रात समजू को घ्रासवेला पहुँचाकर गढका चले आना।'

'घ्रासवेल ?' धर्मस्थान में समजू को छोड़ आने का आदेश सुनकर लाखा को बहुत आश्चर्य हुआ।

'हाँ।'

'किन्तु···'

लाखा इससे अधिक नहीं बोल पाया। सनातन उसकी परेशानी को अब तक समझ गया।

तू महंतजी से कहना कि यह सनातनसेठ की धरोहर है और आपको इसकी सुरक्षा करनी है।'

'क्या वे इस बात को मान लेंगे ?'

'तू तो मेरा नाम लेना। मेरा नाम सुनकर वे बन्द दरवाजे खोल देंगे और दुनियाँ की वक्र दृष्टि न पड़े ऐसी व्यवस्था कर देंगे। इससे ज्यादा क्या करना है! तब अब तू चल दे। मुझे भी समय पर अपने स्थान पर पहुँचना है। यदि अभी नहीं चल पड़ूँ तो देर होना संभव है, और यह बुरी बात होगी।

'ठीक। तब राम राम !' कहकर लाखा घ्रासवेल की ओर समजू को लेकर चल पड़ा। इस समय वह रास्ते में सोचता जा रहा था कि इस संसार में खुलेआम जहर पीने वाले सनातनसेठ की वज्र-सी छाती को धन्य है !

'पर चुप भी नहीं रहा जा सकता है।'

बावली रास्ता तय करती जा रही थी। उसका सवार बराबर उसे एड़ी मारकर यह सूचना कर रहा था, जात्रुड़ा को एक ओर रखकर, इसकी सीमा लांघ, ब्रासवेल के स्थान पर दो खेत छोड़कर, गढ़का में ठीक तोरण के समय पहुँच ही जाना है।

थोड़ी देर चुप रह कर छानबीन करने के प्रयोजन से सनातन ने समजू से पूछा :

'दिल में कमजोरी तो नहीं आरही है ?'

'अरे सेठजी ! आप भी कैसी भोली बातें करते हैं ? यदि ऐसा होता तो मैं फौजदार के हाथों में पड़ने से पहले ही मर गई होती। ताल्लुके में थाने की मजबूत सीढ़ियां चढ़ कर और तुम्हारा गुप्त रहस्य खुल जाने पर यदि अब मैं नतमस्तक होऊँ तो सेठजी मेरा तुम्हारे आश्रय में रहना न रहना एक-सा है।

'शाबाश।'

'सेठजी पुरुषत्व तो आज आपका निखरा है। वास्तव में धन्य तो आपकी जाति को है।'

'जाति को।'

'धन्य है आपकी माँ जिसने आपसा पुत्र पैदा किया।'

'नहीं, समजू ! शरीर के इस पाप को नौ-नौ महीने तक लिए फिरना यह आसान बात नहीं है।'

'पर सेठजी, स्त्री इस संसार में पैदा ही इसीलिए है।'

'पर इस प्रकार से नहीं।'

घोड़े अब तक जात्रुड़ा की सीमा लाँघ चुके थे। सामने ही ब्रासवेल के स्थान का श्वेत भण्डा लहरा रहा था। बात करते-करते यकायक सनातन की नजर आकाश में लहराते ध्वज पर पड़ी और उसने बात समाप्त कर दी। समजू ने इसी बीच सनातन से दो तीन प्रश्न किए परन्तु गहरे विचारों में डूबा हुआ सनातन उसके प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दे सका। कई बार जब सनातन किन्हीं गहरे विचारों में लवलीन हो जाता था तो उसे आसपास के वातावरण तक का ध्यान नहीं रहता था। उस समय वह अपने मन से बात करता रहता था। समजू को कई रात्रियों में इस प्रकार का अनुभव हुआ था। अतः समजू ने झट से चुप्पी साध ली।

धरती को चीरती एक प्रवाह से बह रही मीणसार नदी का किनारा दृष्टिगत हुआ और नदी के सामने के किनारे से दो रास्ते निकले। एक रास्ता ब्रासवेल को जाता था तथा दूसरा गढ़का को। उसने अब घोड़े की लगाम

खेंची क्योंकि उसे लाखा से बात करनी थी । लाखा पीछे आरहा था ।

दो ही क्षण बीते कि लाखा सनातन के पास आ पहुँचा। सनातन ने लाखा से कहा : 'तू रात ही रात समजू को धासवेला पहुँचाकर गढ़का चले आना ।'

'धासवेल ?' धर्मस्थान में समजू को छोड आने का आदेश सुनकर लाखा को बहुत आश्चर्य हुआ ।

'हाँ ।'

'किन्तु' ''

लाखा इससे अधिक नहीं बोल पाया । सनातन उसकी परेशानी को अब तक समझ गया ।

तू महंतजी से कहना कि यह सनातनसेठ की धरोहर है और आपको इसकी सुरक्षा करनी है ।'

'क्या वे इस बात को मान लेंगे ?'

'तू तो मेरा नाम लेना । मेरा नाम सुनकर वे बन्द दरवाजे खोल देंगे और दुनियाँ की वक्र दृष्टि न पड़े ऐसी व्यवस्था कर देंगे । इससे ज्यादा क्या करना है! तब अब तू चल दे । मुझे भी समय पर अपने स्थान पर पहुँचना है । यदि अभी नहीं चल पड़ूँ तो देर होना संभव है, और यह बुरी बात होगी ।

'ठीक । तब राम राम !' कहकर लाखा धासवेल की ओर समजू को लेकर चल पड़ा । इस समय वह रास्ते में सोचता जा रहा था कि इस संसार में खुलेआम जहर पीने वाले सनातनसेठ की वज्र-सी छाती को धन्य है ।

घासवेला की गोद में

घासवेला का स्थान एक धार्मिक स्थान था। यहाँ यात्री प्रायः आते रहते थे। दुखियों के लिए यह स्थान एक विश्राम का स्थान था। इस स्थान पर भूखों को भोजन और अभागों को सहारा मिलता था। वर्तमान महंत श्री रत्नगिरि के पद-ग्रहण करने के बाद तो बम्बई तक के यात्री यहाँ यात्रा करने आते थे। यह स्थान बहुत प्रसिद्ध था। स्थान की आमदनी काफ़ी होने से स्थान भी बहुत बड़ा था। इसी कारण बम्बई के कई बड़े सेठों को अपनी धर्मादे की रकम इस स्थान पर भिजवाने की उत्कंठा होती थी। ये सेठ लोग मुक्त हस्त व दिल से इस स्थान की प्रायः मदद करते थे। यहाँ कई गाड़ियां नाज आता था। गुप्तदान करने वालों की कोई कमी नहीं थी। गुप्तदान करने वाले व्यक्तियों से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ दान में प्राप्त होती रहती थीं। अनाज की भरी गाड़ी वालों से जब नाज भेजने वाले का पता-ठिकाना पूछते तो प्रायः वे कहते, हमें नाम जानने से कोई मतलब नहीं और न हम उसका नाम ही जानते हैं, हमें तो सिर्फ़ अपने किराये से मतलब रहता है।

मन्दिर के चारों ओर एक विशाल परकोटा था। परकोटे में एक बड़ा दरवाजा था। इस पौरी के दरवाजे के दोनों ओर कमरे थे, जिनमें यात्री ठहरते थे। एक कमरे में महंतजी की गद्दी थी। इस गद्दी के पास भस्म का ढेर पड़ा

रहता था। मंदिर मे भगवान् शकर के दर्शन करके जब भावुक यात्री महतजी का प्रणाम करते तो उस समय महतजी श्रद्धालु भक्तो को भभूति का प्रसाद और आशीर्वाद देते। इस स्थान पर गरीब-अमीर का कोई भेद-भाव नही था। सबको मानवता की नजर से देखा जाता था। दोपहर को जब भगवान् शिव के प्रसाद का वितरण होता था तो सब एक ही पक्ति मे बैठते थे। यहाँ जाति-पाँति का कोई भेद-भाव नही था। इस स्थान की सबसे बडी विशेषता यह थी कि उस समय मे जबकि धनिकवर्ग निम्न श्रेणी के व्यक्तियो को रौंदना चाहता था उस समय मे भी इस स्थान पर किसी प्रकार का भेद-भाव नही था आने वाले सभी श्रद्धालु भक्त यहाँ पर बिना किसी प्रकार के धर्म, जाति व सम्प्रदाय के भेद-भाव, एक स्थान पर, एक ही पक्ति म बैठकर भोजन कर सकते थे।

स्थान के सामने ही कई कमरे यात्रियो के ठहरने के लिये थे। इन कमरो मे गद्दे-लिहाफ आदि की पूर्ण व्यवस्था थी। जिससे यात्रियो को दो-तीन दिन यहाँ रुकने मे किसी प्रकार की परेशानी न हो।

स्थान को देखन मात्र से ही हृदय मे शाति मिले ऐसे इस स्थान पर रहने का स्वत. ही मन होता था। इसलिए मन्दिर के प्रागण म प्रतिदिन दो-तीन गाडियाँ आती ही रहती थी।

बैलो के लिए स्थान पर घास खिलाने की भी पूर्ण व्यवस्था थी। वर्षा ऋतु मे किसान मीणसार नदी के किनारे के हरे कुजो मे बैल छोड देते थे। इन चरागाहो मे घास की कोई कमी नही थी। परन्तु गर्मी मे तो बैलो को नियत स्थान से ही चारा दिया जाता था।

मीणसार नदी अपनी मदभरी मस्ती से इस स्थान के चारो ओर चक्कर लगाकर बहती थी। इससे स्थान के सौन्दर्य में चार चाँद लग जाते थे। चारो ओर पर्वत माला व घने वृक्षो से घिरा यह स्थान कई पशु-पक्षी और अन्य जानवरो के लिए एक आश्रय-स्थान-सा था। दीपाडे से लेकर मोरला तक के प्राणी इस स्थान पर बडे होते थे।

इस सारे धार्मिक स्थान मे किसी प्रकार का शिकार करने की कडी मनाही थी। महत रत्नगिरि के गुरू के समय मे तो यदाकदा कोई ऐसी हिमाकत कर भी लेता था, किन्तु जबसे रत्नगिरि ने महत-पद सभाला तब से ऐसा साहस कोई नही कर सका। रत्नगिरि एक सेवा-भावी व्यक्ति थे। उन्होने सेवा-भावना की साधना की थी। इसी कारण वे महत हैं। गद्दी से चिपके रहना चाहिए, ऐसी भावना उन्होने दिल से निकाल दी थी। अपनी सेवा-भावना का उन्होने महत-पद पाने पर भी गुमान नही किया था। वे सदा मौका देखकर सबकी सेवा करते रहते थे। महतजी की एक गोशाला थी, जिसमे लगभग दो सौ गाएँ थी। महत रत्नगिरि को इन गायो से अत्यन्त प्रेम था। वे प्रत्येक

गाय को पुचकारते, हाथ फेरते, घास चराते तथा बीमार होने पर उसकी खूब सेवा करते थे। श्रद्धालु भक्त सदा उनको ऐसा करने से रोकते परन्तु वे कभी अपने आग्रह से नहीं टलते। वे सदा अपने आग्रह पर अडिग रहते। इस प्रकार के अडिग आग्रह के कारण श्रद्धालु भक्तों ने आग्रह करना भी बन्द कर दिया। महंत ने अपने कार्यक्रम में कभी किसी प्रकार की शिथिलता नहीं बरती। उनकी यह मान्यता दृढ़ थी कि तप करने से या सेवा करने से निश्चय ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। सेवा करवाने से किसी भी व्यक्ति का कल्याण होना सम्भव नहीं है।

सरकारी अधिकारी तथा एजेंसी के कार्यकर्ता भी इस स्थान पर मौज करने तथा प्रकृति का सौन्दर्य लूटने दो-चार दिन के लिए यहाँ आया करते थे। इस स्थान पर आकर ये कार्यकर्ता आराम से रहते और खूब खाते-पीते थे। महंत रत्नगिरि अति उग्र स्वभाव के व्यक्ति थे अतः उनकी इस प्रकार के कार्यकर्ताओं से प्रायः अनबन ही रहती थी। तदुपरान्त इन अधिकारियों को तो आराम से मतलब था। सभी प्रकार का आराम उनको मिलता रहता और इसी कारण वे भी प्रायः महंतजी से ज्यादा मेल-मिलाप में विश्वास नहीं करते थे और महंतजी भी अधिकारियों को ज्यादा कहने-सुनते नहीं थे। दफेदार से लेकर थानेदार तक महीने या पन्द्रह दिन में एक बार यहाँ आकर मेहमानदारी करवाने में नहीं हिचकिचाते थे।

नाटे कद के महंतजी कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति नहीं थे परन्तु उनका सा-मुक्त हृदय व्यक्ति इस संसार में मिलना सम्भव नहीं था। शीशम के सदृश्य काले रंग के महंतजी सामान्य साधू से लगते थे। सदा ही आठों-पहर गांजे की चिलम पीते रहने से महंतजी की लाल सुर्ख आंखों से अमृत छलकता रहता था। दासों के ये दास थे तो स्वामियों के ये स्वामी थे। उग्र स्वभाव वाले व्यक्ति के साथ ये अति उग्र हो जाते। महंतजी की यह सबसे बड़ी विशेषता थी।

महंतजी आसवेला के धार्मिक स्थान पर आने के पीछे की एक लघु कथा थी।

महंतजी कारड़िया राजपूत घराने से संबन्धित थे। परन्तु पिता की एक छोटी-सी भूल के कारण इनको जीवन भर आसवेला की सेवा करने में तल्लीन होना पड़ा। आसवेला की सेवा करने का भाव उनके रोम-रोम में भरा हुआ था तथा यह बात उन्होंने अपने व्यवहार में भी उतार ली थी।

बात कोई महत्वपूर्ण नहीं थी किन्तु संसार में कुछ व्यक्ति ऐसे अवश्य होते हैं जो बड़े धुनी होते हैं और अपनी सोची बात पूरी करके ही चैन पाते हैं ऐसी ही कोई बात इनमें थी।

रत्नगिरि का मूलनिवास स्थान जावुड़ा था। गांव में इनके पिता

चौकीदार थे। पद तो मात्र चौकीदार का था किन्तु वैसे मूलत एजेंसी के नौकर थे। फिर इनकी शक्ति का क्या कहना था। एजेंसी के इस समय के मुखिया का मतलब होता था, गाँव का स्वामी तथा जागीरदार से अभिप्राय, अभद्र मानव। इन लोगो के इशारा पर गाँव कठपुतली की भाँति नाचता रहता था।

ऐसे समय मे भी घ्रासवेरा का धार्मिक स्थान प्रसिद्ध तो था, किन्तु आज-सा नही। फिर भी इस धार्मिक स्थान को सभी भगवान् के पावन धाम की भाँति मानते थे।

रत्नगिरि के पिता को सरकार की ओर से एक जामगी बन्दूक मिली हुई थी। इससे वे बडे बावले रहते थे? कन्धे पर जामगी लटकाये हुए वे घने जगलो मे घूमते। रौब तो मानो उनमे फूटता रहता था।

रत्नगिरि की माँ बडी ही सरल और सौम्य प्रकृति की स्त्री थी परन्तु इस प्रकार की स्त्री की घर मे कौन पूछ करे? वह सदा ही सोचा करती थी कि मद मे भरा राजपूत, कधे पर जामगी लटकाये फिरते रहने के कारण, किसी दिन किसी से झगडा अवश्य कर बैठेगा और इसीलिए वह समय-समय पर अपने पति को बराबर टोकती रहती थी। फिर भी मानसिक भय के अनुसार यह राजपूत एक दिन एक अनहोनी काम करके ही लौटा।

शाम का समय था। सूर्य पश्चिम की ओर बढ रहा था। सध्या अपना सुन्दर रग बिखेर कर चारो ओर फैल रही थी। पश्चिम का नभ-मण्डल सदेश दे रहा था कि इस सध्या के साथ ही-साथ रात्रि आ रही है। सारा वातावरण बडा ही मन-भावन और उत्साहप्रद था।

ऐसे समय मे राजपूत घ्रासवेला के गहन-कुज मे घुसा। उसके हाथ चलायमान हुए और मन-ही-मन जामगी का एक भडाका करने का मन हुआ। उसने जामगी को कधे से उतारा। हमाम चाम से दारू का डिब्बा निकाला। चार अगुल दारू भर कर उसने दारू को भलीप्रकार गज से जमाया और बरगद के घने वृक्ष मे छिपकर बैठे एक मोर को इसका निशाना बनाकर बन्दूक दाग दी। मात्र एक भडाके से मोर निर्जीव होकर झट से वृक्ष के नीचे आ पडा। सारा वन पक्षियों की भयकर चीत्कार से गूँज उठा। दूसरे ही क्षण राजपूत ने पखो समेत निर्जीव मोर को समेट कर अपने हमाम चाम मे रखा और गाँव का रास्ता लिया। घर आते ही हमाम-चाम से खून की बूँदें गिरती देखकर घरवाली ने बडे आश्चर्य से पूछा

'इसमे क्या है?'

'शिकार।'

'किसका?'

'मोर का।'

'राजपूत वीर तुमने यह अच्छा काम नहीं किया।'

'इसमें क्या बुरा काम हुआ?'

'मोर का शिकार नहीं किया जाता है।'

'किसने कहा?'

'हमारे धार्मिक ग्रंथ कहते हैं।'

'कहते रहें।'

'मात्र कहते रहने से क्या? सात जन्म में भी इससे छुटकारा नहीं मिल सकता है। यह तो भगवान् का मोर था।'

सारे घर वाले इस दिन बड़े दुःखी रहे। उनका मन बहुत दुःखी रहा। उनका मानसिक क्लेश अकथनीय व अवर्णनीय था। जैसे ही राजपूत मोर का शिकार करके घर में घुसा वह अपनी घरवाली की असह्य वेदना को बराबर समझ रहा था। किन्तु अब जो कुछ हो गया वह अनहोना नहीं हो सकता था। अतः उसने स्वयं ही अपने शिकार को बनाकर खाने का निश्चय किया और इसके लिए वह रसोईघर में घुसा।

राजपूत की पत्नी यह सब नहीं देख सकी। वह रसोईघर में आई और पति को संबोधन करके बड़ी चिन्तित स्वर में बोली:

'क्या तुम इसको खाओगे ही, नहीं मानोगे?'

'अरी पगली यह तो शिकार है।'

'राजपूत तुम भूल रहे हो कि यह देव-पक्षी है। भला इसी में है कि तुम इसको जहां से लाए हो वहीं ले जाकर छोड़ दो तथा अपने किए का महंत-जी के पांव पड़ कर पछतावा करो।'

'यह सम्भव नहीं है।'

'तब फिर पछताओगे।'

'अरी पगली अब तू जरा नीचे बैठ!'

अब राजपूत का मिजाज गर्म हो गया। फिर भी उसकी पत्नी ने उससे विनय करने में कोई कसर नहीं रक्खी। राजपूत ने बड़े शौक से मोर को बनाकर खाया और आराम से सो गया। वह इतनी गहरी नींद सोया कि उसे यह भान नहीं रहा कि प्रातःकाल कब हो गया।

जैसे ही वह सोकर उठा उसने देखा कि उसके शरीर में भयंकर कोढ़ निकल आया है। राजपूत का एक ही रात में ऐसा रूप हो गया कि देखते ही आदमी घृणा से मुँह फेर ले।

रात में खाया हुआ मोर उसके रोम-रोम से फूट निकला था। वह बड़ा पश्चाताप करने लगा। पर अब क्या हो सकता था! उसने अपनी स्त्री

की ओर कातर दृष्टि से देखा —स्त्री की दृष्टि में लाचारी का भाव बराबर दृष्टिगत होता था। अपने पति की करुणाजनक स्थिति देखकर उसकी आंखों से आँसू की धारा बहने लगी।

'राजपूतिन ! इसका क्या अब भी कोई उपाय हो सकता है ?'

'अब क्या उपाय हो सकता है। जिस समय कहा, उस समय कहना नही माना, अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत ?'

'पर कोई उपाय तो होगा।'

'स्थान मे चाकर बनकर रहो।'

'यह कैसे हो सकता है।'

'पाप धोने के लिए घमण्ड को छोड़ना पड़ता है।'

'पर इस उम्र मे काम करना सम्भव नही दिखाई देता है, नही तो ऐसा भी कर लूं।'

'क्या तुम इस बात के लिए तैयार हो ?'

'हाँ, किन्तु.......'

'तैयार तो हो न ?'

'हाँ, हूँ।'

'तब फिर एक बात बताऊँ, मानोगे ?'

'मानूँगा, बापू मानूँगा।'

'जिस स्थान पर मोर का शिकार किया उस स्थान पर मस्तिष्क के स्थान पर मस्तिष्क देना।'

'पर मस्तक कहाँ है ?'

'भगवान कृपा करेंगे।'

'तब मुझे मंजूर है।'

'भगवान् जब भी लल्ला दे, स्थान पर देना होगा, उस समय 'ना' मत कर देना।'

'दिया।'

समय बीता और राजपूत के घर बालक उत्पन्न हुआ। दूसरी ओर राजपूत का कोढ भी ठीक हो गया। दोनो बातें एक साथ पूरी हुई।

जैसे ही रतन पाँच साल का हुआ। राजपूतनी ने उसे कंधे पर उठाया और घासवेला की ओर चल पड़ी। राजपूत ने उसे ऐसा करते देखकर टोका :

'कहाँ जा रही है ?'

'धरोहर देने को।'

'कहाँ।'

'क्यों, भूल गए ? आज से पाँच साल पहले वचन दिया था न कि—'दिया' ।'

यह सुनकर राजपूत चुप हो गया ।

'स्वयं माँ ने रतन को महंत के चरणों में डाल दिया ।'

लड़के को चरणों में डाल कर वह एक ओर खड़ी हो गई । उससे महंत ने पूछा :

'क्या चाहिए, बेटी जल्दी से बता दे ?'

'बापू आज मैं माँगने नहीं देने आई हूँ ।'

'क्या ?'

'यह लड़का ।'

'कहीं लड़के का भी दान किया जाता है ?'

'मैं दान नहीं दे रही हूँ, बापू !

'तब ?'

'इस शरीर का पाप उतारने को…।'

'ऐसा पाप किसने किया ?'

'इसके पिताजी ने !'

'पर बेटी तुझे मालूम होना चाहिए कि यहाँ तो तेरा लड़का साधू बनकर रहेगा !'

'बापू, जैसी आपकी इच्छा हो वैसे रक्खो ।'

और महंत ने पाँच वर्ष के स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट रतन पर प्रेम से हाथ फेरा । उसकी माँ की आँखों के कोने गीले हो गए ।

उसी दिन से रतन ने बड़ी लगन से इस स्थान की सेवा शुरू कर दी । गायों को चराने ले जाने से लेकर महंतबापू की गाँजे की चिलम भरने तक की, सभी प्रकार की सेवाओं में रतन जुट पड़ा । आश्रम की सेवा करने की भावना उसके रग-रग में भर गई ।

इस प्रकार की सतत सेवा से प्रसन्न होकर महंत ने उसे अपना चेला बनाया । रतन में एक अनोखा तेज दृष्टिगत होता था ।

इस समय से महंत ने मन्दिर की सेवा का भार अपने कंधों से उतार दिया था । तीन साल बाद महंतजी परमलोक पहुँच गए और गद्दी का उत्तराधिकारी रतन बन गया । इस प्रसंग को आज पाँच वर्ष बीत गए थे । परन्तु इन पाँच सालों में महंत रतनगिरि ने इस स्थान का नाम बम्बई तक प्रसिद्ध कर दिया था । आश्रम की कीर्ति बम्बई तक थी । बम्बई के धनाढ्य व्यक्ति इस स्थान से परिचित थे ।

जिस समय लाला भारी पैर वाली ममजू को लेकर दरवाजे में घुसा

उस समय महंत रत्नगिरि गौशाला में एक गाय के पास बैठे हुए उसकी चिच-डियाँ को तोड़ कर एक राख की परात में डाल रहे थे।

लाला ने महंतजी को प्रणाम किया और सनातनसेठ की कही बात विस्तारपूर्वक कह दी। थोड़ी देर वे गहन विचारों में डूब गए। वे फिर बोले :

'इस लड़की को उस कोने वाले कमरे में छोड़ दो। सेठ को कहना कि किसी प्रकार की चिन्ता न करें। वरद् हस्त फैलाए भगवान् सबकी रक्षा करने वाला है। संसार की माया में ऐसे ही चलता रहता है।'

लाला समजू को घासवेला के आश्रम में छोड़कर तेजी से मठका की ओर चल पड़ा। उस समय सन्ध्या हो चुकी थी।

•

नाचे मन का मोर

संध्या आकाश-अटारी से मुक्त हस्त चारों ओर कुंकुम बिखेर रही थी। शीतल, मंद समीर ने सारा वातावरण आल्हादित हो रहा था। भगवान् के मंदिर में जैसे ही घंटनाद हुआ कि सनातन ने इस शुभ मुहूर्त में रसीला के साथ गणेश स्थापना वाले कमरे में पांव रक्खा।

पिता के मनोभावों को कुचलकर रसीला ने तेजपुर विवाह करने का निश्चय किया था। इसका दुःख उनको होना स्वाभाविक था, जबकि दूसरी ओर रसीला बहुत प्रसन्न थी। उनके हृदय की उमंग अवर्णनीय थी। बम्बई की शान-शौकत से किंचित्मात्र भी तेजपुर रियासत की शान-शौकत कम नहीं थी। बम्बई के 'दोसी-सदन' के समान ही तेजपुर के इस पक्के चूने के मकान में सभी प्रकार के साधन व सुभीते उपलब्ध थे। जो बम्बई में था वही तेजपुर में था। अपने लम्बे घूँघट में-से ही रसीला ने यह सब व्यवस्था भलीप्रकार देख ली थी। बम्बई में मात्र एक घाटी जाति का आदमी कहना मानने वाला था जबकि तेजपुर में इस प्रकार के आदमियों की भरमार थी। ये सब आदमी एक प्रकार से हुक्म के गुलाम से थे।

वर-वधू गणेश-मूर्ति के सामने बैठे—जीवन में मंगलमय सफलता प्राप्त करने का आशीर्वाद प्राप्त करने को। पंडित ने पूजा करवाई और स्त्रियां मंग

में कोडी-केडा का खेल देखने लगी।

किस की विजय होती है और कौन पराजित होता है, इस बात में स्त्रियों की बहुत रस था। स्त्रियाँ उससे यह तय करनी थी कि घर में किसकी बात ज्यादा चलेगी।

एक बडी परात में पानी और कुंकुम मिलाया गया। इस गुलाबी रंग के पानी में एक सोने का छल्ला व कौडियाँ डाली गई। रसीला की पाखुडियो-सी कोमल अँगुलियो से और सनातन की अँगुलियो से स्पर्द्धा होने लगी। कुंकुम के पानी से दोनों के हाथ रँग गए। थोडी ही देर में रसीला ने पानी से छल्ला ढूँढ लिया और उसे अपनी अँगुली में पहन लिया।

सारी स्त्रियाँ एक साथ कहने लगी :

'भाई, तुम्हारी घर में नही चलेगी।'

'चलो यह ठीक रहा, मेरे सिर से भार तो हल्का हुआ।'

'यह तो बिना कहे भी होता! हार गए तो ऐसा कहने लगे।'

और सनातन के ओठो पर एक उमंग भरी मुस्कराहट आगई।

पूजा के कमरे से निकलकर दोनों ने ओतम-माँ को मस्तक नवाया और अलग-अलग हो गए। सनातन ने अपने ऊपर के कमरे में जाकर विवाह के कपडे उतारे और रोज पहनने के कपडे, धोती-कमीज पहिन लिए। सिर पर साफा बाँधने का आदी न होने के कारण उसका सिर भारी हो गया था। उसने साफा एक ओर रख दिया। साफा उतारकर जब वह बैठा तो उसने ऐसी शांति अनुभव की मानो कोई बंधन-युक्त व्यक्ति बन्धन-हीन होने पर शांति अनुभव करता हो। कपडे बदलकर वह नीचे आया, नीचे आकर वह व्यक्तियों के झुण्ड में बैठ गया।

रसीला का घण्टो से लिया हुआ घूँघट स्त्रियो ने खुला कर दिया। स्त्रियाँ अपनी बहू का मुँह देखने को अधीर हो रही थी। जैसे ही घूँघट हटा उन्होंने रसीला का मोहक व सलोना मुँह देखा। सबके हृदय में बडी शांति आई कि घर के आँगन की शोभा बढाए, ऐसी बहू घर मे आई है।

ओतम-माँ ने शांति का श्वास लिया। वह घर का सारा भार अब बहू पर डालकर भगवान् का भजन करने की सोच रही थी। धीरे-धीरे गाँव की सभी स्त्रियाँ चली गई तो ओतम-माँ ने रसीला को पास बुलाया। अपने पास बैठाकर उसकी पीठ पर प्यार से हाथ फेरते हुए वह कहने लगी :

'बेटा! अब मुझे छुट्टी दे।'

'नही, माँ! ऐसे, एकदम मुझ पर भार डालने से काम नही चल सकता है।'

मैं तो अभी बच्ची ही हूँ। मुझ में अक्ल ही कितनी है ! अभी तुम्हें नजर रखनी ही होगी। हमसे तो बात-बात में भूल होना स्वभाविक है।'

'बेटी ! तुम तो स्वयं बुद्धिमान् हो, दूसरों को शिक्षा दे सकती हो।'

'ऐसा किसने कहा माँ ?'

'बेटा, ! कहावत है कि पुत्र के पाँव पालने में दिखाई दे जाते हैं तथा बहू के पाँव घर में आने से दिखाई दे देते हैं। आज मुझे बहुत शांति है। बेटी तेरे दादी-श्वसुर ने यह सम्बन्ध बहुत सोच समझकर किया था। इसमें मैं क्या कुछ कह सकती हूँ। वे तो इस सुखद प्रसंग को देखने को जीवित नहीं रहे, परन्तु मेरे भाग्य में यह सुख होगा तो बेटी मैं तुझे बराबर देखती ही रहूँगी। तदुपरान्त मौत को किसी की रोकने की ताकत नहीं है।' कहते हुए झेवरसेठ की स्मृति आते ही ओतम-माँ की बैठी हुई आँखों के कोने गीले हो गए। अपनी साड़ी के पल्ले से आँसुओं को पोंछकर वह बोली : 'बेटा ! अब मैं ज्यादा दिन नहीं जीने वाली हूँ। मेरी अवस्था पक चुकी है। मैं तो पेड़ के पके पत्ते-सी हूँ।'

'माँ ऐसा मत कहो। अभी तो मैं आपकी सेवा करने को बैठी हूँ।'

'भगवान् तुम्हें दीर्घायु करे। चल तुझे घर की सारी वस्तुओं से अवगत करा दूँ, जिससे तुझको मुझसे बार-बार न पूछना पड़े।' ओतम-माँ की बात सुनकर रसीला खड़ी हुई और वात्सल्यता का प्रपात बहाती हुई, ओतम-माँ के पीछे-पीछे वह चलने लगी।

कमरा लाँघकर दोनों भैंसों के बाड़े में पहुँचीं। पीछे की ओर एक साथ पच्चीस भैंसें बाँधी जा सके इतना बड़ा बाड़ा था। उसमें हथनियों-सी दस भैंसें बँधी हुई थीं। प्रत्येक भैंस को बाँधने के लिए अलग-अलग स्थान था। प्रत्येक भैंस को बाँधने के लिये लकड़ी के खम्भों से अलग-अलग स्थान बनाये गए थे। सारा बाड़ा बहुत ही साफ था। भैंसें स्वस्थ और मस्त थीं।

'बहू ! एक समय में ये भैंसे आधा मन दूध देती हैं। दूध निकालने के लिये अलग से ग्वाला आता है। ग्वाला इन भैंसों की सेवा अपने पुत्र के समान करता है। रात में इनको घास डालने को उठता है, सुबह इनको जंगल में चराने ले जाता है तथा दोपहर में वह इनको नहलाता है।'

रसीला ऐसी भैंसें देखकर तथा उनके पालने-पोसने की बात सुनकर आश्चर्य में डूब गई। साथ-ही-साथ उसे बड़ा आनन्द हुआ।

ओतम-माँ फिर से आगे बढ़ी और कहने लगी :

'देखो, यह बावली है,' कहते हुए ओतम-माँ ने पोली के एक कोने में बनी बावली बताई।

रसीला बावली को देखने लगी। आज उसको बावली में एक अनोखा

तेज दिखाई दिया। यह वही बावली थी जिस पर सवारी करके सनातन मढ़का से उसे लेने आया था। परन्तु उस समय जैसे बल्ब के सामने दीपक की रोशनी मंद प्रतीत होती है, वैसे ही उसे भी बावली का तेज सनातन के सामने फीका लगा।

'बहू ! बेटा ''' '' फिर से ओतम-माँ ने मधुरता से रसीला को आवाज दी।

'यह बावली तो अपने घर का नजराना है। जब यह बछेरी थी तब ही से तेरे दादी-श्वसुर ने इसे घी की नालें पिला-पिला कर इसकी हड्डियाँ मजबूत की हैं। हमने भी आकर सदा अपना कर्त्तव्य पूरा किया है। इस सारे क्षेत्र मे इस जैसी घोडी कही नही मिल सकती है।'

अपने सामने दो स्त्रियो को खडा देखकर व इस पर भी अपनी प्रशसा सुनकर मानो फूलकर कुप्पा हुई बावली ने अपने कान उठाए। गर्दन ऊँची की तथा दोनों की ओर देखकर चुपचाप खडी रह गई।

विवाह के समय मे बावली को गुलाबी रग से रँगा गया था। पर अब वह बिल्कुल साफ हो गई थी। सारे शरीर पर देखने को भी कोई कुमुम का दाग बावली पर नही था। रसीला को यह सब देखकर बडा आनन्द हुआ। वह भाव-विभोर हो गई।

अब वह ओतम-माँ के साथ रहवास वाले घर मे पहुँची। घर मे पहुँचते ही ओतम-माँ ने कहा :

'बेटा, इस सन्दूक मे हमारे लेन देन के दस्तावेज, बहियाँ आदि सभी है। जिस दिन इन सबका नुकसान हो जाए, उस दिन यह सभी शान-शौकत मिट्टी मे मिल जायेगी।'

ओतम-माँ के प्रत्येक शब्द मे बहुत भार था। रसीला इस भार देने का कारण भलीभाँति जानती थी।

दूसरे सन्दूक की ओर अँगुली का सकेत करते हुए ओतम-माँ बोली :

'इस सन्दूक मे घर-गृहस्थी का गहना, चाँदी की थाली-कटोरियाँ रखी हुई है। जब जरूरत होती है, निकाल लिये जाते है। यह सारा ढेर असली चाँदी का है। ताल्लुके से तेरे दादी-श्वसुर ने यह सब बनवाया था।'

रसीला की नजर लगभग सौ थालियो और दो सौ कटोरियों पर पडी। ऐसा सेठ उसने बम्बई मे देखा जरूर था परन्तु इतना बडा वह सेठ नही था। उसके सामने मामूली व्यवसाय करके आजीविका चलाने वाले सनातन की तसवीर आ गई। वह उसके शब्दो मे खो गई। उसने सोचा कि इस प्रकार से

झूठी बात कहने वाले सनातन को आज रात्रि में वह देख लेगी। 'बिल्कुल झूठा!' इस समय इस प्रकार के भावों के आवेग को उसने यत्नपूर्वक दबा कर पूछा :

'और इसमें माँ?' लोहे की एक मजबूत तिजोरी की ओर रसीला ने अँगुली की।

'इसमें, बेटा, अपनी नकद रकम और आये हुए अपार गहने हैं। तथा कोने वाले कमरे में रजाइयाँ, गद्दे व गलीचे रखे हैं।'

'ऐसा!' रसीला ने बड़ा आश्चर्य करते हुए कहा :

'हाँ, बेटी! रंगून के गलीचे और काश्मीर के शाल व मोटे ऊनी कम्बलों जैसा सामान इसमें पड़ा है।'

सन्ध्या बीत चुकी थी। गांव में दीपक जल गए। रसोइया आवाज लगा रहा था कि भोजन करने चलिए। इस प्रकार की आवाज सुनकर ओतम-माँ कहने लगी :

'धीरे-धीरे सब समझ में आ जायेगा, चलो, अभी तो भोजन करो।'

बरामदे में एक से पाटों की एक पंक्ति लगी हुई थी। अभी कम-से-कम सौ मेहमानों को भोजन करवाना शेष था। उन लोगों के लिए एक कोने में चाँदी के बर्तन रखे हुए थे।

यह सब देखकर रसीला को अपार आनन्द हुआ।

कमरे में औरतों की एक पंक्ति में ही रसीला और ओतम-माँ खाना खाने को बैठीं। लपसी के दो-चार ग्रास खाकर उसने हाथ धो लिए।

घी के पात्र से बिना किसी प्रकार की बाधा के लपसी में ऊपर से घी परोसा जा रहा था। जब सब भोजन कर चुके तो झूठे बर्तनों में इतना घी बच गया कि एक पात्र उस घी से भर गया।

रात्रि हो गई थी। चारों ओर पलंग लग चुके थे। मेहमान भी अब सब सो गए थे। रसीला दबे पांवों से ऊपर के कमरे में जाने लगी।

ऊपर के कमरे में नीरव शांति थी। कमरे के एक कोने में एक बड़ा-सा पलंग बिछा हुआ था। पलंग पर एक सुन्दर मखमली गलीचा बिछा हुआ था। उस गलीचे से ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई रसिक कलाकार रंगों का सुन्दर मेल करके कमरे की शोभा बढ़ा रहा हो। पाँवों की ओर काश्मीर की कला की याद दिलाती हुए दो शालें रखी हुई थीं। वे शालें एक दूसरे से अठखेली कर रही थीं। पलंग पर दो सुन्दर तकिए रखे थे जिनको देखकर मुलायम शांति का आभास होता था।

कमरे के एक कोने में नक्काशी की हुई टेबुल रखी थी। टेबुल पर

एक पैट्रोमैक्स जल रहा था। कमरे मे नीरव शाति थी।

आज रसीला, रमीला नही थी। वह आज प्रभुता मे कदम रखने वाली दुल्हन थी। खिडकी के बद दरवाजे उसने खोल दिए। जैसे ही उसने खिडकी खोली कि रसीला के साथ शरारत करने की प्रतीक्षा करने वाला समीर का एक झोका उसके उत्तरप्रदेश से टकराया और भीनी मजाक करता हुआ उसने साडी के पल्ले को वहाँ से हटाकर निकल गया।

रसीला के हृदय की धडकनें बढने लगी। गठे हुए स्तनो को उसने पुन साडी के पल्ले से ढक लिया। आज उसने सनातन को कई परेशानियो के बाद पाया था—सनातन को उसने पाया था मात्र इस कल्पना से ही उस आज स्वर्ग का सुख तुच्छ जान पडता था। वह सुख-सागर की लहरो म गोते लगा रही थी। कई रात्रियो के सँजाए सुन्दर रग भरे स्वप्न आज साकार हुए थ। उसने आज तक जिस सुख की कल्पना की थी, इच्छा की थी, आराधना की थी, वही सुख आज उसके चरणो मे लोट रहा था। उसका अग-प्रत्यग उस नवीन अनुभव के आस्वादन की कल्पना से नाच उठा था।

आज उसके हृदय मे प्यार की धारायें बहने लगी। आन्तरिक हृदय की शहनाई बजने लगी। मन मे झरने बहने लगे। वह मधुर कठ से धीरे-धीरे गाने लगी

'आज नाच मारा मन ना मोर
उर मा उठे मीठो कल शोर
'आज नाचे छ मारा मन ना मोर'

(आज मेरा मन-मयूर नाच रहा है। अन्तर मे मधुर ध्वनि गुजरित हो रही है। आज मेरा मन-मयूर नाच रहा है।)

सारा कमरा मधुर स्वरो को अनुभव करके मानो हँसने लगा। आधी रात्रि बीत चुकी थी। रात्रि के भाल स चिपका हुआ चद्रमा शाति बरसा रहा था। रसीला अपने मधुर कठ से बराबर उपरोक्त गीत गा रही थी। खुली खिडकी से वह अपनी तेजस्वी आँखो से तारो को देख रही थी। वह सोच रही थी, कि आज रात्रि कितना सुन्दर रूप लेकर आई है। परन्तु अभी तक सनातन नही आया। वह खिडकी म बार बार बाहर की ओर देख रही थी। सब गहरी नीद मे सोये हुए थे, चारो ओर शाति थी। इस शाति को भग कर रही थी, नीचे की बैठक मे कागजो की उथल-पुथल होने की आवाज। सनातन पर रसीला को गुस्सा आया उसने मन-ही-मन कहा 'क्या आज भी सनातन को काम स फुरसत नही है!'

किन्तु उसकी अधीरता का उत्तर देने का दूसरे ही क्षण किसी के सीढियाँ चढने की पग ध्वनि सुनाई दी। सनातन ने कमरे म

प्रवेश किया।

रसीला के गीत की पंक्तियाँ रुक गईं। उसके मुँह पर गम्भीरता आ गई। झीने पीले रंग की साड़ी में आँख तक अपने मुँह को ढक कर वह पलंग की एक ओर बैठ गई। उसकी आँखों की पलकों ने उसके जादू भरे आँखों के हीरों को ढक लिया।

सनातन बड़ी सावधानी से कमरे में घुसा। उसने दरवाजा बंद कर लिया—रसीला के अन्तर की वीणा के तार झन-झना उठे। वीणा के प्रत्येक तार में-से मधुर ध्वनि गूँजने लगी। रसीला को ऐसा महसूस हुआ मानो अथाह सुख-सागर के मध्य किसी नाव में वह बैठी हो। उसने महीन साड़ी में-से दरवाजा बन्द करके आते हुए सनातन को जैसे ही देखा अपनी आँखें नीची कर लीं।

सनातन आकर पलंग पर बैठ गया। उसने रसीला की ओर देखा। वैसे उसने बम्बई व गढ़का जाती हुई रसीला को देखा था। साथ-साथ कुछ शरमाते, संकुचित होते हुए उसने उसके हृदय की बात भी सुनी ही थी किन्तु उस समय की रसीला की मोहकता में और आज की रसीला की मोहकता में बहुत अन्तर था। आज उसका रूप पूर्णरूपेण खिला हुआ था। रसीला के यौवनपूर्ण शरीर पर सनातन ने एक दृष्टि डाली।

सुन्दर पीले की रंग की साड़ी में रसीला का स्वर्ण-सा रंग का शरीर लिपटा था। उसके सुन्दर स्वस्थ शरीर पर रूप और यौवन दोनों का सुन्दर सम्मिश्रण था। मद-मस्त आँखों की पलकों में यौवन की मस्ती और स्नेह की तरंग इस समय छिपी हुई थी। मस्ती के हास्य को उसके परवाल से एकदम लाल ओठों ने मानो बाँध लिया था। इस समय वह अपने अरमानों और भावनाओं को दबाकर चुपचाप बैठी हुई थी। यद्यपि बाह्य में यह सब छिपा था किन्तु अन्तर में इसका गहरा प्रभाव हो रहा था। जिसका अनुभव सनातन भी कर सकता था। ये रंगभरी मस्तियाँ बार-बार सनातन के साथ शरारत करने लगीं। इस प्रकार की रंग-रेलियों में रँगा सनातन धीरे-धीरे रसीला के पास आ गया। सनातन के पास में सरक आने पर भी रसीला किसी संगमरमर की बनाई मूर्ति के समान, बिना किसी प्रकार की हलचल के बैठी रही। उसकी भौंह का बाल तक भी नहीं हिला। सनातन और पास में आ गया। अब रसीला का हृदय ज्यादा तेजी से धड़कने लगा। इस परिवर्तन के सिवाय उसके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं हुई।

रूप, यौवन, प्रेम और मस्ती की इस प्रतिमा को सनातन अनिमेष नैनों से देखता रहा। उसने तृप्ति का एक घूँट भरा। उसने धीरे से साड़ी के पल्ले से ढके और अर्द्ध चन्द्राकार बना, रसीला के शरीर पर साड़ी का आवरण

हटा दिया। फिर भी रसीला ने किसी प्रकार की हलचल नहीं की। किसी प्रकार की अधीरता उसने व्यक्त नही की। वह एक शब्द भी नहीं बोली। इस मौन से भी सनातन ने उसके हृदय में बहते हुए प्रेम के सोते का कलरव गान सुन लिया था। रसीला के सतत मौन ने उसके सौन्दर्य में चार-चाँद लगा लिए थे—इस मौन से उसका सौन्दर्य निखर उठा था।

रसीला का यह अभिनय सनातन को सुहागरात के प्रारम्भ में और अधिक मोहक प्रतीत हुआ। वह इससे आकर्षित हुआ। उसने रसीला की अँगुलियाँ अपने हाथ में ली। इससे रसीला के अन्तर के बन्द दरवाज़े एकदम खुल गए। सनातन के स्पर्श ने उसकी दृढ़ता को झकझोर दिया। इस झटके के साथ ही उसकी आँखों में दबी मोहकता खुल गई। उसने पलकें खोलीं। उसका मुँह शर्म से लाल हो गया। वह न तो अपने हाथ की अँगुलियों को सनातन के हाथ से हटा ही रही थी और न सनातन का विरोध ही कर रही थी। सनातन जैसे खिलाता था, वैसे ही वह खेल रही थी।

रसीला के बहुत पास मुँह ले जाकर मद-मद मुस्कराता हुआ वह बोला

'मैं तेरे मधुर स्वर सुनने को बहुत ही लालायित हूँ।'

'क्या मैं तुम्हारे सामने कभी नही बोली, तुमने मेरी आवाज नही सुनी !'

'इस प्रकार तो कभी नही सुना, कभी नही।'

'झूठे । कहते हुए उसने अंगड़ाई सी इससे उसके सिर पर से रेशमी साड़ी का पल्ला हट गया–ठीक उसी तरह जैसे पहले मधुर समीर की शरारत के कारण हट गया था। उसकी गर्दन पर बँधे हुए जूड़े में-से मोगरे का फूल अब खिल चुका था। इसकी मधुर सुगन्ध से सनातन का मन अत्यधिक प्रसन्न हो गया और इसी क्षण रसीला का मद-मस्त भरा यौवन सनातन के हृदय के साथ जुड़ गया।

रसीला के होंठ कुछ हिले। दोनों होठों के खिलती कली के समान कम्पन को वह बराबर देखता रहा। होठों का मधुर कम्पन देखकर सनातन बड़ा प्रसन्न हुआ।

बल्लरी सी रसीला सनातन पर झुक गई। उसके गठीले हाथ सनातन के गले में फँस गए। उसके उत्तर में अथाह आनन्द देता हुआ एक दबाव रसीला ने अनुभव किया। रसीला सुख-सागर के अनंत महासागर में गोते लेने लगी।

'रसीला ! तूने मुझ में क्या देखा ?'

'कैसे ?'

'तू दोगी की आशाओं पर पानी फेर कर यहाँ आई ?'

'सर्वस्व प्राप्त करने को ।'

'यदि नहीं मिले तब ?'

'प्राणेश्वर सब कुछ मिला है...।' कहते हुए रसीला की आँखों में रति का एक आवेग आया ।

'रसीला ......।'

'सनातन.......।'

रसीला ने आँखें बन्द कर लीं । उसने अपना शरीर स्नेह-सागर में उमड़ते आनन्द को लूटने के लिए मुक्त हृदय से छोड़ दिया ।

घ्रासवेल के स्थान में

जैसे ही सनातन को यह जानकारी मिली कि घ्रासवेला के एक कमरे मे समजू ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया है वैसे ही उसी रात्रि को वह घ्रासवेला को चल दिया और वहाँ पहुँच कर महंत के निवास-स्थान के पास ले जाकर घोड़ी को रोका।

सनातन को घ्रासवेला के आश्रम में पहुँचते-पहुँचते देर होगई थी इस कारण पुजारी व महंत के सिवाय सभी गहरी नींद मे सो रहे थे। यात्रीगए लम्बे रास्ते पार करके आने के कारण थककर सो गये थे।

सनातन को जैसे ही महंत रत्नगिरि ने देखा वे अपने स्थान से उसका आगमन करने के लिए उठे तथा बोले : 'सेठ आओ।'

सनातन को इस स्थान से बहुत प्रेम था। सनातन के पितामह भँवर-सेठ के समय से ही इस स्थान पर उनकी ओर से धर्मादा आता था। साल भर दो गाड़ी बाजरा और दो गाड़ी दाल तो वे भिजवाते रहते थे। इस अन्न से आने वालों को दाल-रोटी बराबर खिलाई जाती थी। पितामह के समय में सनातन इस ओर यदाकदा ही आता था। बिना किसी खास कारण के वह नहीं आता था। परन्तु एक घटना घटने के बाद गत वर्ष से उसका इस स्थान से विशेष सम्बन्ध था।

जबकि सनातन सदा ही यह कहता रहता था कि उसने इस स्थान के लिए मात्र जबान हिलाने के कुछ भी नहीं किया है। परन्तु महंत रत्नगिरि के मन में इस बात का भी बहुत महत्त्व था। वे मानते थे कि यदि उस समय सनातनसेठ जबान न हिलाते, इतनी मेहनत न करते तो इस सारी मिलकीयत पर सरकारी प्रबन्ध हो जाता और रत्नगिरि यदि भूमि फट पड़े तो उसमें समा जाते, ऐसी दशा होती। किन्तु इस आड़े समय में सनातन ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति इस काम में लगा दी थी और सदा के लिए इस स्थान के ध्वज को लहराता रख दिया था।

बात यह थी कि स्थान का गौशाला का ग्वाला माण्डन नौजवान था। शरीर में उबलता खून था। काम करने में यह युवक कुशल व तेज था। फिर भी एक दिन मीणसार नदी के किनारे छिछोरापन कर बैठा।

गर्मी के प्रचण्ड दिन थे। धरती तवे-सी जल रही थी। जमीन सूखी हुई थी। कहीं भी एक बूँद पानी नहीं था। इस समय में भी मीणसार नदी बड़ी तेजी से बहती थी। मीणसार नदी की धाराओं में भरपूर पानी था। जाबड़ा की सीमा के पास से मोड़ खाकर यह नदी दो धाराओं में बहती हुई आगे बढ़ती थी। भयंकर से भयंकर अकाल में इस नदी की धारा बराबर बहती रहती थी। मीणसार के इस पाट में एक विशाल धूना था। इस के किनारे जाबड़ा की बहिन-बेटियाँ कपड़े धोने को बराबर आती रहती थीं। साथ-ही-साथ समय मिलने पर स्नान करने भी बैठ जाती थीं।

पानी की प्रचुरता के कारण आसपास का सारा क्षेत्र हरा-भरा दिखाई देता था।

एक बार जाबड़ा के पटेल की युवा पुत्री कपड़े धो रही थी तथा मांडन स्थान की गौशाला की गायें नदी के किनारे ही चरा रहा था। इसी समय पटेल की नौजवान लड़की स्नान करने को बैठी। यौवन के भार से उसका अंग-प्रत्यंग बिखर रहा था। अपने आसपास की नीरव एकान्तता देख कर उसने अपना कपड़ा एक ओर फैंक दिया और मात्र लहंगा पहन कर धूना में डुबकी लगाई। तैरने में पटेल की लड़की बड़ी अच्छी थी। वह एक अच्छी तैराक थी। उसका यौवन पानी के साथ क्रीड़ा करता हुआ धमाके करने लगा उसकी ध्वनि धूना को लांघकर मांडन के कानों में गूंजने लगी और मांडन ने धूने की ओर देखा।

मात्र कौतूहल के लिए आए मांडन की नजरों में पानी में विहार करता यौवन बुरी तरह से समा गया। निर्जनता के कारण उसकी वासना वृत्ति जाग उठी। वह कपड़ों समेत धूने में कूद गया और जल्दी से उसने जल-

परी सी तैरती पटेल की लड़की को अपने बाहुपाश में जकड़ लिया।

माडन के बचन में जैसे-तैसे छुटकारा पाने ही लड़की गाँव में गई और रोते-रोते अपनी राम कहानी घर पर सुनाई। लड़की की बात सुनकर पिता का आग-बबूला होना स्वभाविक ही था। अपने कुटुम्ब के एक से पचास नौजवानों को लेकर रात्रि में ही स्थान की ओर चल दिया।

माडन को अब अपनी भूल पर पश्चाताप हुआ। लेकिन अब तो बहुत देर हो चुकी थी। भूमि पर लम्बा लेटकर महन्तजी के पाँवों में सिर रखकर अपने को बचाने को वह गिड़गिड़ा कर याचना कर रहा था। पश्चाताप के आँसुओं से उसका सारा मुँह भीगा हुआ था।

महन्तजी ने माडन को सान्त्वना दी जबकि उसकी भूल अक्षम्य थी किन्तु ठोकर खाकर ही मनुष्य बनता है इस बात को महन्तजी जानते थे अतः उन्होंने माडन की पीठ पर हाथ फेर कर उसको सान्त्वना दी। ठीक इसी समय पटेल के साथ एक से पचास नौजवानों ने स्थान के दरवाजे में पाँव रक्खा। रत्नगिरि को बात समझने में देर नहीं लगी। उन्होंने माडन को अपने कमरे में चले जाने को कहा।

'महाराज! हमें हमारा अपराधी सौंप दें।'

'कौन?'

'ग्वाला।'

'क्या?'

'आप उसे सौंप दें फिर हम क्यों और किसलिए सब बता देंगे।'

'तनिक शान्त होकर बात करो।'

'शान्ति से बात तो फिर होती रहेगी, समझे?'

'तुम लोग इस स्थान पर भी आदमी की जान लेने की सोचते हो?'

'बहुत देखे हैं तुम्हारे-से ये स्थान!' समूह में से एक आदमी ने उत्साह से कहा।

'जल्दी मत कर, जरा धैर्य से बात कर।'

'तू कौन है? तूने यहाँ ऐसे हरामी इकट्ठे कर रक्खे हैं?'

'यहाँ तो सबको भगवान् ने ही इकट्ठे किए हैं। मैंने तो किसी को भी नहीं बनाया है?' महन्तजी ने बड़ी शान्ति से उत्तर दिया।

'व्यर्थ में बात को क्यों बढ़ाते हो हमें हमारा दोषी सौंप दीजिए।'

'महन्तजी ने अति दृढ़ता से कहा, वह नहीं मिल सकता है।'

'क्या बात है जो नहीं मिलेगा?'

'स्थान के आश्रय में है।'

'ऐसा नालायक, बुरे काम करने वाला।'

'हाँ।'

समूह में से लड़की का पिता गर्ज उठा : 'धर्म के अखाड़े में ऐसा चलेगा?'

'ऐसे ही चलेगा।'

'भला अब इसी में है कि चुपचाप हमें हमारा अपराधी सौंप दो अन्यथा हमें स्थान में घुसना ही पड़ेगा।'

एक से पचास नवयुवकों के सामने बिना किसी प्रकार की हिचकिचाहट के महंतजी बोले :

'जो करना हो वह कर लो।'

भीड़ उग्र बनी और उसमें से एक आदमी बोला :

'आज बात स्पष्ट होगई है। स्वयं महंत ही ऐसे जघन्य काम कराता है।'

मांडन पर से सीधा अपने पर ही आक्षेप आते ही महंतजी आग-बबूला होगए। आज उनकी पवित्रता पर ये अज्ञान मानव दाग लगाने के इच्छुक थे।

'तुम यदि कहोगे तो मैं उसे इस स्थान से निकाल दूँगा; यदि कहोगे तो वह इस क्षेत्र को छोड़कर चला जायेगा परन्तु आज उसे आप सबके सामने मैं किसी भी मूल्य पर उपस्थित नहीं कर सकता हूँ।'

'हमें हमारा अपराधी चाहिए। हमें कोई दूसरी बात नहीं सुननी।' भीड़ ने हठ किया।

'यह सम्भव नहीं।'

'तब हमको दरवाजा तोड़ना होगा।' भीड़ में इस बात का एक गहरा हुँकार उठा।

इस स्थिति में भी महंतजी शांति रखने के हार्दिक इच्छुक थे। शांति रखना वे अपना धर्म समझते थे। मांडन किसी भी मूल्य पर वे नहीं सौंपने को तैयार थे, ऐसे दृढ़ भरे विचार वे पहले ही व्यक्त कर चुके थे। अतः भीड़ को समझाने के उद्देश्य से उन्होंने उस पर एक नजर डाली और कहने लगे :

'मैं तुमको स्पष्ट कहता हूँ कि मांडन का अपराध जघन्य अपराध है। यह भूल बहुत ही भयानक है। उसकी छाया मात्र के स्पर्श से इस धरती पर बोझ बढ़ता है, ऐसा उसका काम है। क्या तुम सोचते हो मैं यह बात नहीं समझता हूँ? परन्तु फिर भी……'

'यह किन्तु—परन्तु हम नहीं सुनना चाहते हैं। मांडन को आप

बाहर निकालो।'

'मैंने कह दिया है कि यह मन्त्र नहीं है।'

'तब ?'

'मैं उसे रात ही रात में स्थान छुड़वा दूंगा।'

'महन्तजी आपको मालूम है उसने हमारी मृत्यु तक बिगाड़ दी, इसका क्या ?'

'पर इसको मार देने से मौत नहीं सुधर जायेगी।'

'हमें ज्ञान की बातें नहीं सुननी, उसे बाहर निकालते हो या हम किवाड़ तोड़ें ?'

'ऐसा जोखिम का काम क्यों करते हो ?'

'अरे यह व्यर्थ में अपने आपको न जाने क्या समझता है ? ऊपर चढ़ो और तोड़ डालो किवाड़।'

हृष्टपुष्ट पचास नौजवान ज्यों ही कमरे पर चढ़ने को तैयार हुए कि महन्त रत्नगिरि ने अपनी गद्दी के नीचे दबाई हुई एक मजबूत लाठी निकाली और एक बाजू से मोर्चा लेकर खड़े होगए।

'कह दिया वापिस लौट जाओ परन्तु तुम लोग मानते ही नहीं हो। अब सामने आओ, देखूं किसकी माँ ने दूध पिलाया है ?'

सदा ही सौम्य व मृदुल रहने वाले महन्तजी ने उस दिन मजबूत लाठी उठाई रौद्रता को निमन्त्रण दिया। उनके भस्म से सने हुए शरीर में अंगारे निकलने लगे।

भीड़ में हिम्मत नाम की चीज का अभाव था। वह मात्र कलेजे का घाव था इसीं पाँच युवकों ने कमरे के ऊपर चढ़ने की हिम्मत की। रत्नगिरि ने उनको ऐसा करते देख कर अपनी लाठी घुमाई और देखते देखते उन पाँचों युवकों के हाथ की लकड़ियाँ टुकड़े-टुकड़े होकर जमीन पर गिर पड़ी।

भीड़ में भगदड़ मच गई। अब रत्नगिरि नीचे उतर पड़े और भीड़ का पीछा करने लगे। नौजवानों की लकड़ियों की आवाज हुई और एक साथ पचास आदमियों की इस भीड़ को अकेले रत्नगिरि नदी के किनारे तक भगा आए। आज तक किसी ने भी रत्नगिरि का ऐसा रौद्र रूप नहीं देखा था।

अपनी शारीरिक शक्ति में जब पटेल परास्त हो गया तो उसने स्थान पर सरकारी प्रबन्ध करवाने की सोची। स्थान की व्यवस्था के विरुद्ध लिखित में शिकायत आगे भिजवाई गई। कई अधिकारियों की जेबें गर्म की गईं।

अधिकारियों ने स्थान को कुचलना शुरू किया। स्थान पर सरकारी प्रबन्ध करवाने के कागजात शुरू किए गए।

महंत को जब इस बात की जानकारी हुई तो उसने तेजपुर के सनातन सेठ से मदद लेने का विचार किया। वे उसी रात घोड़े पर तेजपुर गए। सनातन को सारी बात बताई। महंत ने अब तक यह सुना था कि अधिकारियों की कलम पकड़ने वाला इस परगने में सिवाय सनातन के कोई नहीं है अतः उसने सनातन से ही मदद लेना उचित समझा।

और महन्त की बात सुनकर सनातन ने कहा कि : 'महन्तजी आप फिक्र न करें मेरी यह गारण्टी है कि स्थान का बाल भी बाँका नहीं होगा।'

सनातन ने भाव नगर की एक यात्रा की तथा जात्रुड़ा वालों की सभी कार्यवाही पर पानी फेर दिया। स्थान पर सरकारी प्रबन्ध के होने वाले आदेश न जाने कचहरी की किस फाइल में ही पड़े रह गए।

इसी समय से सनातन का इस स्थान के साथ गहरा सम्बन्ध था।

आज वह समजू के कारण ही खास तौर से इस स्थान पर आया था।

महंत के चरण स्पर्श करके सनातन रत्नगिरि की बाजू में बैठ गया। महंत बोले :

'उत्तराधिकारी हुआ है।'

'मुझे स्वीकार है।'

'ऐसे नहीं।'

'तब ?'

'मेरी एक बात माननी पड़ेगी।'

'कहिए।'

'मिलकीयत में से लड़के का हिस्सा।'

'अभी बड़ा होने दीजिए।'

'कल का किसी को भरोसा नहीं।'

'किन्तु''' दूसरा भी होगा ?'

'नहीं।'

सनातन महंत की बात का रहस्य नहीं समझ सका अतः कहने लगा :

'घर में भी तो जीवन साथी है।'

'मुझे यह मालूम है परन्तु अब उत्तराधिकारी नहीं मिलेगा। और मानो किस गूढ़ तत्व को ढूंढ़ते हुए रत्नगिरि कहने लगे : उत्तराधिकारी

का कागज लिख दो।'

दूसरे दिन ही ताल्लुके से दस्तावेज लिखवा लेने की व्यवस्था की गई। महन्तजी की स्पष्ट रूप से भविष्य वाणी होते हुए भी सनातन ने दस्तावेज मे लिखा कि यदि रसीला के पुत्र हो तो आधा हिस्सा उसको मिलेगा। दस्तावेज में सभी आवश्यक राज-चिन्ह व हस्ताक्षर करवाए गए और फिर से समजू को लाखा को सौंपकर जामुडा की ओर रवाना कर दिया गया। दस्तावेज एक माह म बन सका। जैसे ही दस्तावेज बन कर तैयार हुआ स्वय सनातन जामुडा गया और समजू को दस्तावेज सौंप आया। समजू इस कागज से कुछ नही समझ सकी, इसलिए सनातन ने उसे समझाया कि 'मेरी मृत्यु के बाद मेरे घर पर जाकर रसीला को पढा देना।'

इन शब्दो को समजू ने अपने मन मे उतार लिया।

ओतम-माँ की मृत्यु

रसीला की शादी के बाद ओतम-मां के सिर पर से घर का बोझ हल्का हो गया था। रसीला ने घर में मानो जादू ही किया था। उसने आधुनिक शिक्षा का सचमुच ही सदुपयोग किया था। इसीलिए ओतम-मां से धीरे-धीरे सारे घर का भार अपने कंधों पर लेकर उसका मानस जीत लिया था। ओतम-मां अब सनातन की चिन्ता करने के बदले रसीला की चिन्ता करने लगीं। रसीला और ओतम-मां एक दूसरे में इतनी घुल-मिल गई कि अनजान मानव को रसीला इस घर की बहू न लग कर ओतम-मां की पुत्री ही लगती थी। दोनों के बीच एक घनी प्रेम-वल्लरी छा गई थी।

ओतम-मां की उपस्थिति में रसीला सनातन से बात करना तो दूर, घूँघट में-से भी कभी नजर नहीं मिलाती थी। इस युग में इस प्रकार से इतना उसका सम्मान रखने के कारण ओतम-मां के अन्तर में रसीला के लिए बहुत आदर था, जबकि सनातन के दिल में इसका दर्द था। इसीलिए वह एक दिन कहने लगा :

'रसीला मैं तेरे में—रात और दिन में भारी अन्तर देखता हूँ।'

'कैसा अन्तर ?'

'तेरे व्यवहार का।'

'ऐसा मेरे व्यवहार में क्या है ! मैं जैसी थी वैसी ही हूँ। रात्रि मे मैं रसीला हूँ ही और दिन में "'किन्तु"'।'

'नही, रसीला मुझे इसमें महान अन्तर दृष्टिगत होता है।'

'भले ही लगे। कहते हुए रसीला ने अँगड़ाई ली। यौवन मानो इसमें से छलककर इसी रंग भरे कमरे में ही ठूस-ठूस कर भर दिया गया हो। रसीला आज सनातन को और दिनों मे अधिक सुन्दर प्रतीत हुई। पलंग के एक ओर खिसक गई रसीला को उसने अपने पास खींच लिया और कमल सी उसकी कोमल अँगुलियों को अपने हाथ में मिलाते हुए बोला 'रसीला तेरा व्यवहार मेरे कलेजे के टुकड़े-टुकड़े कर देता है।'

'तुम्हारा कहना बिल्कुल उचित है परन्तु मुझे ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए।'

'क्यों ?'

'मैं तुम्हारी रात्रि की रानी हूँ और दिन में घर की गृहणी।'

रसीला का उत्तर सुनकर सनातन स्तब्ध हो गया। उसे भान हुआ कि इस प्रकार का अन्तर देखना उसकी ही सनक का कारण है—यदि मैं इसी प्रकार की सनक में रहा होता या रसीला इसी का अनुमोदन करती रहती तब फिर व्यावहारिक काम में मन लगना कठिन था। इस प्रकार की कमजोरी आना अति स्वभाविक था तथा इस प्रकार की कमजोरी से हानि उठानी पड़ती। रसीला की बुद्धिमानी और व्यवहारकुशलता के प्रति सनातन के मन में अच्छे विचार जम गए। तदुपरान्त सनातन ने कभी इस प्रकार के अन्तर की चर्चा रसीला से नहीं की।

एकाएक ओतम-माँ का शरीर गर्म हुआ। अभी दोपहरी में कमरे के बाहर बैठी बैठी बछड़े को खिला रही थी। वह उसकी गोदी में सिर रखकर पागल-सा हो जाता और फिर सचेत हो जाता था। इस प्रकार के व्यवहार से निष्ठुर हृदय के मानव में भी दया आना स्वभाविक है।

अभी सन्ध्या होने में देर थी ओतम-माँ ने अपने रहवास के कमरे में पलंग बिछाया। रसीला ने तुरन्त पूछा

'माँ क्या हुआ ?'

'शरीर गर्म है।'

रसीला समझ गई कि शरीर का इस उम्र में गर्म होने का अभिप्राय है कि साक्षात् यमराज का निमंत्रण पाना। सनातन आज ताल्लुके गया हुआ था। धीरे-धीरे ज्वर का प्रकोप तेज होने लगा। रसीला ने तुरन्त ओतम-माँ की टहल-चाकरी शुरु कर दी। उनके सिर पर नमक के पानी के कपड़े रखना

शुरू किया। लगातार इस प्रकार तीन घण्टे तक कपड़े रखने के उपरान्त भी ज्वर कम नहीं हुआ और शाम होने तक भी जब सनातन तालुके से नहीं लौटा तो उसे सनातन की व्यस्तता पर क्रोध तो आया पर शीघ्र ही वह ओतम-माँ की सेवा में लवलीन हो गई।

पड़ोस में ओतम-माँ के बीमार होने की बात सुनकर पड़ोसी कुशल-क्षेम पूछने आने लगे और रसीला को धैर्य बँधाते हुए ओतम-माँ के पलंग के चारों ओर घेरा डाल कर बैठने लगे। बीमार आदमी के सामने ही बातों का ऐसा शोरगुल—चाहे अन्तर में भली भावना ही हो—रसीला को अच्छा नहीं लगा। पर वह कुछ नहीं बोली। वह मन-ही-मन सोचने लगी कि हमारे समाज की कई रीति-रिवाज, जिन्हें हम अपनी ओर से अच्छा समझते हैं, दूसरों के लिए नुकसान-प्रद होते हैं, ऐसा लोग क्यों नहीं सोचते हैं? अकस्मात या दुर्घटना को देखने के लिए जब भीड़ घायल को चारों ओर से देखने के लिए घेर कर खड़ी हो जाती तो रसीला का मन इस प्रकार के जिद्दी लोगों को हटाकर घायल को स्वच्छ वायु-सेवन कराने का होता था। उसकी यह दृढ़ मान्यता थी कि दुर्घटना या कठिनाई के समय रोगी के पास में घूमती भीड़ मात्र शब्दों से अपना दुःख व्यक्त करती है, किन्तु उनके अन्तर मानस में तो कौतुहल वृत्ति को शांत करना ही छिपा रहता है।

इस प्रकार के विचार-मंथन के तूफान में भी वह ओतम-माँ के ताप को हल्का करने के लिए बराबर उसके माथे पर गीले कपड़े रखती जा रही थी।

सूर्य के अस्ताचलगामी हो जाने पर जब संध्या ने अपना साम्राज्य फैलाया तो सनातन घर में घुसा। उसकी नजर तुरन्त रहवास के कमरे की ओर गई। उसने जयसिंह भाई से पूछा :

'क्या है?'

'माँ को बुखार आ गया है।'

जयसिंह भाई का उत्तर सुनते ही सनातन के मुख-मण्डल पर गहरी चिन्ता छा गई, वह जल्दी से कमरे में गया। ओतम-माँ के शरीर पर कपड़े रखती रसीला से उसने पूछा :

'माँ को क्या हो गया है?'

आज तक रसीला ने सनातन से किसी के सामने बात नहीं की थी। माथे पर आए हुए साड़ी के पल्ले को थोड़ा नीचे करके, क्षोभ को भूल कर, मन को दबाकर, मस्तक नीचा करके उसे बोलना पड़ा :

'बुखार आ गया है।'

'कब से?'

'तीसरे पहर से।'

'मुझे सूचना करवाई होती ?'

'तब भी क्या था, आप इससे पहले थोड़े ही आ जाते।'

सनातन ने अब सोचा कि चिन्ता-ही-चिन्ता मे मैंने बेकार का प्रश्न कर लिया।

'चरखा से वैद्यजी को बुलवाया जाए।'

'ऐसी जल्दी की आवश्यकता नही है। आज की रात देखलें। यदि ज्वर कम हो जाये तो ठीक अन्यथा सुबह देखा जायेगा।'

सनातन और रसीला सारी रात ओनम-माँ के पास बैठे रहे। ज्वर बिल्कुल कम नही हुआ। अतः सुबह जल्दी ही सनातन ने जयसिंहभाई को गाडी लेकर चरखा भेज दिया और चरखा से वैद्य देवनन्द पड्या को उसी गाडी मे लिवा लाने को कहा।

वैद्य देवनन्द पड्या से सनातन का परिचय ताल्लुके मे एक बार हुआ था। वह उस समय थानेदार की बदली के कारण उसके सम्मान मे दिए गए भोज मे सम्मिलित होने को ताल्लुके गया था। वहाँ उसने सर्वप्रथम खादी लिबास मे वैद्यजी को देखा। खाकी कोट, खाकी ब्रिजेश तथा कंधे पर टब्वल बोर लटक रही थी। सारे जलसे मे इस प्रकार के तेजस्वी चेहरे को देखकर उसने थानेदार से इस व्यक्ति की जानकारी करनी चाही। थानेदार ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा

'आप इस व्यक्ति को नही पहचानते है ?'

और थानेदार ने तुरन्त सामने बैठे हुए वैद्यजी को बुलवाया और विस्तृत रूप से परिचय देते हुए कहा

'वैसे तो आप चरखा के मुखिया है, परन्तु आपकी विशेषता यह है कि आपको कभी भी मुखिया के पद का अहं नही हुआ। आपकी आमदनी बहुत है। बडे प्रेमी जीव है सेठ और इसी कारण यहाँ पर इनकी कुर्सी लगती है। ताल्लुके के सत्तर गाँवो मे-से किसी भी गाव वाले को थाने मे आने की आवश्यकता नही। साथ-ही-साथ ये अच्छे वैद्य भी हैं। रोग का निदान आप अच्छा करते हैं। सारे परगने मे आप एक निष्ठावान् और तपस्वी व्यक्ति हैं।'

उस दिन से इन वैद्य के साथ सनातन की गहरी दोस्ती हो गई तथा एक बार वह वैद्यजी का दो रात्रि का वह मेहमान भी बन चुका था। वैद्यजी जीवन के विभिन्न रूप थे। वे शिव-उपासक थे। जाति मे वैद्यजी ब्राह्मण थे। पूजा-पाठ और कर्मकाडो मे भी इनकी तेजस्विता का भान होता था किन्तु समय आने पर डाकुओ का सामना करने के लिए बन्दूक उठाकर फायर

करना भी ये जानते थे। वैद्यक का काम करते हुए वे समाज के दुःख-सुख के मित्र बने थे। वे व्यभिचारियों—अन्यायीओं के कट्टर दुश्मन थे और जनसमाज में इनकी बड़ी कीर्ति थी। इन्हीं कारणों से सामान्यजन इनको श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। सनातन भी उनके प्रति पूजनीय भाव रखता था।

जयसिंहभाई को दरवाजे तक छोड़कर सनातन पुनः कमरे में आ बैठा।

'रसीला की ओर देखकर उसने पूछा : 'क्यों रसीला माँ कैसी लगती हैं?'

दादी-सासु की उपस्थिति में खुले आम बात करने की आज्ञा मिल जाने पर सनातन का इस प्रकार से नाम लेकर बात करना रसीला को रुचिकर नहीं लगा। उसने शरमाते हुए सनातन को चुप करने के लिए नाक पर अँगुली रखी। सनातन को यह समझने में देर नहीं लगी कि रसीला को उसका नामोच्चारण करना अच्छा नहीं लगा।

गाड़ी की आवाज सुनते ही सनातन कमरे से बाहर निकला। ठीक इसी समय वैद्यजी ने दरवाजे में पाँव रखा। वे तुरन्त बोले :

'माँ अब कैसे हैं?'

'जैसे थी।'

दोनों कमरे में घुसे। रसीला पलंग से हटकर एक ओर खड़ी हो गई।

'सेठ, मुझे एक बात की खुशी है कि रोगी का कमरा ऐसा ही स्वच्छ होना चाहिए।

बीमार की चादर, तकिया का लिहाफ और ओढ़ने का वस्त्र रोज बदला जाना बहुत ही प्रशंसनीय है। बीमार के पास खड़े सनातन ने रसीला की ओर एक नजर से देखा।

वैद्यजी ने रोगी की नाड़ी पर दो अँगुली रखीं। बंद हुई आँखों की पलकें हटाकर देखा। मुँह खुलवाकर जबान देखी और बाहर आकर बैठक में बैठ गए, अपनी पेटी में-से दवा की पुड़ियाँ दीं और कुछ नहीं बोले। तब सनातन ने पूछा :

'क्या दिखाई देता है?'

'माताजी की सेवा-टहल का पुण्य ले लो, भाई। दियों में तेल नहीं रहा।'

'बस!' कहते हुए सनातन की आँखों में अँधेरा छा गया।

'भाई हम सबको अन्ततः मरना ही तो है।'

'देवनन्द भाई, इसने तो दोहरी जबावदारी पूरी की, मुझे पाला—एक माँ की तथा दूसरी दादी की।'

'यह सब तो ठीक किन्तु सनातन यह क्या भूलते हो कि व्यवस्थित देह एक दिन तो अव्यवस्थित होगा ही। दिल को मजबूत करके जितना पुण्य कमा सकते हो, सेवा करके कमा लो।' इतना कहकर वे उठे। और बाहर खड़ी गाड़ी में पड्या चल पड़े। उनकी प्रतिभा से तेज बिखर रहा था।

सनातन और रसीला दोनों ने सारे दिन और आधी रात तक सेवा की।

अन्तत जैसे ही मध्य रात्रि का मोगरा खिला ओनम माँ परलोक सिधार गई।

षड्यंत्र

जैसे ही रसीला को ज्ञात हुआ कि सनातन के एक पत्नी और है, उसके दिल में आग की ज्वाला भभक उठी। पहले तो उसे इस बात को सच नहीं माना किन्तु जब सब ओर से उसे इस बात के अकाट्य प्रमाण मिले तो उसके दिल को एक भारी सदमा लगा। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। सारी दुनिया उसे घूमती प्रतीत हुई।

यदि किसी अन्य काम में सनातन ने ऐसा किया होता तो रसीला को इतना क्षोभ न हुआ होता। किन्तु यहां तो एक स्त्री का अस्तित्व उसके बीच में खड़ा हुआ था। स्त्री सब कुछ सहन कर सकती है किन्तु अपने पति को किसी अन्य स्त्री से प्रेम करते नहीं देख सकती, न इसे सहन ही कर सकती है। प्रेम के अविरल बहते झरने में-से कोई अन्य स्त्री एक अंजलि पीकर तृप्त हो जाए, यह एक स्त्री बर्दाश्त नहीं कर सकती—इस पर भी उसे जब यह ज्ञात हुआ कि एक नीच कौम की स्त्री जो जानुड़ा ग्राम में रह रही है, उसने सनातन के पीछे ही जीवन बिताने का निश्चय किया है। उसके रोम-रोम में आग जलने लगी। उसने सोचा शायद उसने भूल की है। बहुत ही चालाक मनुष्य के चक्कर में फँसकर छली गई है।

सनातन की चपलता पर रसीला को गर्व था। उसकी बुद्धिमानी पर उसे गौरव था। उसकी मस्ती के कारण ही वह उसकी ओर खिची थी और यही कारण था कि यहाँ आने के बाद गत दो वर्षों मे उसने कभी पिता के घर की याद नही की। सनातन उसे बहुत प्यार करता था। घर भर के सारे नौकर सदा उसकी आज्ञा की राह देखते रहते थे। बम्बई से यहाँ कई गुना अधिक था। यह बम्बई की अपेक्षा यहाँ अधिक शक्ति-सम्पन्न थी। यहां पर उसकी इच्छानुकूल काम होता था। घर की वह स्वयं मुखिया थी। उसकी इच्छा के प्रतिकूल कोई एक भी कदम नही चलता था।

सनातन बाहर चाहे कितना ही प्रभावशाली और आनेवाला रहा हो पर घर के मामलो मे तो वह रसीला की आज्ञा का अक्षरशः पालन करता था। रसीला की किसी भी बात की उसने कभी उपेक्षा नही की। उसे रसीला मे पूर्ण श्रद्धा थी। वह मानता था जो कुछ वह करती है, वह ठीक ही करती है। रसीला जो भी कर देती वह हो जाता था। सनातन कभी भी घर के मामलो मे दखल नही देता। सच कहा जाये तो उसे इतना समय ही नही मिलता था। अधिकारियों के साथ अच्छी जान-पहचान के कारण दिनादिन उसकी प्रतिष्ठा मे चार चाँद लग रहे थे।

रसीला को समजू के सम्बध मे किसी ने बताया कि सनातन की इस रखैल के एक पुत्र भी है तथा सनातन ने उसे मिलकीयत का हिस्सेदार बनाने के लिये दस्तावेज भी लिख दिया है। जैसे ही उसे यह सूचना मिली उसका क्रोध उग्र रूप से भड़क उठा। वह विचार-धारा मे खो गई। विचारो का वेग असाधारण था। सामान्य स्त्रियों के समान वह भी इसी वेग के प्रवाह मे बहने लगी। वह सोचने लगी। कल उसके भी पुत्र होगा। मेरे पुत्र हो किन्तु इससे पूर्व तो उस रखैल का बेटा वारिसदार जो बन बैठा है। इन विचारो मे वह मानवता भूल गई। उसके विचारो मे राक्षसी वृत्ति घर कर बैठी। वह यह हीन व मलीन निर्णय कर बैठी कि जैसे भी हो इस वारिसदार को मौत के घाट उतार दिया जाये।

तेजपुर और जाम्रुडा की एक ही सीमा थी। जाम्रुडा के मिट्टी के घर मे खेलने वाले समजू का चित्र रसीला की आँखो मे नाचने लगा। समजू के पुत्र को रसीला ने कभी देखा नही था अतः चित्र काल्पनिक होना स्वाभाविक था। रसीला ने इस अबोध बालक का काम-तमाम करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

सनातन ताल्लुके गया हुआ था। जयसिंहभाई भी सनातन के साथ गए थे। दोनो का सुबह से पहले आना सम्भव नही था। रसीला ने इस अवसर का लाभ लिया कि कल सुबह से पूर्व ही उसके पुत्र के हक मे बाधक

बनने वाले समजू के पुत्र का कामतमाम कर दिया जाये और इस प्रकार जीवन भर के इस काँटे को सदा के लिए निकाल ही दिया जाए। इसके साथ ही साथ उसने सोचा कि समजू को जाजुड़ा छोड़कर विदेश में चले जाने की धमकी दे दी जाए।

सनातन ने जैसी तत्परता का व्यवहार उसके साथ किया है वैसा ही तत्परता का व्यवहार रसीला ने सनातन के साथ कर डालने की योजना बनाई। सनातन ने उसके साथ कैसी चाल की थी! बाहर की दुनिया के साथ खेली जाने वाली चाल को उसने घर में भी खेलने की सोची। उसने मुझे आज तक यह बात नहीं बताई और अब मैं इस बात को स्पष्ट करवाने बैठूँ यह मात्र मूर्खता है। ऐसा सोचकर कि सनातन की आँख खुल जाये, ऐसा उपाय करने की उसने सम्पूर्ण योजना बनाई।

उसने उसी समय अर्जुन को बुलवाया। अर्जुन तेजपुर का कुख्यात कोली था। चोरी करना उसका पुश्तैनी धन्धा था। चाहे जितनी मजबूत तिजोरी क्यों न हो अर्जुन उसे आसानी से तोड़ देता था। आँख में कण निकालने के समान वह कठोर से कठोर चौकीदारी में भी माल निकाल लेता था। चोरी करने में अर्जुन इतना निपुण था कि आज तक उसका वार कभी खाली नहीं गया। अर्जुन का यह पेशा आजकल का नहीं था। यह तो उसका पुश्तैनी धंधा था। उसके परिवार में कोई भी कोली का धंधा नहीं करता था। सब का काम चोरी करना था। इस एजेन्सी के कठोर शासन में भी अर्जुन ने अपने वंश-परम्परा से मिले गुणों को बड़ी ही होशियारी से संजोकर रक्खा था।

रसीला ईर्षा और अपार सम्पत्ति का वारिस अपनी कोख से जन्मे बालक को न बनते देखकर ही आज ऐसे घृणित और अमानुषीय कृत्य करने को उतारू हो गई। स्वार्थ और ईर्षा से घिरा मानव चौकड़ी भूल जाता है। वह क्या कर रहा है और इसका परिणाम क्या होगा, इस बात का वह विवेक खो बैठता है। वह आगे-पीछे कुछ भी नहीं सोचता है। सार-असार का भाव भूलकर वह अपने निर्णय को पूरा करने का हर सम्भव प्रयत्न करता है। वह विवेक खो बैठता है। इस समय रसीला इसी प्रकार की ईर्षा और स्वार्थ की भावनाओं में डूबी हुई थी।

उसने अर्जुनसे कहा :

'अर्जुनभाई आज तुमसे एक काम पड़ा है।'

'कहिए बताओ!'

'काम कठिन है, हृदय में हिम्मत है या नहीं?'

'यह कोई पूछने की बात नहीं है। बल्कि हमारा जीवन तो ऐसे ही बीता है और शेष भी ऐसे ही बीत जायेगा।'

'तो फिर सुनलो।' रमीला जितना धीरे बोल सकती थी बोली 'जाबुडा मे एक औरत रहती है।'

'क्या नाम है ?'

'सुना है, इसका नाम ममजू है।'

'अरी वह सबलीगरनी !'

'तब क्या तुम जानते हो ?'

'अरी बहिन यह आप क्या कहती हैं। हम तो घर घर के बतन सब जानते हैं, इसमे यह तो मानव हैं, इसको क्यो कर नही जानेंगे ? आप भी भोली बातें करती हो बहिन।'

'तब क्या यह जाबुडा की ही है ?' ममजू के विषय मे और अधिक जानने के उद्देश्य से रमीला ने प्रश्न किया।

'नही, बाई, नही।'

'तब कहाँ की है ?'

'उसका कौनसा ग्राम है—वह तो गाँव-गाँव भटकती हुई मान पर धार निकालती रहती है।'

'फिर जाबुडा मे क्यो कर रहती है ?'

'इस सबन्ध मे मैं ज्यादा नही जानता पर यह अवश्य जानता हूँ कि इस जाति को कभी गाँव मे रहते नही देखा, यह तो अकेली ही रहती है। कहा जाता है कि लाखा ही उसकी आजीविका चलाता है। यह तो बहुत कानो सुनी बात है, सत्य के विषय मे तो भगवान ही जानता है।'

'लाखा कौन है ?'

'सेठजी का गहरा मित्र।'

'ऐसा !'

'हाँ, बहिन ! सेठ के साथ इसकी गहरी मित्रता है।'

'यह तू क्या कह रहा है ?'

'बहिन मैं इस विषय मे ज्यादा नही जानता हूँ।'

'कैसे ?'

'सिर भी चाहे कट जाए किन्तु लाखा से कोई बात नहीं मालूम हो सकती है।'

'क्या बात करते हो ?'

'बहिन, वह बहुत रंगीला आदमी है। इसमे कोई झूठ नही है।

'पर उसे कौनसा लालच है ?'

'लाखा ढेर के सामने थूकता तक नहीं।'

'समजू को गाँव में आते क्या तुमने कभी देखा है ?'

'आज कई साल पहले वह एक बार गाँव में थार लगाने आई थी उस समय मैंने समजू को देखा था। इसके बाद मैंने कभी भी उसे इस ओर आते नहीं देखा है, किन्तु यह समाचार मिला कि वह जावुड़ा में रहती है। कैसे है व क्या करती है इसका मुझे कुछ भी मालूम नहीं है।'

'तुम्हें एक काम करना है।'

'बहिन, बताओ !,

यद्यपि आस-पास में कोई नहीं था फिर भी एक बार चारों तरफ नजर फेंककर उसने एकान्तता को मापा और दबे स्वर में बोली :

'समजू के एक बेटा भी है।'

'है।'

'इसको सदा के लिए सुला देना है। तदुपरान्त इसके घर में एक सरकारी छापों का कागज मुझे लाकर देना है। इसके साथ-ही-साथ समजू को जावुड़ा छोड़कर चले जाने की धमकी देनी है। बस यही काम है।'

अर्जुन बात सुनकर चौंक उठा। उसको काम की दो बातें समझ में आ गई, कागज लाना, यह तो पलक मारते ही लाया जा सकता है। तथा समजू को जावुड़ा छोड़कर चले जाने की धमकी देना भी ठीक परन्तु दो वर्ष के बालक की गर्दन मरोड़ डालना यह सबसे कठिन काम है। केवल कठिन ही नहीं असम्भव भी है।

'क्यों नहीं हो सकता ?' रसीला ने पूछा।

'होगा तो सही, किन्तु·······'

'देखो अर्जुनभाई मैं यह सारा काम मुफ्त नहीं करवाने वाली हूँ। इस काम करने के मैं पूरे दो हजार रुपए दूँगी। काम जैसे ही पूरा होगा यह थैली तैयार रखी है, समझे ? किन्तु व्यर्थ की बातें करने से रुपया नहीं मिलेगा। यह तो काम करने का पारिश्रमिक है। इसके बाद पाँच साल तक तुम्हें कोई काम करने की जरूरत नहीं।'

'दो हजार·······।' अर्जुन का मन डोलने लगा।

'हाँ, दो हजार रुपया नकद। इसमें एक भी पाई कम नहीं होगी, समझे ? यदि हो सकता हो तो हाँ करना। यदि कहने के बाद बात को इधर-उधर किया तो मेरी जैसी कोई बुरी नहीं होगी। मैं किसी से मुफ्त काम नहीं करवाना चाहती हूँ। तुम इतनी जोखिम उठाते हो अतः तुम्हें उचित पारिश्रमिक

दना यह मेरा परम धर्म है।'

धर्म शब्द कहती रसीला पर अर्जुन ने एक नजर डाली। उसके मन म प्रश्न उठा कि धर्म की चर्चा करने वाला यह बहिन क्यो कर एक-दो साल के मासूम बालक की मरवाने की कह रही है। उसने ललचाई नजर से दो हजार की थैली देखी। रुपए की थैली और बालक के बीच अर्जुन झोके खाने लगा।

आखिर वह कहने लगा. 'ठीक है बहिन मैं कर दूंगा।'

'तब जाओ जो कुछ तैयारी करनी हो करके पहुँच जाओ उस राँड के घर तथा काम पूरा करके जल्दी आ जाओ। मैं तुम्हारी राह देख रही हूँ। प्रात काल का बाल सूर्य उग इससे पहले काम हो जाना चाहिए।'

अब अर्जुन को पुन. दो क्षण विचारो म खोया देखकर रसीला ने पूछा

'कब जाओगे ?'

'आधी रात मे।'

'कौन-कौन जायेगा ?'

'इस काम मे ज्यादा आदमियो की जरूरत नही है। मैं और मेरका बस दो ही बहुत हैं।'

'दूसरा कौन ?'

'मैं और मेरका।'

'मेरका, यह कौन ?'

'मेरा गहरा दोस्त।'

'बात तो नही फैलायेगा।'

'इसके लिए तुम फिक्र मत करो बहिन! इस तरह की कई बातें हमने मन मे रख रखी है, उसमे यह एक और सही। हम चाहे चोरी का पेशा भले ही करें, किन्तु हमारे मन की बात शायद ही कोई जान सके। हमारे पेट म बात समाई रहती है इसमे तनिक भी अन्तर नही है। हम बात के धनी होते हैं। जिस दिन हम दिल की बात कह द उस दिन हमारी दुर्दशा ही होगी। बहिन हमारे प्राण चाहे निकल जाएँ किन्तु हम बात कभी नही खोलत हैं।'

'बस मेरा इतना ही काम है।'

अर्जुन भैंस बाँधने के बाडे मे-से एक काम का बीडा उठाकर बाहर निकला। वह सीधा मेरका के कुए पर गया। बाघरी वाडी के कुत्ते भौं-भौं करके अर्जुन को काटने को लपके परन्तु जैसे ही मेरका ने अर्जुन के पाँव की

आहट सुनी उसने कुत्ते को पुचकारा और कुत्ते ने भौं-भौं करना बन्द कर दिया।

आँख के इशारे में ही अर्जुन ने मेरका को सारी बात समझा दी।

मेरका ने नकाब पहनीं। बाघरी बाड़ी के पिछवाड़े से दबे पाँव दोनों चले और जाम्बुड़ा का मार्ग लिया।

चारों ओर रात्रि का घना अंधकार फैला हुआ था। चारों ओर नीरव शांति थी। किसी प्रकार की कोई आवाज नहीं सुनाई देती थी।

ऐसी नीरव शांति को वेधता हुआ मेरका बोला :

'आज कहाँ हमला करना है?'

'काम बहुत कठिन है।'

'तब भी बता तो सही।'

'तू चुपचाप मेरे पीछे चला आ।'

'पर बात भी बतायेगा।'

'जाम्बुड़ा—समजू के घर पर।'

'इससे क्या मिलेगा? इसमें क्या सार है?'

'सार अन्यत्र है।'

'इसलिए!'

'बहुत धीमी आवाज में अर्जुन ने मेरका को सारी बात बता दी। जाति से मेरका बाघरी था परन्तु काम-काज में वह अर्जुन का अभिन्न मित्र था। दोनों को इस प्रकार के कामों में बड़ा रस था।

रात अँधेरी थी परन्तु तारे चमक रहे थे। उसने रंगीन चूँदड़ी ओढ़ रक्खी थी। हजारों आमला जड़ित ओढ़नी ओढ़कर रात्रि नव-वधू-सी शोभित हो रही थी।

आधी रात बीतते-बीतते दोनों प्राणियों ने जाम्बुड़ा में पाँव रक्खा। सारा गाँव गहरी नींद में सो रहा था। किसी प्रकार की आहट नहीं थी। काम करने के लिए बिल्कुल ठीक समय था। इस पर भी काम पूरा करके सुबह तो पहुँच ही जाना था। तेजपुर जाकर रुपए जो गिनने थे। देरी करने में खतरा था।

'समजू का घर कहाँ है। अर्जुन ने अपने बाजू में चल रहे मेरका से पूछा :

'लाखा के मकान के पास ही रहती है। लाखा ने उसे क्यों कर आश्रय दिया है?'

'मैं इस बात को नहीं जानता हूँ।'

अर्जुन ने चकित भाव से कहा : 'लाखा समजू के रूप पर मोहित हो गया होगा !'

'ऐसा होना सम्भव नहीं है।'

'अरे, सब कुछ सम्भव है।'

'अर्जुन यह सम्भव नहीं है क्योंकि लाखा तो योगी पुरुष-सा है। दूसरों की स्त्री पर वह आँख भी नहीं उठा सकता।'

'मानव मन का क्या पूछना !'

'लाखा इस मार्ग पर नहीं चल सकता है, यह पक्की बात है।'

'तब वह उससे कुटुम्बी-सा व्यवहार करे, उस पर निगरानी रखे, और अपने मकान में स्थान दे, इसका क्या कारण है ?'

'चाहे जो कुछ हो, वह पिघल नहीं सकता है'''और अर्जुन जरा ध्यान रखना पड़ेगा।'

'किसलिए ?'

'लाखा को यदि खबर लग गई तो वह हम लोगों को गाँव से खदेड़कर ही दम लेगा।'

'इतना शक्तिशाली है ?'

'हाँ, हाँ इसके-सा शक्तिशाली इस सारे क्षेत्र में कम ही दिखाई देता है।'

'यह काम भी कोई आसान नहीं। तूने वचन दिया इससे क्या ? यदि मैं तेरी जगह होता तो बिल्कुल इन्कार कर देता।'

मेरका की बात से अर्जुन परेशान हो गया। वह बोला 'अब क्या होगा ?' वह सोचने लगा दो हजार रुपए के लिए कहीं उसका बच्चा निकम्मा न हो जाए। वह इस प्रकार से भय से काँपने लगा।

'सब कुछ ठीक हो जाएगा। खाली हाथ लौटने को तो पाँव रक्खा नहीं ? काम किए बिना कोई उपचार नहीं।'

'अब होक्ला के पीछे से बाहर निकल जायें।'

'हाँ यह बात ठीक।'

दोनों ही चुपचाप नाला कूदकर गाँव के पीछे की ओर चल पड़े। यहाँ से लाखा का मकान सामने ही दिखाई पड़ता था। लाखा के घर से थोड़ी ही दूर समजू का घर था। मकान मिट्टी का था। लाखा ने यह घर खाली करके समजू को रहने को दिया था।

मेरका और अर्जुन मकान के पिछवाड़े का सहारा लेते हुए समजू के मकान के पीछे आकर खड़े हो गए। मेरका ने छलाँग मारकर छप्पर के ऊपर की दीवार पकड़ ली। खपरैल उठाकर अन्दर नजर डाली तो

उसने देखा कि समजू और उसका लाड़ला गहरी नींद सो रहे हैं। दो वर्ष का फूल-सा कोमल बालक माँ की गोद में निर्भयता से गहरी नींद में सो रहा था।

कुछ देर तक मेरका की आँखें बन्द हो गई ! उसे ऐसे फूल से निर्दोष बालक की हत्या करने में घृणा हुई। उसका दिल काँपने लगा, इसके साथ-ही साथ पाँव काँपने लगे और इससे उसके साथ ही उस हाथ से छुरा गिर पड़ा। यह चाकू समजू के सिर से ठीक एक इंच दूर जमीन में धँस गया। इस खड़खड़ाहट से समजू की आँख खुल गई। खपरेल हटाकर किसी आदमी को घुसते देखा। यह देखकर समजू ने कोने में रखा भाला उठाया और ऊपर से आने वाले आदमी को ललकारा :

'अब यदि नीचे उतरने का प्रयास करोगे तो गोद दिए जाओगे।'

मामला बिगड़ा।

'इतने में ही अर्जुन ने एक छलाँग मारी और वह भी छत पर चढ़ गया तथा समजू भाला ऊँचा उठाए कि इससे पूर्व उसने समजू के हाथ से भाला पकड़ लिया। अर्जुन के साथ-ही-साथ मेरका भी नीचे कूदा। समजू दो लम्बे-तड़ंगे पुरुषों के सामने भाला लेकर खड़ी हो गई।

'हमें हमारी आजीविका, रोटी की बात करने दे, हम तेरा नुकसान नहीं करेंगे।'

'बोलो !' समजू की आँखें बिल्कुल लाल सुर्ख हो गई थीं।

'हम लोग जघन्य काम करने आये थे।'

'क्यों, क्या तुम्हारे घर में माँ-बहिन नहीं है।'

'नहीं बहिन, हम ऐसे व्यभिचारी नहीं हैं।'

'तब ?'

रुपए के लोभ में हमारा मन बिगड़ गया'''और इस बालक का काम-तमाम करने आए थे। किन्तु'''इसका सुन्दर गौरवपूर्ण मुँह देखकर मेरा हाथ काँप गया और छुरा हाथ से गिर जाने के कारण यह आवाज हो गई।

'अब तुम्हारी क्या इच्छा है ?'

'इच्छा तो क्या दूसरी होगी ? काम तो करके जाना ही है।'

'यदि जीवित लौटने की आशा करते हो और जाना चाहते हो तो खाली हाथ लौट जाओ !'

'ऐसा सम्भव नहीं है। वचन दिया है।'

'तब सावधान हो जाओ।'

'इतनी जल्दी मत कर' मेरका बोला :

'जो कहना हो वह जल्दी से कह दो जिससे बात का पता लग जाये।'

'सबके बचने का एक रास्ता है।'

'कहो ?'

'तू बच्चे को लेकर यहाँ से चल दे।'

'मेरा क्या अपराध ?'

'तेरा कोई अपराध नही किन्तु हमे दो हजार रुपया लेना है। यदि यह स्वीकार न हो तो आज नही तो कल हम इस फूल से निर्दोष बालक को मौत के घाट उतारना होगा। वर्ना दो हजार रुपया नही मिल सकता ?'

'क्या तुम मेरे लाडले का अपराध बताओगे ?'

'यह तो जिसने हमे भेजा है वह जाने।'

'वह कौन है ?'

'सम्भव है इसमे उसका कोई रहस्य हो ? ऐसा व्यर्थ का सवाल तू क्यो पूछती है ?'

समजू की भाले की पकड अब ढीली हो गई। इन भयकर काले-कलूटे आदमियो की बात मे उसे औचित्य लगा। उसने अपने लाडले का हित इस क्षेत्र को छोड जाने मे ही लगा, वह सोचने लगी, परन्तु इस समय भी उसकी आँखें उन दोनो को देखती रही।

'बोल बाई, जो कुछ कहना है जल्दी से बता दे।'

'मैं चली जाऊँगी।'

'पर ध्यान रहे सूर्य न उगे इससे पहले तू यहाँ से चली जाना।'

'मुझे तुम्हारी बात मजूर है।'

'यदि इसमे कुछ भी परिवर्तन हुआ तब ?'

'मेरा तुम लोग सिर उतार लेना।'

'एक बात और है।'

'क्या ?'

'कुछ लिखत का कागज भी है। वह इधर सौप।'

'मेरे पास नही है।'

'तब ?'

'लाखा के पास है।'

लाखा की बात आते ही दोनो ने बात करना बन्द किया और दरवाजा खोल कर रात के अँधेरे मे लीन हो गए। जैसे ही ये गए समजू ने तुरन्त कोठी मे रखा, सात कपडो मे लपेटा, जीवन से भी प्यारा दस्तावेज निकाला और झट से अँगिया मे छिपा लिया। ओढनी की गठरी बाँधी और नीद मे सोये प्रताप को लेकर वह मीणसार नदी के क्षेत्र

न जाना हो चल पड़ा।

ठीक इसी समय अर्जुन ने भैंस के वाड़े में खड़ी रसीला से दो हजार रुपयों की थैली ले ली। अर्जुन ने रसीला को बताया कि सब काम हो गया किन्तु दस्तावेज नहीं मिला। उसने बताया कि चूहों ने कुतर दिया।

'ठीक, वह रांड़ तो चली गई ?'

'अब यदि आप किसी दिन उसे जात्रुड़ा में देखें तो हमें कहना।'

रसीला ने एक संतोष की साँस ली। उसकी तीव्र ईर्षाग्नि शांत हो गई।

अखाड़े के आश्रय में

सनातन के अगाध प्रेम के प्रतीक प्रताप को लेकर गगजू बड़ी तेजी से मीणसार नदी का तट लांघने लगी। उसे यह भान नहीं था कि वह कहाँ जा रही है। उसके मन में यह बात भलीप्रकार से घर कर गई कि उसे अपने लाड़ले को जीवित रखना है तथा दस्तावेज को भी सुरक्षित रखना।

अब भी उसकी आँखों के सामने, दो व्यक्तियों की दैत्याकार छाया रह-रहकर आ जाती थी। प्रातःकाल का प्रसन्न करने वाला वातावरण चारों ओर फैला हुआ होते हुए भी उसका अंग-अंग जल रहा था। उसके मन में गहरी उथल-पुथल हो रही थी।

वह मन-ही-मन सोचने लगी मैंने जीवन में कभी किसी के लिए बुरा काम नहीं किया, तब कौन ऐसे बुरे काम करवाने वाला होगा। उसकी तेज चाल के समान ही उसके विचारों में तेजी थी। उसे यह भान नहीं था कि उसे कहाँ जाना है। भगवान् के सहारे वह चली जा रही थी। नदी का सीधा किनारा छोड़कर अब उसने आड़ा-टेढ़ा मार्ग पकड़ा। वह प्रताप को गोद में लिए हुए ऊँचे गड्ढे-टीले पार करती हुई बड़ी तेजी से चली जा रही थी।

सूर्योदय होने वाला था। उषःकाल होने में अब कुछ ही घड़ियाँ शेष थीं, ठीक इसी समय उसने सामने की चढ़ाई पार की। इसी समय भगवान् भास्कर की किरणें भूमि पर पड़ने लगीं।

लगातार चलते रहने के कारण समजू थककर चूर-चूर हो गई थी, पर चलने के सिवाय उसके पास कोई उपाय भी नहीं था। प्रताप को साक्षात् यमराज के हाथों से छुड़ाकर वह भागी जा रही थी। यदि इसमें तनिक भी शिथिलता बरती जाय तो एक पल के सौवें भाग में जीवन का अनमोल रत्न खाक में मिल जाए। उसकी नजर सामने के वृक्षों के एक घने झुण्ड पर पड़ी। वह इस झुण्ड में घुस गई। जैसे ही वह अन्दर घुसी तो उसने देखा कि इन वृक्षों के चारों ओर एक बाड़ बनी हुई है। उसके मन में शांति आई। वृक्षों की टहनियों पर बैठे पक्षी प्रातःकाल की मस्त हवा के कारण कलरव कर रहे थे। सारा वातावरण हृदय में शांति करने वाला था। उसने बाड़ में बना दरवाजा खोला और बिना किसी भय के अन्दर घुस गई। इस बाड़े के मध्य में एक धूनी थी जिसमें दहकते अँगारे जल रहे थे। इन अंगारों के सामने अखंड आसन लगाए एक साधू बैठा था। साधू लम्बे कद का था, भाल अति विशाल और सारा शरीर धूनी की भस्म से रँगा हुआ था। परन्तु साधु के चहरे से निर्मलता टपक रही थी। प्रताप को गोद में लिए समजू वहाँ झट से बैठ गई—बैठ जाना पड़ा। क्योंकि अब थकान के कारण वह इतनी परेशान हो गई थी कि वह एक भी कदम आगे नहीं चल सकती थी। समजू की आहट से धूनी के साधु की पलकें एकदम खुलीं। जैसे ही आँखें खुलीं कि नशे में हुई लाल सुर्ख आँखों से अंगारे निकलते प्रतीत हुए। फिर भी न तो समजू ही डरी और न प्रताप ही डरा।

'माताजी यहाँ क्योंकर आई हो?'

'आश्रय लेने।'

'माताजी यह तो गोदड़नाथ का अखाड़ा है। फक्कड़ लोगों का स्थान।'

'बापू! जो भी हो·····।'

'माताजी यहाँ तो फक्कड़ ही रह सकते हैं।'

'मैं भी फक्कड़ ही हूँ।'

'समजू का उत्तर सुनकर साधू हँसा।'

'फक्कड़ से मतलब अखाड़े में रहने वाला साधू। माताजी आप यहाँ नहीं रह सकती हैं।'

'तब मैं कहाँ जाऊँ ?'

'जाने को सारा देश जो है।'

'सारा देश मुझे पीस देगा।'

'माताजी यह तो गुरु गोदडनाथ का अखाडा है। स्त्री जाति की छाया मात्र से यहाँ तो छूत लगती है।'

समजू फफक उठी।

'बापू मैं कहाँ जाऊँ ? मैं निराश्रय हूँ। ससार मुझे पीस देगा। आश्रय लेने आई हूँ। आपकी बच्ची बनकर रहूँगी। मुझे आश्रय दीजिए। मैं तुम्हारी गाय हूँ। इस अबला पर दया कीजिए।'

'पर माताजी अखाडे मे स्त्री जाति का रहना सम्भव नही। इससे गुरु गोदडनाथ की कडी नजर हो जायेगी।'

'बाबा, मैं संसार मे नही रह सकती। यदि आप मुझे आश्रय नही देंगे तो मैं और मेरा यह कोमल फूल आत्म-आहुति दे देंगे। बापू, मुझ अबला का उद्धार करो।'

'माताजी यहाँ पर पन्द्रह अखाडी मल्ल साधु रहते हैं। जो गुरु गोदड नाथ के शिष्य हैं। इनके बीच आप अकेली स्त्री कैसे रहोगी ?'

'इन वृक्षो की छाया मे पड़ी रहूँगी।'

'क्या तुम इस वीरान जगल में रह सकोगी ?'

'हाँ, बापू तनिक दया करो। इस भेष को उज्ज्वल करो। यदि आप ना कहेंगे तो आप को एक स्त्री व बाल-हत्या का पाप लगेगा।'

'दहकते अँगारो को हाथ से इधर करते हुए अखाडीमल्ल बाबा ने थोडी देर के लिए आँखें मूदीं। समजू इस देव-सी प्रतिमा को चुपचाप देखती रही। धूनी के पानी के झरने में शेर-सियार एक साथ पानी पिलाने वाले, बाघ-नँदुओ को हाथ से खिलाने वाले गुरु गोदडनाथ के सातवें उत्तराधिकारी यह अखाडीमल्ल गेबीनाथ थे। इनके नीचे अन्य पन्द्रह फक्कड और थे। इनका तप बहुत था। इनके तपोबल से गुरु गोदडनाथ की यह धूनी अखण्ड रूप से चल रही थी।

थोडी देर मे बाबा गेबीनाथ ने फिर आँखें खोली। समजू ने उनकी बात सुनने के लिए कान खोले।

गेबीनाथ बोले :

'माताजी क्या आपको पन्द्रह फक्कडो के बीच रहना मजूर है ?'

'मजूर है।'

'इस धूनी से बहुत दूर रहना होगा।'

'यह भी मंजूर है।'

समजू ने प्रताप को पालने के लिए गुरु गोदड़नाथ की धूनी का आश्रय लिया। इस स्थान पर कोई नहीं जाता था। इस धूनी की प्रतिभा इतनी तेज थी कि किसी के आने का साहस नहीं होता था। अतः समजू और प्रताप निश्चिन्त थे। दोनों को जीवन-दान देने के लिए गोदड़नाथ ने अखाड़े के नियमों को तोड़ा। परन्तु सत्य तो यह है कि उन्होंने एक साथ दो प्राणियों को सहारा देकर अखाड़े की सार्थकता सिद्ध की थी।

सनातन का खून

भाई का खून हो गया।

यह भयंकर समाचार सुनते ही सब पर मानो बिजली गिर पड़ी। इस प्रकार की दु:खद खबर से सभी कर्तव्य-विमूढ बन गए। गाँव के आदमी तरखीगडा की घाटी की ओर चल पड़े। प्रात:काल होते-होते तो तरखीगड़ा की घाटी मे अपार जनसमूह दिखाई देने लगा। गाँव वालो ने मृतक शरीर को घेर रक्खा था। इस भयंकर कुकृत्य से उनके हृदय हिल उठे, क्योंकि वह सबका सहारा था, दुखियो का स्वामी था, व्याकुल व्यक्तियो के लिए मार्ग-दर्शक था। वह क्या था और क्या नही था, वास्तव मे यह कहना कठिन था।

रसीला तो यह समाचार सुनते ही बर्फ-सी जम गई। विवाह हुए अभी सात वर्ष भी नही हुए कि उस पर यह कठोर वज्रपात हुआ। उसका करुण विलाप सुनकर पेड भी कांपने लगे। परमात्मा के सिवाय उसका अब कोई नही रहा। ससाररूपी मंच पर अब वह अकेली और नि:सहाय थी।

उसके रोने में 'सनातन—मेरे सनातन धोखा दे गये' आदि शब्द सुनाई देते थे। 'तुम इतनी निष्ठुरता क्यों कर बैठे' आदि शब्दों के लगातार सुनने से हृदय रोने लगता था। उसका लगातार करुणाजनक रुदन सुनकर आसपास के लोगों को लगा कि उनका हृदय इस रुदन से फट जायगा। गाँव की दो-चार बुजुर्ग औरतों ने उसे पकड़ कर आश्वासन देना शुरू किया।

'तुम इतनी बड़ी और सयानी होकर भी ऐसा करती हो? तुम तो पढ़ीलिखी हो, तनिक समझ से काम लो। चलो, उठो।'

लोगों को सनातन के खून की बात पहली बार बिल्कुल झूठी लगी। क्योंकि इस सारे परगने में भाई पर अंगुली उठाने की किसी की हिम्मत होना, असम्भव था। फिर भी यह सब क्यों कर हुआ यह बात समझ में नहीं आ रही थी किन्तु जब ताल्लुके की पुलिस हमीर बोरिचा को हाथों में हथकड़ियाँ पहनाकर लाई तो सारी बात स्पष्ट हो गई और सबकी आँखों के सामने हींफली के कब्जा लेने का दृश्य आ गया। उस दिन भाई ने हमीर का पानी उतार दिया था। परन्तु हमीर अति नीच निकला। सनातन ने उसका काम आधीरात में किया था किन्तु उसने उपकार का बदला अपकार से दिया।

ताल्लुके के अधिकारियों ने हमीर बोरिचा को मार-मारकर अधमरा-सा कर दिया किन्तु इससे सनातन का जामगी से छिदा पार्थिव शरीर जागने वाला नहीं था। भोर होते ही हमीर को मुश्कियों से बाँधकर घाटी में लाया गया।

घाटी में सनातन का शरीर पड़ा हुआ था। बावली अभी तक भी सनातन के शरीर के चारों ओर चक्कर लगा रही थी। वह किसी को भी सनातन के पास नहीं फटकने दे रही थी। उसके सदा ही कोट के बंद रहने वाले बटन आज खुले थे। बालों की कपाल पर आई दो लटें खून में तरबतर होकर चिपक गई थीं। छाती के बाईं ओर बन्दूक का घाव था। इस सारे भाग में एक काला मोटा धब्बा बन गया था। बाईं ओर का मांस बाहर निकल गया था, फिर भी चहरे से सौम्यता टपक रही थी। मृत्यु की चिरनिद्रा में सोता हुआ सनातन ऐसा लगता था मानो अभी उठ बैठेगा।

दोपहर तक तो यह दर्दनाक समाचार परगने में फैल गया। सबके बने-बनाये भोजन बेकार होगए। बालक तक भी एक कौर नहीं लेते थे। सबके मन में दुःख की गहरी काली रेखायें छागई थीं। सरकारी अधिकारियों को एक गहरा धक्का लगा।

जमनदारों ने हमीर को मार-मारकर अधमरा कर दिया। भाई का खून उसी ने किया है यह बात साबित हो चुकी थी किन्तु मौके का गवाह न होने के कारण पुलिस कोई कानूनी कार्यवाही करने में असमर्थ थी। उसके

सारे प्रयत्न बेकार रहे। पुलिस ने आखिर पी
छोड दिया। इससे सारे परगने मे उसका ड
काँप उठा। परन्तु किसी की हिम्मत नहीं
बता सके।

हमीर सनातन पर आक्रमण कर
यह बात मानने को कोई तैयार नही था
पर टूट पडता है ऐसे ही धोखा देने के
करने के लिए तरशीगडा की घाटी का आश्रय लिया।
जबसे सनातन ने लिया तब से हमीर को चैन नही था। उस दिन
मन-ही-मन बडा व्याकुल था। उसके हाथ चलायमान हो रहे थे। वह सोचता था जबतक उसके हाथ सनातन के खून से न रँग जाएँ तबतक उसे स्वर्ग मे भी चैन नही मिलने वाला है। किन्तु सनातन पर दृष्टि डालने से मतलब साक्षात् यमराज को आमन्त्रित करना ही था। यह बात सनातन के सम्बन्ध में सही थी और वोरिचा भी इसे जानता था इसीलिए आगे होकर सनातन को ललकारने की वोरिचा की हिम्मत नही थी। ऐसा करने मे उसे अपना जीवन खोने का भय लगता था और इसलिए सनातन का कामतमाम करने के लिए उसने तरशीगडा की घाटी का आश्रय लिया। जामगी मे चार अगुल बारूद दबाकर वह अधेरे मे छिपकर बैठ गया।

थानेदार की बदली होने के कारण सनातन शाम के समय पार्टी मे शामिल होने गया था। वहाँ से निकलने म देरी होगई। जेब में छह फायर की पिस्तौल थी। साथ मे बावली थी और अथाह हिम्मत। अत रात्रि की भयकरता की उसे बिलकुल चिन्ता नही थी। भय जैसा शब्द तो उसके जीवन मे कभी नही आया था। उसे अपनी ताकत का पूरा भरोसा था।

अधिक रात हो जाने के कारण थानेदार ने रुक जाने को कहा था। उनका आग्रह था कि 'भाई रुक भी जाओ।' प्रात आराम से चले जाना। इस समय व्यर्थ मे जोखिम उठाने से क्या लाभ।

थानेदार ने यदि आग्रह मे जोखिम शब्द प्रयुक्त न किया होता तो सनातन कदाचित ठहरने की सोच सकता था किन्तु जोखिम शब्द ने उसकी खुमारी को ललकार दिया। इसलिए उसने उसी समय तालुका छोडकर अपने घर ही जाकर विश्राम करने का निश्चय किया और तुरन्त बावली पर सवारी की। उसे स्वप्न म भी कल्पना न थी कि आज उसे खाक मे मिलाने के लिए हमीर वोरिचा तरशीगडा की घाटी में छिपकर बैठा है। घाटी मे घुसने से पहले ही रात हो चुकी थी। बावली एकसी रफ्तार से दौड रही थी। पवन घनघोर जगल मे सूँ-सूँ करके बह रहा था। सारे जगल मे चारो

उसके रोने में 'सनातन—मेरे सनातन धोखा दे गये' आदि शब्द सुनाई देते थे। 'तुम इतनी निष्ठुरता क्यों कर बैठे' आदि शब्दों के लगातार सुनने से हृदय रोने लगता था। उसका लगातार करुणाजनक रुदन सुनकर आसपास के लोगों को लगा कि उनका हृदय इस रुदन से फट जायगा। गाँव की दो-चार बुजुर्ग औरतों ने उसे पकड़ कर आश्वासन देना शुरू किया।

'तुम इतनी बड़ी और सयानी होकर भी ऐसा करती हो? तुम तो पढ़ीलिखी हो, तनिक समझ से काम लो। चलो, उठो।'

लोगों को सनातन के खून की बात पहली बार बिल्कुल झूठी लगी। क्योंकि इस सारे परगने में भाई पर अंगुली उठाने की किसी की हिम्मत होना, असम्भव था। फिर भी यह सब क्यों कर हुआ यह बात समझ में नहीं आ रही थी किन्तु जब ताल्लुके की पुलिस हमीर बोरिचा को हाथों में हथकड़ियाँ पहनाकर लाई तो सारी बात स्पष्ट हो गई और सबकी आँखों के सामने हींफली के कब्जा लेने का दृश्य आ गया। उस दिन भाई ने हमीर का पानी उतार दिया था। परन्तु हमीर अति नीच निकला। सनातन ने उसका काम आधीरात में किया था किन्तु उसने उपकार का बदला अपकार से दिया।

ताल्लुके के अधिकारियों ने हमीर बोरिचा को मार-मारकर अधमरा-सा कर दिया किन्तु इससे सनातन का जामगी से छिदा पार्थिव शरीर जागने वाला नहीं था। भोर होते ही हमीर को मुश्कियों से बाँधकर घाटी में लाया गया।

घाटी में सनातन का शरीर पड़ा हुआ था। बावली अभी तक भी सनातन के शरीर के चारों ओर चक्कर लगा रही थी। वह किसी को भी सनातन के पास नहीं फटकने दे रही थी। उसके सदा ही कोट के बंद रहने वाले बटन आज खुले थे। बालों की कपाल पर आई दो लटें खून में तरबतर होकर चिपक गई थीं। छाती के बाईं ओर बन्दूक का घाव था। इस सारे भाग में एक काला मोटा धब्बा बन गया था। बाईं ओर का मांस बाहर निकल गया था, फिर भी चहरे से सौम्यता टपक रही थी। मृत्यु की चिरनिद्रा में सोता हुआ सनातन ऐसा लगता था मानो अभी उठ बैठेगा।

दोपहर तक तो यह दर्दनाक समाचार परगने में फैल गया। सबके बने-बनाये भोजन बेकार होगए। बालक तक भी एक कौर नहीं लेते थे। सबके मन में दुःख की गहरी काली रेखायें छागई थीं। सरकारी अधिकारियों को एक गहरा धक्का लगा।

जमन्दारों ने हमीर को मार-मारकर अधमरा कर दिया। भाई का खून उसी ने किया है यह बात साबित हो चुकी थी किन्तु मौके का गवाह न होने के कारण पुलिस कोई कानूनी कार्यवाही करने में असमर्थ थी। उसके

सारे प्रयत्न बेकार रहे। पुलिस ने आखिर पी
छोड़ दिया। इससे सारे परगने में उसका अ
कांप उठा। परन्तु किसी की हिम्मत नहं
बता सके।

ह करने के लिए
सनातन नाला
बोरिचा के
करती
ई।

हमीर सनातन पर आक्रमण कर
यह बात मानने को कोई तैयार नही था
पर टूट पडता है ऐसे ही धोखा देने के
करने के लिए तरशींगड़ा की घाटी का आश्रय लिय।
जबसे सनातन ने लिया तब से हमीर को चैन नही था। उस ।८५
मन-ही-मन बड़ा व्याकुल था। उसके हाथ चलायमान हो रहे थे। वह सोचता था जबतक उसके हाथ सनातन के खून से न रँग जाएँ तबतक उसे स्वर्ग मे भी चैन नही मिलने वाला है। किन्तु सनातन पर दृष्टि डालने से मतलब साक्षात् यमराज को आमन्त्रित करना ही था। यह बात सनातन के सम्बन्ध मे सही थी और बोरिचा भी इसे जानता था इसीलिए आगे होकर सनातन को ललकारने की बोरिचा की हिम्मत नहीं थी। ऐसा करने मे उसे अपना जीवन खोने का भय लगता था और इसलिए सनातन का कामतमाम करने के लिए उसने तरशींगड़ा की घाटी का आश्रय लिया। जामगी मे चार अंगुल बारूद दबाकर वह अंधेरे में छिपकर बैठ गया।

थानेदार की बदली होने के कारण सनातन शाम के समय पार्टी मे शामिल होने गया था। वहाँ से निकलने में देरी होगई। जेब में छह फायर की पिस्तौल थी। साथ मे बावली थी और अथाह हिम्मत। अत. रात्रि की भयंकरता की उसे बिल्कुल चिन्ता नही थी। भय जैसा शब्द तो उसके जीवन में कभी नही आया था। उसे अपनी ताकत का पूरा भरोसा था।

अधिक रात हो जाने के कारण थानेदार ने रुक जाने को कहा था। उनका आग्रह था कि 'भाई रुक भी जाओ।' प्रातः आराम से चले जाना। इस समय व्यर्थ में जोखिम उठाने से क्या लाभ।

थानेदार ने यदि आग्रह में जोखिम शब्द प्रयुक्त न किया होता तो सनातन कदाचित ठहरने की सोच सकता था किन्तु जोखिम शब्द ने उसकी खुमारी को ललकार दिया। इसलिए उसने उसी समय ताल्लुका छोडकर अपने घर ही जाकर विश्राम करने का निश्चय किया और तुरन्त बावली पर सवारी की। उसे स्वप्न में भी कल्पना न थी कि आज उसे खाक में मिलाने के लिए हमीर बोरिचा तरशींगडा की घाटी में छिपकर बैठा है। घाटी में घुसने से पहले ही रात हो चुकी थी। बावली एकसी रफ्तार से दौड रही थी। पवन घनघोर जंगल मे सूं-सूं करके बह रहा था। सारे जगल मे चारो

उसके रोने ग

सुनाई देते थे। ...ा साम्राज्य था। मेंदो से सियारों की लम्बी-लम्बी हूकें आ सुनने से हृदय' प्रकार की आवाजों के सिवाय कोई आवाज नहीं आरही थी। आसपास ...ीर ने बावली के पाँव की आवाज सुनी और वह झट से आक्रमण की दो-' लिए सावधान होगया। आज उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि जीवन से मौत अच्छी है, जो मैं आज मेरी हींफली का कब्जा ...ुड़वाने वाले सनातन से वैर का बदला न ले लूँ। मेरी आंखें उसे जीवित नहीं देख सकती हैं।

उसने कंधे पर पड़ी जामगी को हलके से सहलाकर दाहिने हाथ में पकड़ा। दोनों आँखें मूँदकर उसने भगवान् को याद किया और फिर घाटी की एक गुफा में छिपकर बैठ गया। वह यह सोचकर तनिक शिथिल हुआ कि यदि इससे पहले सनातन ने जो फायर कर दिया तो वह स्वयं बच नहीं पायेगा। परन्तु फिर उसने अपने मन को मजबूत कर लिया। उसने अपने कंधे में लटकती जामगी को ढीला किया, वह एक फायर कर सकता था जबकि उसके दुश्मन के पास ऐसी पिस्तौल थी जो एक साथ छह-छह फायर कर सकती थी। वह यह भलीभाँति जानता था कि जामगी यदि तनिक भी निशाना चूक गई तो उसका शरीर छलनी की भाँति बींध दिया जायगा। अतः वह क्षण-क्षण की सावधानी रख रहा था।

सनातन के जीवित रहते उसे हींफली मिल जाना असंभव था। लेकिन इसके बाद भी यह काम अति कठिन था। फिर भी एक-एक करके सब ठीक करने की सोचता था। वह यह जानता था कि सनातन के जीवित रहते सारे परगने में उसे एक भी पैसा उधार नहीं मिल सकेगा? उसे इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं था कि सनातन का सरकारी अधिकारियों पर इतना प्रभाव है कि उसके कहने पर वे परगने की सारी जमीन रौंद सकते हैं तथा दोषी को पाताल में से भी खैंच कर ला सकते हैं। इस प्रकार हमीर सनातन को मारकर उसे अपनी वैमनस्यता को शान्ति देना तथा पेट के लिए उपार्जन करना था। हमीर सनातन को मारकर एक ही तीर से दो पक्षियों का शिकार करना चाहता था।

जामगी को उसने अपने फौलादी हाथों से मजबूती से पकड़ लिया। बावली की टॉपें धीरे-धीरे नजदीक-से-नजदीक सुनाई आने लगीं। भयंकर घाटी में हमीर की दोनों आंखें भूखे भैरव के समान अंगारों सी चमक रही थीं।

घाटी में सनातन की काली छाया घुमी। गहन अंधकार के कारण कुछ भी दिखाई देना सम्भव नहीं था। केवल घोड़ी की चाल और उसकी हलचल से हमीर को अपना निशाना साधना था। वह गुफा में व्यवस्थित

होकर बैठ गया। प्राण लेने वाली जामगी को साधा। फायर करने के लिए उसे अभी सब्र करना था। सनातन अभी दूर था। ज्यों ही सनातन नाला पार कर पास में आया कि पूरी भरी जामगी की लिपलिपी पर थोरिया के हाथ की अंगुली हिली और दबी हुई गोली सन-न्...... न् की आवाज करती हुई निकली और सनातन और छाती को चीरती हुई जंगल मे निकल गई। सनातन के पास सोचने को समय नही था। उसके मुँह से निकला 'अरे नामर्द दूर हो! धोखे से?...... हमीरिया! तूने पृथ्वी पर पुरुषत्व को लज्जित किया है.........खदड़.........।

किन्तु हमीर तो रात्रि के अंधेरे में कपड़ा ओढकर घाटी में से दुम दबाकर भाग गया था। छिदी छाती से खून के फव्वारे छूट गए। सनातन की आँखो के सामने अंधेरा छागया। घाव को दबाकर वह बावली पर गिर पडा और एक हाथ से उसने लगाम पकड़ ली। कुछ ही देर में वह परलोक सिधार गया। उसका चैतन्यहीन शरीर जमीन पर गिर पड़ा।

भयंकर रात्रि की लाखो आँखो ने इस घाटी में घटित भयंकर दिल दहलाने वाली घटना देखी।

उत्तराधिकारी

रात काफी बीत चुकी थी। आकाश में गहरे बादल छाये हुए थे। तेजपुर के सभी व्यक्ति सो गए थे। सारे वातारण में नीरव शांति का साम्राज्य था। हवा भी शांत थी। वृक्ष भी तपस्वी के समान स्थिर होकर खड़े थे। घन-घोर अँधेरा था जिसमें हाथ-को-हाथ दिखाई नहीं देता था। सोनमती की धारा भी शांत थी।

ठीक ऐसी नीरव रात्रि में दो काली छायाओं ने तेजपुर के सींवान में पाँव रखा। दोनों की चाल एक सी थी। दोनों इस धरती के स्वामी की भाँति जल्दी-जल्दी रास्ता तय कर रहे थे। दोनों के मुख-मण्डल पर कभी शोक तो कभी भय की रेखायें उभरती जा रही थीं। लम्बा रास्ता पार कर चुकने के कारण ये छायायें थककर चूर हो चुकी थीं। परन्तु समय ऐसा ही था कि जोखिम उठाने व पंथ काटने के सिवाय कोई उपचार नहीं था। शरीर चाहे थक कर चूर-चूर हो जाय या गल जाय किन्तु चलने के सिवाय कोई उपाय नहीं था।

जब ये दोनों गाँव में पहुँचे तो सारा गाँव सूनसान था। सदा ही सुन्दर लगने वाला यह तेजपुर आज प्रेतनियों के आवास-सा प्रतीत होता था। घरों की दीवानी-दीवारों की गोलाई में दरारें पड़ चुकी थीं। कुत्तों के भौंकने

से सूनसान वातावरण और भी भयंकर लगता था। भौंकते हुए कुत्तों को चुप करवाने वाला कोई नही था।

तेजपुर की यह दुर्दशा देखकर लम्बी छाया ने एक गहरा सांस लिया उसे तेजपुर की स्थिति पर करुणा आई। किसी समय उसने गांव की रौनक देखी थी। उस रौनक के स्मरण मात्र से ही उसका दिल कांपने लगा। उसका दिल द्रवित हो गया। उसने सोचा कहाँ उस दिन का तेजपुर और कहाँ आज का तेजपुर! मात्र एक ही आदमी अपने साथ कितना ले गया! निराश्रितों का सहारा, भूखों की रोटी और गाँव का तेज यह सब उसके साथ चल दिए। जैसे-जैसे उसे इस प्रकार के विचार आने लगे वैसे-ही-वैसे उसकी अतीत में गढ़ी स्मृतियाँ इस गहन अन्धकार में नग्न नृत्य करने लगी।

सीवान के घन-घोर बरगद के पास पांव रखते ही चारों पांवों को समेट कर खुली आँखें सो रहे एक कुत्ते ने इन दोनों छायाओं को देखकर भौंकना शुरू किया तुरन्त दोनों तैयार हो गए। दोनों घने बरगद के तने की आड़ मे छिप गए। थोड़ी देर के बाद कुत्ता इस विचित्रता से स्तब्ध होकर इधर-उधर व्यर्थ के चक्कर लगाकर अन्धकार में लोप हो गया। दोनों अब धीमे से आगे बढ़े।

थोड़ी देर मे दोनों सनातनसेठ के घर के पास आकर ठहरे। इधर-उधर नजर दौड़ाकर उन्होंने दरवाजे का कुन्दा खटखटाया।

दरवाजे के खटखटाने के साथ ही अनिद्रा के रोगी जयसिंह भाई ने कहा:

'कौन?'

'यह तो मैं गोमती हूँ।'

'इस समय कैसे आई?'

'माताजी से मिलना है।'

'सम्मान के कारण सब लोग रसीला को माताजी कहकर पुकारते थे।

आयु के कारण जयसिंह की आँखों की भौंहों के बाल सफेद हो चुके थे। उनकी नजर कम हो गई थी। शरीर का बुझने वाला दीपक अपना शेष तेज फैलाने को अति आकुल हो रहा था। जयसिंह भाई ने दरवाजा खोला और दोनों छायायें अन्दर घुसी।

'तब तेरे साथ यह दूसरा कौन है?' जयसिंह भाई ने पूछा।

'मेरा लाड़ला।'

'चलो, जाओ। इस समय भी तुम लोगों को चैन नही।' कहते हुए जयसिंह भाई ने फाटक का दरवाजा बड़ी तेज आवाज से बंद कर दिया।

असमय मे ही वैधव्य के भार में बुरी तरह दबी हुई रसीला अन्दर के कमरे मे सो रही थी। कमरे के कोने में मंद प्रकाश से एक दीपक जल रहा

था। वियोग में बराबर रोती रहने से उसकी आँखें सूजी हुई थीं। वह करवटें बदल रही थी। लाख कोशिश करने पर भी उसे पलभर भी नींद नहीं आरही थी। वह आँखों की नींद खो चुकी थी।

आने वाली छाया कमरे में जाकर रुक गई।

कमरे के बाहर जाकर वह कुछ सोचने लगी। उसमें अब इतनी शक्ति नहीं थी कि वह दरवाजा खटखटा सके। उसका सारा शरीर असीम वेदना के कारण झनझना उठा।

अत्यन्त साधन-सम्पत्ति से भरा हुआ घर होने पर भी इस समय वह बिना प्राण के शरीर-सा लगता था। दरवाजा खटखटाने को बढ़ा हाथ एक बार फिर से रुक गया। किन्तु अबतक विवशता से दबाया हुआ रुदन फूट पड़ा। वह हिचकियाँ भरने लगी। खुली आँखों सोती रसीला, हिचकियों की आवाज सुनकर उठी। उसने दीपक की रोशनी तेज की और कमरे का दरवाजा खोला।

'तुम कौन हो ?'

'तुम्हारी-सी एक दुखिया।'

शोक-सागर में अविरल-रीति से लगातार सात रात्रियों तक डुबकियां लगाने वाली और भग्न-हृदया रसीला को देखकर आने वाली स्त्री अपने आँसुओं को नहीं रोक सकी। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी।

'बहिन रो मत। तुझे क्या दुःख है ? बहिन शांत रहो।'

'बहिन तुम्हें जो दुःख है वही दुःख मुझे भी है। अब बताओ कौन किसका दुःख मिटा सकेगा ?' यह कहते हुए उसने अपनी काली ओढ़नी हटाई और दीपक के प्रकाश में अपना रूप दिखाया।

यह रूप देखकर रसीला पहले तो चौंकी परन्तु फिर स्वस्थ होते हुए बोली :

'कौन ?'

'मेरा नाम समजू है, बहिन !'

'मुझे बहिन मत कह।'

'तब क्या कहूँ ?'

'कुछ भी नहीं।'

'परन्तु बहिन ही तो हो।'

'नहीं, तुम मेरी दुश्मन हो तथा मैं तुम्हारी दुश्मन हूँ।'

'बहिन, ऐसा क्यों कहती हो ?'

'तब क्या कहूँ। तुझे भी इसी समय जले घाव पर नमक लगाना सूझा है। इसलिए तुम्हें और क्या कहूँ।'

'नहीं बहन, नहीं।' समजू ने करुण रुदन करते हुए कहा।

'तब ?'

'मैं तुम्हारे दु:ख मे भाग बटाने आई हूँ। मैं बिल्कुल निरी मूर्ख हूँ अतः और तो क्या मालूम परन्तु मेरे मन में एक बात आई है।'

'क्या बात ?' रसीला ने बड़े ही क्रोध तथा अरुचि से कहा।

'बहिन जब तुम्हारे सुख मे हिस्सा बटाया है तब तुम्हारे दु:ख मे भी हिस्सा बटाने आई हूँ।'

'बहिन यह दु:ख मुझे अकेले ही भोग लेने दे। इस समय तू यहाँ से चली जा। मैं स्वयं दु:ख उठा लूँगी।

'बहिन, व्यर्थ में ही क्यो इतनी व्याकुल हो रही हो ? मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ।' कहते हुए समजू ने रसीला के पाँव पकड़ लिए और जमीन पर बैठ गई। समजू के गरम-गरम आँसुओ से रसीला के पाँव भीगने लगे।

रसीला गरजी : 'चल यहाँ से बाहर निकल !'

'बहिन मेरे सारे अपराध क्षमा करो।'

'क्षमा किया, जा।'

'ऐसे नहीं।'

'तब ?'

'मेरी एक बात सुनो इसके बाद यदि तुम मुझे जाने को कह दोगी तो मैं जरूर चली जाऊँगी। बात तुमको बताने सुनाने के लिए ही मैं रातोंरात आई हूँ व रात-ही-रात मे चली जाऊँगी। मैं यहाँ रहने को नहीं आई। पर मेरी एक प्रार्थना आप मान लो। बस इतना कहने को ही मैं यहाँ तक आई हूँ।'

'चल, जो कुछ कहना हो जल्दी से कह और अपना रास्ता ले।'

'इस प्रकार की तिरस्कारयुक्त वाणी आज उसको पहली बार सुनने को मिली। परन्तु समजू को तो यह सुनना ही था। उसने पहले ही सोच लिया कि उसको तिरस्कारयुक्त शब्द तो सुनने ही होंगे और यही सोचकर उसने कदम बढाया था। अत. अपने ऐंठीले स्वभाव पर उसने काबू रखा। समजू के पीछे खड़े एक सात साल के लड़के पर रसीला की नजर गई और बालक को देखकर उसने अपनी पलकें ऊँची की। उसने पूछा :

'यह कौन है ?'

रसीला के कठोर परिवर्तन को देखकर भी बालक तनिक भी नहीं डरा।

'यह मेरा-तुम्हारा लड़का है ?'

'क्या यह आज तक जीवित है ?'

'हाँ वहिन तुम्हारे तथा इसके पिता के सद्कार्यों से बच गया।'

'यह कैसे ?'

'एक दिन की बात है कि रात अंधेरी थी। इस प्रकार की भयंकर गहन काली रात्रि में मेरे घर के खपरैल हटाकर दो आदमियों ने घर में घुसने की हिम्मत की, इसके साथ ही मैंने कोने में रखा अपना भाला उठाकर उनको ललकारा : 'अरे तुम कौन हो, काले नाग की बाँबी में हाथ देने वाले ?' मौत और अपने बीच थोड़ा-सा अन्तर देखकर वे रुक गये। फिर एक ने कहा : 'समजू इस पेट के गड्ढे को भरने के लिए काला काम करने आये हैं।'

'मैंने पूछा : ऐसी क्या बात है ?'

'तुम्हारे इस कोमल बालक को मौत के घाट उतारने की।' यह सुनकर मेरा रोम-रोम काँप गया। मैं फिर से ललकार उठी : 'तब सावधान हो जाओ किन्तु कोई सावधान नहीं हुआ और न हिला ही तो मैंने पूछा : 'अरे तब क्या विचार है ?'

'समजू इस फूल से कोमल बच्चे पर छुरा चलाने में हमारे हाथ काँप रहे हैं। हृदय विचलित हो रहा है। किस जन्म के लिए इन पापों की गठरी बाँधें ? पर इतना तू अवश्य करले कि यह मकान छोड़कर विदेश में चली जा। हमारी बात रह जाए और रोटी भी मिल जाय।

'मैंने कहा जो ऐसा न करूँ तब ?

'तब फिर इस फूल से कोमल बालक की हत्या किए बिना हमारे पास कोई उपाय नहीं। आज नहीं तो कल, एक माह में या दो माह में यह बुरा काम तो करना ही पड़ेगा। इसके बिना छुट्टी नहीं मिल सकती है।

'मैंने फिर पूछा कि ऐसा तुम किस कारण से करने को विवश हो। तब वे बोले कि एक स्थान पर हमने जबान की है। यदि हमारी बात मान लेगी तो हमारी भी इज्जत रह जायेगी और तेरा बालक बच जायेगा। मैंने उनकी बात मान ली और आज उस बात को सात साल का समय हो चुका।'

रात्रि बड़ी तेजी से बीत रही थी। अब वातावरण में कुछ ठंडक भी आगई थी। समजू को पुनः लौट जाना था। उसकी आँखों के सामने रक्त-रंजित सनातन का शरीर और तरशींगड़ा की घाटी नाच रही थी।

कमरे में थोड़ी देर नीरव शांति रही। सनातनसेठ की मृत्यु के बाद से एक ओर खड़ा हुआ सुन्दर पलंग पीपों या बाँस से बनी एक नाव-सा पड़ा था। सात दिन से उसकी सफाई न की जाने के कारण उस पर धूल की

परतें जमी हुई थी। रजाई, गद्दा व तकिया एक ढेर के रूप मे बिखरे से पड़े थे। मामूली से बिस्तर म शोकमग्न रसीला विचारो के समुद्र से बाहर निकली। उसका हृदय बडा बेचैन था, वह कुछ कहना चाहते हुए भी कहने मे असमर्थ थी।

परन्तु रसीला की व्याकुलता मानो समजू समझ गई। उसकी बात समजू ने आगे नही चली। साडी के पल्ले से एक बहुत पुराना तय किया कागज उसने निकाला और कागज रसीला को सौंपते हुए वह बोली

'यह कागज और लडका मुझे सेठ से मिला है। इन दोनो पर तुम्हारा ही एकछत्र अधिकार है। यदि तुम उचित समझो तो यह कागज सुरक्षित रखो और यदि इसको उचित न समझो तो फाड दो साथ-ही-साथ लडके को भी रखो या मारो इसमें भी मुझे किसी प्रकार का दुःख नही। यह सेठ का वश है तथा मेरा और तुम्हारा भी रक्त एक ही है।

रसीला चौंकी 'यह कैसे ?'

'समय आने पर बताऊँगी। इस समय ये दोना वस्तुए तुम्हे देने को आई हूँ। लो इसके बाद मैं चलूँ। अपनी चीजें सम्भाल लो ताकि मैं निपटूँ।

सनातन की भस्मी के अगारे अभी शान्त भी नही हो पाये थे कि उसकी विपुल सम्पत्ति के उत्तराधिकारी बनने के लिए, उसकी सात पीढी के उत्तराधिकारियो की एक लम्बी पक्ति बन गई। इसके लिए राज्य की ओर से अधिकारियो ने भी चक्कर लगाना शुरू कर दिया था। इस प्रकार की कई आपत्तिया से रसीला बहुत दुःखी हो गई थी। इसलिए उसने निर्णय किया कि सनातन के शोक की अवधि समाप्त करके पिता के घर चल दिया जाए। किन्तु आधी रात्रि मे उत्पन्न हुई उस नई पहेली ने उसम नव-चेतना भर दी। उसने अपना निर्णय बदल दिया।

गहन विचार सागर मे डुबकियाँ खाते-खाते रसीला ने कागज की परतें खोली। कागज सरकारी एजेन्सी की ओर से मान्य था क्योकि इस पर सरकारी छाप थी। इस सात साल पहले लिखे दस्तावेज का साराश था

'मैं सनातनसेठ जो कि तेजपुर का रहने वाला हूँ, मैं अपनी तेजपुर व तेजपुर के बाहर की सभी स्थावर-जगम मिलकियत का एकछत्र मालिक हूँ तथा जिसमे किसी का कोई हक नही है तथा जिसका कब्जा भी मेरे पास है। मैं परमात्मा की शपथ खाकर तथा निम्न सज्जनो की साक्षी मे लिख देता हूँ कि मेरी जिंदगी के बाद मेरी सारी मिलकियत का मालिक प्रताप ही होगा।

'प्रताप मेरे साथ स्नेह-बधन म बँधी समजू के पट मे उत्पन्न मेरा

लड़का है। यदि उस दस्तावेज के लिखने के बाद रसीला के गर्भ से पुत्र-रत्न उत्पन्न हो तो दोनों का आधा-आधा हिस्सा होगा।'

दस्तावेज के नीचे सनातन के हस्ताक्षर थे। इन हस्ताक्षरों के बाद थानेदार की मुहर व हस्ताक्षर थे। दूसरी ओर सनातन के दो विश्वासी मित्रों की साक्षी थी।

अभी थोड़ी देर पहले विष के समान कटु प्रतीत होने वाली समजू रसीला को बड़ी भली लगी। समजू के लिए उसके अन्तर में स्नेह के झरने बहने लगे। वह रुँधे कण्ठ से कहने लगी :

'समजू मैंने तुम्हें दुःखी करने में कोई कमी नहीं छोड़ी। परन्तु तुमने मरनेवाली आत्मा को उज्ज्वल कर दिया है। तू भी मेरे साथ सेठ के लिए शोक रख। मुझे इसमें तनिक भी बाधा नहीं है। दुःख के भार को हम दोनों मिलकर उठायें।'

'बहिन ! हमारी जाति में बैठकर शोक नहीं रखा जाता है।'

'तब !'

'मैं तो शोक जंगल में ही मनाऊँगी। हम लोग तो मुक्तरूप से घूमने-फिरने वाले हैं। हमें अंधेरे में रहना अच्छा नहीं लगता है।'

'मैं यहाँ तुझे किसी बात का दुःख नहीं होने दूँगी।'

'नहीं बहिन, नहीं।' कहते हुए समजू थोड़ी देर रुकी और फिर दरवाजे को खोलती हुई कहने लगी :

'मैंने प्रण किया है।'

'क्या ?' रसीला समजू पर एक नजर डालते हुए बोली

'जिस दिन से सेठजी के परमधाम पहुँचने की सूचना मिली है उसी दिन से मरने-मारने की।'

'हमारी क्या ताकत ?'

'मैं यह करके ही मरूँगी।'

'क्या करके ?'

'बोरिचा को गोली का निशाना बनाकर।'

'रसीला समजू की बात सत्य माने या स्वप्न इसका विश्वास करने के लिए वह इधर-उधर देखने लगी।

'यदि मैं इस बात में चूक जाऊँ तो मेरी लाश को सात ठोकरें मारना। इसके उपरान्त भी यदि मैं बैर का बदला न ले लूँ तो मैं सनातन से मर्द के साथ रही न रही एक समान है। मैं बैर का बदला लूँगी, जबकि वे ब्याज वसूल करते थे। मैं तुमसे एक प्रार्थना करती हूँ।'

'किस बात की ?'

'मुझे सेठ की दुनाली बन्दूक दे दो तो फिर मैं चलूँ। चलना बहुत है और रात कम है।'

समजू बराबर बोलती जा रही थी और रसीला इस अलौकिक नारी को देखती जा रही थी।

'बहिन मेरे पास अब किसी प्रकार का जोखम नही। लाडला मैंने तुम्हे सौंप ही दिया, मैं अब विधवा हूँ। मुझे अब किसी प्रकार के ऐश भोगने की इच्छा नही जिससे मैं इस शरीर को पोषित करती रहूँ अब तो यह इच्छा है कि अपने आपको सेठजी की राख में मिला लूँ ताकि आत्मा को शान्ति मिल जाय। मुझे जब ही चैन मिलेगा जबकि मेरी इच्छा पूरी होगी। लो अब मैं जाऊँगी। थोडी देर मे सुबह हो जायगी तब लोगो को पता लगेगा और स्वर्गीय सेठ के लिए दो बातें बनाई जायेंगी।'

उसने पुन काला कम्बल लपेटा। कधे मे दुनाली और कारतूस की माला डाली और क्षणभर मे देखते-देखते अधकार में खोगई।

वापिस लौटना

दिन होते ही सनातन के घर पर कई अधिकारी आ पहुँचे। सब सीधे बिना कुछ कहे ऊपर बैठक में जा बैठे। भाई है या नहीं। इस प्रकार की बात का कोई उत्तर देने वाला नहीं था।

कार्यालयों के बंधन शिथिल हुए।

खाली कागज़ निकले।

दवातें खुलीं व कलमदानों से कलमें निकलीं।

कागजों के ऊपर लिखा गया : सरकारी काम।

मुख्य अधिकारी ने कहा, 'जयसिंह, बहिन को बुलवाओ।'

'साहब घर की बैठक में नहीं आ सकती हैं।'

'आना पड़ेगा। मालूम है सरकारी काम है।'

अधिकारी की बोली में इतनी कठोरता सुनकर जयसिंह भाई का मन अफसर को एक तमाचा लगाने को हुआ। ये वही अफसर थे जिन्होंने कभी यहाँ खूब मिष्ठान्न खाए थे। यह अधिकारी रात-दिन यहीं रहता था और वह भाई के साथ ऐसा व्यवहार करता था मानो भाई ही उसको वेतन दे रहा हो। और आज वही अधिकारी इसी घर में, इसी बैठक में बिना भाई की इजाजत के, बिना किसी तरह की हिचकिचाहट के जा बैठा। जयसिंह

भाई के दिल में इस प्रकार की गहन हलचल मच रही थी कि दूसरी आवाज आई :

'कहता हूँ, सुनते हो बहिन को बुलवाओ !'

'क्या काम है ?'

'राजकाजों में दस्तख्तों की जरूरत है।'

'कैसा राजकाज ?'

'तुम इसमें नही समझते हो। व्यर्थ की बकवास बन्द करो। जो कहा वह करो।'

'पर इसमें बहिन का क्या काम है ?'

'दस्तख्त करने का।'

'लाइए कागज दीजिए, मैं कमरे मे जाकर दस्तखत करवा लाऊँ !'

'पर भाई अभी तो लिखना पड़ेगा, यह तो सरकारी काम है।'

'तब पहले आप काम पूरा कर लो फिर दे देना।'

दूसरा अधिकारी बोला : 'हाँ यह बात बिल्कुल ठीक है। पहले सारी सरकारी कार्यवाही करली जाए फिर बहिन के हस्ताक्षर हो जायँगे और इससे दोपहर पहले घर पहुँच जायँगे।'

अधिकारियो को इस घर मे अब मिष्ठान्न नहीं मिलने वाला था इसलिए वे दोपहर पहले ही घर जाने की सोच रहे थे। सनातन के जीते-जी आना दूसरी बात थी।

साहब ने बैठक मे बैठे-बैठे तम्बाकू के पान की पीक थूकी। इससे रास्ते से बैठक तक की सारी जगह लाल हो गई। सारी जगह मानों खून से तर हो गई।

जयसिंह भाई को साहब की इस अशिष्टता पर बड़ा गुस्सा आया। वह अब लाचार था। समय बदल गया था। सब चुपचाप सहन करने के सिवाय कोई उपचार नही था।

पान को मुँह में दबाये हुए बोलने का रास्ता करके साहब बोले :

'जयसिंह भाई ऊपर आओ।'

'क्या हुक्म है ?'

'सेठ की मिल्कियत लिखवाओ।

'साहब क्या आप सेठजी की मिल्कियत नही जानते ? आप तो घर की सभी बातो के जानकार हो।'

'जयसिंह भाई बात तो यह ठीक है किन्तु हमारा लिखना पर्याप्त नही होगा और न इससे काम बनेगा। यह तो सरकारी काम है।'

'क्या लिखवाऊँ ?'

'घर कितने हैं ?'

'यह एक।'

पास में बैठा क्लर्क जो सरकारी काम का व्यौरा लिख रहा था उसकी ओर नजर डालते हुए साहब बोले : 'लिखिए चार अच्छे किस्म के मकान, पुराना एक मकान और पोली पर एक सुन्दर बैठक। चारों ओर की इसकी सीमा लिख लो।'

प्रश्नसूचक दृष्टि से जयसिंह भाई को देखते हुए बोले :

'दूसरा ?'

'दूसरा क्या भाई की प्रतिष्ठा।'

'सीधे तरीके से बात करो।' साहब गरजे

'क्यों व्यर्थ की बातें लिखवाते हो। तुम क्या स्वयं नहीं जानते हो ?'

'बार-बार क्या नहीं जानते।' इन शब्दों की पुनरावृत्ति करते हुए साहब के शब्द जयसिंह को जहर पीने के समान कड़ुवे लगे। बात आपस में इतनी बढ़ चुकी थी कि वहां बैठे सभी व्यक्ति सोचने लगे कि अब साहब उबल पड़ेंगे।

सनातनसेठ की हवेली के बाहर अच्छी-खासी भीड़ इकट्ठी हो चुकी थी। एक समय था जबकि सारी कुर्कियों के कागज इसी बैठक में तैयार होते थे, कई षड्यंत्रों की योजनायें बनती थीं। किन्तु आज वह बुरा दिन आया जबकि इसी घर के दरवाजे बंद करने की योजना बनाई जा रही है। भीड़ इन दोनों समयों की तुलना करते हुए आतुरता से खड़ी थी।

सेठ के घर पर आज ऐसी बुरी बनी जिसकी स्वप्न में कल्पना करना भी कठिन था। सारे घर में कई आदमी खड़े थे परन्तु मात्र एक सेठ की अनुपस्थिति के कारण सबका तेज समाप्त हो गया-सा लगता था।

'अन्य माल-मिल्कियत लिखवाओ।'

'दूसरी मिल्कियत दस भैंसें। हींफली का बगीचा, खीजड़ावाला खेत और घुवकिया।'

'यह क्या है ?'

'दस मील का बगीचा है, जमीन सोना उगलती है।'

'ऐसा ?'

'हां साहब ! उस दिन आपने जो बाल खाई थी वही बाग।'

'उसका नाम ही घुवकिया है ?' साहब की आंखों के सामने एक साल पहले का दृश्य आगया। एक बार वे सनातनसेठ के घर आकर ठहरे थे। शाम को खाना खा लेने के बाद सेठ अपनी गाड़ी में साहब को बगीचे तक ले गया था। सेठ खाने-पीने और खिलाने-पिलाने का बड़ा शौकीन था। नया-नया

उत्पन्न हुआ अनाज वह मेहमानों को खिलाकर बड़ा प्रसन्न होता था। उस दिन रात्रि मे बाग मे जादरिया बना था। उसको खिलाने को ही वह साहब को यहाँ लेकर आया था। उसने साहब को गाडी मे बैठाया और यहाँ ले आया था।

चाँदनी रात्रि थी। चाँदनी रात ऐसी सुहावनी लगती थी मानो चारो ओर सफेद चद्दरें लगादी गई हों। आकाश से चौदस का चन्द्रमा मुक्त-हृदय से रूप की वर्षा कर रहा था।

साहब को उस प्रकार का आतिथ्य पहली ही बार मिला था। वैसे तो यह साहब कई बार मेहमान बन चुका था किन्तु जादरिया की मेहमानदारी ने उसे पानी-पानी कर दिया था। इस प्रकार के आतिथ्य के ठीक आठवें दिन सनातन ने हीफली के बाग का कब्जा लिया था। साहब ने हीफली बाग़ और मेहमानदारी की घटना को जोड लिया जबकि साहब की मेहमानदारी करने के समय सनातन ने ऐसा कभी नहीं सोचा था। फिर भी साहब ने अपने मन मे तो इस घटना को मेहमानदारी के साथ जोड ही लिया था।

'अब और कौनसी स्थावर-जंगम मिल्कियत और रह गई है ?'

'गाडी और बावली।'

'यह बावली क्या है ?'

'घोडी है साहब।'

'अन्दाजन कीमत ?'

'इसकी कीमत नही हो सकती है।'

'अरे ऐसा कैसे हो सकता है ? जेवरात का भी मूल्य होता है चाहे बहुमूल्य ही क्यो न हो ?'

'नही साहब, इसमे थोडा अन्तर है ?'

'अन्तर क्यो ?'

'यह नजराना है ?'

'हीरा-मोती से मूल्यवान्।'

'सस्ते-मँहगे का तो कोई सवाल ही नही।'

'तब ?'

'इसका कोई मूल्य नही ?'

'यह बात कैसे सम्भव हो सकती है ?'

'यह बात सम्भव है या नही किन्तु इतना जरूर है कि इस सारे परगने मे तो बावली-सा जानवर नही मिल सकता है। चारो ओर यदि घूम जाओ तो भी यह सम्भव नही।'

'तो इसका मतलब घोडो का वंश ही समाप्त होगया।'

'साहब घोडी तेजवासी है। वैसे टट्टुओ की कोई कमी नही है।'

'ऐसी इसमें क्या विशेषता है जिससे तुम बात बढ़ा-चढ़ाकर कर रहे हो, दरबार ?'

'ऐसा उसी में है दूसरों में नहीं।'

'है तो घोड़ा ही ?'

'नहीं साहब मृत्युलोक का विमान है।'

'तुम तो अपनी मर्जी से जो चाहो कहो पर है तो घोड़ा ही ?'

'हाँ।'

'तब, कारकूनजी लिखो एक घोड़ी अन्दाजन कीमत ?'

साहब ने फिर से जैसे ही कीमत का सवाल किया कि फिर जयसिंह भाई बोले :

'मैं अपने मुँह से बावली का मूल्य नहीं बता सकता हूँ।'

साहब ने अन्दाज लगाया कि यह व्यर्थ में समय बिगाड़ रहा है अतः लाल आँखें करके बोले :

'बता दो जल्दी से ! क्यों व्यर्थ की बात करते हो। यदि ऐसा नहीं हुआ तो फिर उसकी बोली लगवानी पड़ेगी। वैसे हम यह चाहते हैं कि भाई के माल को बाहर नहीं ले जाया जाय और इसीलिए कमरे में बैठे-बैठे सब कार्यवाही कर रहे हैं।'

'हमें बावली बेचनी ही नहीं है।'

'यह तो होगा ही क्योंकि हमारे अफसरों ने हमें यह काम बताया है, इसलिए हमें इसे पूरा करना ही है। बात को व्यर्थ में मत छिपाओ हम जितना छिपा सकेंगे छिपाने का प्रयास करेंगें।'

साहब की रहस्यपूर्ण बात जयसिंह भाई की समझ में नहीं आई। वह सोचने लगा यह सब लोग क्या कर रहे हैं किन्तु यह क्षणिक विचार ज्यादा देर नहीं रह सका।

साहब ने सरकारी काम की जाँच पड़ताल करते हुए कारकून से कहा लिखो :

'चार सौ।'

और साहब का हुक्म होते ही कारकून ने बावली के सामने अंक लिखे चारसौ। राजकाम पूरा हुआ तो साहब बोले :

'अब बहिन को बुलवाओ।'

'बहिन का आना संभव नहीं।'

जयसिंह भाई का उत्तर सुनकर साहब ने अपने सल पड़े सिर पर हाथ फेरा और बोले : 'तब क्या किया जाए ?'

'लाओ कागज मुझे दे दो, आप जहाँ बतायेंगे, वहाँ दस्तखत

करवा लाऊँगा।'

'लो।'

'सरकारी काम के कागज लेकर जयसिह भाई कमरे मे बैठी रसीला के पास आये। कागजो को रसीला के हाथ मे सौपते हुए वह बोला 'साहब इसमे दस्तख्त करने को कहते हैं। माल-मिल्कियत की जाँच पड़ताल की है।'

रसीला सरकारी काम के कागजो को देखने लगी। सनातन की सभी स्थावर-जगम सपत्ति का इन कागजो मे ब्यौरा था। साथ ही-साथ सबकी अदाजन कीमत भी लिखी हुई थी। अपनी टिप्पणी लिखते हुए साहब ने लिखा था

'मैं रसीला, स्वर्गीय सनातन भँवरसेठ की विधवा पत्नी। मैंने बताया कि मेरे स्वर्गीय पति के कोई भी कुटुम्ब का आदमी नही है जिससे इस मिल्कयत का कोई वारिस नही है। सरकार मे इस मिल्कियत को पाने के लिए मेरे पति के निकट के कई कुटुम्बीजनो ने अपने-आपको उत्तराधिकारी बताने के लिए प्रार्थना-पत्र दिए हैं। जबतक यह उत्तराधिकारी का मामला तय न हो जाय तबतक मैं अपनी मिल्कियत सरकार को सौपती हूँ।' जहाँ अन्तिम पक्ति खत्म होती थी वहाँ एक वाक्य था 'हमारी उपस्थिति मे' तथा इस पद के नीचे अधिकारी के हस्ताक्षर थे।

उपरोक्त पक्तियाँ पढकर रसीला ने अपने मुँह के घूँघट को तनिक उठाया तथा पिता-तुल्य जयसिह भाई को देखा। घर के सदस्य जैसे जयसिह भाई ने रसीला की बात सुनने को अपने कान खोले।

'साहब को यहाँ भेजो।'

जयसिह भाई तुरन्त बैठक मे गए तथा बोले 'आपको बहिन अन्दर बुला रही हैं।'

साहब उठकर कमरे के कोने मे खडी रसीला के पास आये और बरामदे मे खडे-खडे बोले 'बहिन! तुम्हारे वशजो ने प्रात के साहब से प्रार्थना की है कि इस मिल्कियत के हम ही एकमात्र वारिस हैं। अत मिल्कियत नष्ट न हो इस पर सरकारी सील मारना जरूरी है।'

'जो प्रार्थना-पत्र दिया गया है वह झूठा है। जायदाद का वारिस है।'

'बहिन तुम अपने-आपको मत गिनो।'

'लडका है।'

'लडका है?'

'हाँ साहब, सात वर्ष का लडका है।'

साहब यह भलीभाँति जानते थे कि सनातन नि सतान मरा है। पुत्र प्राप्ति के लिए उन्होने दवाई आदि करने म भी कोई कमी नही की थी पर रसीला के पुत्र पुत्री उत्पन्न नही हुई। इस शुभ दिन को देखन के लिए वह

कई वार वम्बई के वड़े-वड़े डाक्टरों के पास भी जा चुका था। चिकित्सा के लिए उसने डाक्टरों को मुँहमांगी वड़ी-वड़ी रकमें दीं किन्तु वे सव वेकार रहीं। इसलिए गत वर्ष से सब झगड़े छोड़कर उसने ईश्वर का सहारा लिया था।

'तब वहिन, वंशजों की अर्जी को झूठा करने के लिए दूसरा सरकारी काम करना होगा।'

'तब करो।'

'किन्तु........।'

'वारिस कहाँ है, यहीं है न वहिन ?'

'हाँ।'

रसीला ने आवाज दी, वेटा प्रताप तनिक यहाँ आ तो। आवाज के साथ ही पास के कमरे से एक सात साल का वालक वाहर आकर रसीला के वाजू में खड़ा होगया। वालक दूसरे छोटे सनातन-सा ही था।

साहव व्याकुल हो उठे। वे जानते थे कि यह लड़का रसीला की कोख से तो पैदा नहीं हुआ। पर इस सम्वन्ध में अधिक जानकारी करने में वे संकुचा गए। मानव का मानस परखनेवाली रसीला साहव की व्यथा हल्की करने के लिये वोली : 'साहव दो मिनिट.....' कहते हुए वह कमरे में गई। कमरे में से एक दस्तावेज लाकर उसने साहव को थमाया।

साहव ने दस्तावेज में देखा कि सनातन ने अपनी विपुल-सम्पत्ति का मालिक अपने पुत्र प्रताप को वनाया है। रजिस्ट्रार के कार्यालय में इस कागज का रजिस्ट्रेशन था और कानून के अनुसार इस दस्तावेज में कोई कमी नहीं थी। अवतक का सारा काम साहव ने निरस्त किया और उत्तराधिकारी के प्रार्थना-पत्रों को फाइल करने का विधान करके साहव वापिस लौट चले।

●

धड़कती धरा

तरशीगडा की घाटी में सूर्य अस्ताचल की ओर पहुँचने को था। दिन की गर्मी नही रही थी, सध्या होने को थी। आकाश मे आसाढ़ के बरसाती बादल छाए हुए थे। मोर जगल मे बडी तेजी से म्याओ !–म्याओ ! शब्द की आवाज कर रहे थे। आकाश के घने बादल ऐसी भयकर गडगडाहट कर रहे थे मानो स्वय ब्रह्मा गेंद-बल्ले का खेल खेल रहा हो।

ऐसे समय में समजू खाकी कोट और ब्रिजिश पहनकर अपने-आपको छिपाती हुई घाटी की कन्दराओं में उसी प्रकार उतर पडी जैसे कोई नागिन अपने बिल में उतर जाती है। तरशीगडा घाटी आधे कोस तक फैली हुई थी। समजू ने शत्रु को शिकजें मे लेने की कई बार योजना बनाई किन्तु वह आज तक अपनी योजना में सफल नहीं हो सकी। परन्तु समजू अवतक निराश नही हुई थी। वह शत्रु को अपने शिकजे म लेने के प्रयत्न कई कठिनाइयो के उपरान्त भी बराबर करती रहती थी।

लगातार वह पन्द्रह दिन से जगल मे भटक रही थी। अब उसके मुख मडल से सौम्यता के स्थान पर रौद्रता टपकती थी।

समजू के अतर मे अपने सेज के साथी की आत्मा को शाति देने की प्रबल इच्छा थी। जबतक वह यह काम न करले तबतक उसकी हृदय की आग

का शांत होना अति कठिन था। इसी कारण इस काम को पूरा करने के लिए कठोरतम प्रयत्न करना शुरू कर दिया था।

तरशींगड़ा की घाटी में जब उसने नकावपोश मुँह बाहर निकाला तो उस समय उसकी दोनों आँखों में से उसी प्रकार के अंगार निकल रहे थे मानो किसी कन्दरा में क्रोधित सिंहनी की आँखें चमक रही हों। आज उसने किसी विशेष प्रकार की विश्वस्त सूचना के आधार पर ऐसी जोखिम उठाई थी। आज उसे पक्का विश्वास था कि उसकी मनोकामना पलक मारते ही पूरी हो जायगी। उसने घाटी में आकर अपने मन को दृढ़ किया। बिना रुके आधे कोस का टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता पार कर जब उसने अँगड़ाई ली तो इस भयंकर घाटी में उसका रूप अतिशय भयंकर होगया। घाटी के जिस स्थान पर सनातन का खून किया गया था, समजू की हार्दिक इच्छा थी, कि उसी स्थान पर उसके हत्यारे का खून किया जाए।

उसने कंधे से दुनाली उतारी। बड़े क्रोध में उसने बन्दूक की नाल को मोड़कर देखा। लपलपी दबाने की देर की राह देखते हुए उसमें दो कारतूस भरे। बन्दूक को उसने पुनः ठीक तरह से कर लिया और उसके सहारा लेकर वह बैठ गई। घाटी के पोले हिस्से में उसने बड़े ध्यान से देखा। घाटी सुनसान थी। किसी प्रकार की कोई आवाज नहीं सुनाई दे रही थी। इस भयंकरता के कारण पक्षी तक की फड़फड़ाहट की आवाज नहीं होरही थी।

खुले आकाश में एक छाया दृष्टिगत हुई। सारी घाटी में घना अंधेरा होगया, इससे समजू ने देखा कि रात्रि हो चुकी है। जिसकी वह इतनी व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रही थी वह थोड़ी देर में वहाँ से निकलने वाला था। क्षण-क्षण में उसकी व्याकुलता बढ़ती जारही थी।

थोड़ी देर के लिए उसने अपने मन को काबू में किया तथा वह घाटी का सहारा लेकर सचेत होकर बैठ गई। इसी समय उसकी विचारधारा स्वर्ग-लोक में पहुँच गई तथा सनातन को उसने मुँह सामने कह दिया कि तुमने सोचा होगा कि तुम्हारे साथ सोने वाली कोई टचपूँजी होगी और तुम्हारे स्वर्गवास के बाद उसका मन उद्विग्न होगया होगा। आज उस मूर्खा का तुम आक्रमण देखना। काम पूरा होने के बाद तनिक भी देर नहीं करूँगी। मैं तुम्हारे पांवों के निशान देखती हुई आ रही हूँ। फिर जो बात करनी हो दिल खोलकर करना। यदि उस समय लाल आँखें करके भी बात करोगे तब भी एक शब्द नहीं बोलूँगी।

वह यह सोच ही रही थी कि घाटी में टापों की आवाज सुनकर वह चौंकी। उसकी विचार-तन्द्रा यकायक टूटी। जैसे ही घोड़ा अंधकार में मार्ग तय करता हुआ आगे बढ़ा कि समजू ने उसे आगे होकर ललकारा :

'कौन ?'

'यह तो मैं हूँ।'

'मैं कौन ? यह बता फिर आगे बढना।'

'मैं रूखड हूँ।'

इस अनचेती आफत व रुकावट से रूखडे के दिल की धडकनें बढने लगी। उसे कपकपी आगई। उसके दिल मे एक खटका हुआ : 'हाय माँ !'

'पर इसके साथ ही दूसरी आवाज हुई :

'रूखड़ा काका, आप चले जायें।'

और जानुडा जाने वाले रूखडा ने घोडे के एड मारी। जैसे ही घोडा समजू के पास आया उसी समय रूखडे ने सावधानी बरती। घोडा ठहरा भी नही कि समजू ने फिर से शांति से कहा .

'कहती हूँ सीधे रास्ते चले जाओ घोडा रोकने की जरूरत नही है।'

यह सुनते ही रूखडे की सारी देह मे एक कपकपी आगई। उसके दिल की धड़कनें बढ गई। उसने घोडे के एड लगाई। घाटी के बीत जाने पर तो रूखडे की ऐसी दशा हुई कि उसने जानुडा पहुँच जाने के बाद भी पीछे निगाह नही उठाई।

जानुडा का जागीरदार निकल जाने पर समजू के मुख-मण्डल पर एक गहरी निराशा छागई। सनातन के बाद उसे जीवित रहना बडा कठिन लग रहा था। अपने जीवन का वह एक एक क्षण एक-एक वर्ष के समान बिता रही थी। समजू ने यदि हत्यारे को मारने का सकल्प न कर लिया होता तो वह अबतक तीर्थ-यात्रा को निकल चुकी होती। परन्तु सनातन की मृत्यु के समाचारो व हमीर के काले कारनामो से उसके रोम-रोम मे आग लग चुकी थी। उसने मन-ही-मन यह दृढ सकल्प कर लिया था कि जबतक वह सनातन के हत्यारे को सनातन के खून किए स्थान पर ही नही सुला देगी तबतक वह किसी भी तरह अवश्य जीवित रहेगी। अपने इसी सकल्प को पूरा करने के लिए आज वह गत पन्द्रह दिन से बराबर परेशान हो रही थी। इन गत पन्द्रह दिनो मे उसने शांति से बैठकर श्वास नही लिया था।

अन्त मे उसकी खूनसभरी आतुरता सफल हो रही हो, उसी प्रकार एक बार पुन. घाटी मे टापो की आवाज सुनाई दी और वह सचेत होगई। उसने आवाज की दिशा में कान लगाए। घोडा तेजी से बढता आ रहा था। इस भयकर घाटी मे से पार होते समय वैसे ही घोडे के एड मारने की आवश्यकता नहीं थी। बिना बोलने वाला यह जानवर इस भयकर घाटी से स्वय ही बाहर निकलने का प्रयास करता था।

'उसकी ओर घोडा अभी बढ़ ही रहा था कि समजू ने आवाज दी :

'कौन है ?'

प्रत्युत्तर में उसी वेग से जवाब मिला :

'तेरा बाप ।'

समजू ने आवाज से ही पता लगा लिया कि यह हमीर बोरिचा है ।

सनातन का खून कर देने के बाद बोरिचा बड़ा गाफिल रहने लगा । अब उसको किसी प्रकार का डर नहीं था । जैसे किसी तेंदुए के मुँह मानव का खून लग जाने पर वह खून का आदी हो जाता है, उसी प्रकार हमीर बोरिचा इस सारे रास्ते में खूँख्वार होगया था । उसमें भय जैसी कोई वस्तु शेष नहीं थी । एक बार भय सी वस्तु दिल में से निकल जाने के बाद उसकी खूँख्वारता बढ़ती जाती है, उसी प्रकार बोरिचा की खूँख्वारता बराबर बढ़ती जा रही थी । अपना आतंक जमाने के लिए धीरे-धीरे बोरिचा ने राहगीरों पर अब हमले करने शुरू कर दिये थे । बन्दूक दिखाकर उसने अबतक रात में कुछ-एक राहगीरों से पैसे भी लूट लिए थे तथा किसी-किसी से गहने की गठरी भी छीन ली थी । सारे परगने में किसी की हिम्मत नहीं थी कि हमीर के साथ कड़ककर बात कर सके । जिसने ऐसी हिम्मत की हमीर उसका घर नष्ट-भ्रष्ट कर देता था । फिर किसकी माँ ने दूध पिलाया जो हमीर की ताकत को चुनौती देता ।

अत: घाटी में उसको ललकारने वाले इस नए आदमी का पता लगने पर उसे बहुत आश्चर्य हुआ । इसीलिए बिना किसी प्रकार की रुकावट के उसने अपने घोड़े को आगे बढ़ाया ।

जैसे ही उसने घोड़े को आगे बढ़ाया वैसे ही उसके कानों में चुनौती आई ।

'अरे हत्यारे ! यदि एक भी कदम आगे बढ़ा तो बिंध जायगा ।'

अब हमीर ने घोड़ा रोका । उसकी समझ में नहीं आया कि उसको आगे होकर रोकने वाला यह कौन है । वह उसको पहचाने कि उसे फिर ललकारा गया :

'हमीरा ! सावधान हो जा !'

'परन्तु तू कौन है यह तो बता ।' हमीर ने परिचय चाहा ।

'मैं कौन हूँ ? तू मुझको नहीं जानता । मैं तेरा काल हूँ ।'

'हाँ अब अधिक स्पष्ट करने की जरूरत नहीं है ।'

हमीर को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसे अंधकार में उसको रोकने की हिम्मत करने वाली एक स्त्री है । उसके मन का अहम् जागा कि एक स्त्री की उसके सामने क्या हिम्मत ! इसलिए वह बोला :

'समजूड़ी ! तू क्योंकर इतनी कठिनाई उठा रही है ?'

'अपने स्वर्गीय पति की आत्मा को शांति देने के लिए।' लापरवाही से समजू ने वोरिचा को कहा।

'वह तो न जाने कब का ही परमधाम पहुँच गया।' कहकर हमीर खिलखिला कर हँसा। इस भयकर हास्य की गूँज इस भयकर घाटी मे प्रति-ध्वनित होकर थोड़ी देर मे समाप्त होगई।

'मैं तेरी तरह धोखेबाज नही कि पीठ से आक्रमण करूँ।'

'अरी मूर्खा अब मूर्खता छोड अन्यथा तू अपने बच्चे को निराश्रित कर देगी।'

'बच्चे की देखरेख करने को तो अभी और है। वोरिचा ! भला इसमे है कि तू अपने बीबी-बच्चो को अन्तिम बार याद कर ले। मैं तुझे समय देती हूँ।'

'समजू भला इसमे ही है कि तू मेरा रास्ता छोड दे अन्यथा स्त्री-हत्या का मुझे पाप भोगना पडेगा।'

'यह तेरी हिम्मत नही। मैं आखिरी बार कह देती हूँ। मैं तुझे समय देती हूँ कि अपने कन्धे से जामगी उतारकर यदि फायर करना हो तो करले। दिल मे यह चाह नही रह जाय कि मैंने फायर नही किया था। मैं तुझे चुनौती देकर हमला करने आई हूँ।'

हमीर का हास्य-प्रधान स्वभाव बिगड गया। उसका शरीर ताँबे सा लाल हो गया। उसने कहा :

'अरी मूर्खता रास्ता छोड।'

'मूर्खता मतकर, अधीरता छोडकर जो तुझे करना हो वह करले।'

'राँड़, मरने ही आई है।''''''''ऐसा ही है?'

'यह तो अभी समय बतायगा कि कौन मरता है और कौन जीवित रहता है।'

हमीर ने कधे से जामगी उतारी। उसके बधन ढीले किए और समजू को निशाना बनाकर फायर किया। इसके साथ ही समजू ने निशाना चुकाया और दूनाली बन्दूक सभाल ली और इसकी लपलपी दबाई। इसके साथ ही दूनाली की गोली हमीर वोरिचा की छाती बींधकर, पीठ मे घाव करती हुई, तिरछी होकर जमीन से टकराकर, गायब होगई। हमीर बेहोश होकर जमीन पर गिर पडा। उसके प्राण मुँह में आ गये। जीभ मोटी हो गई। बिल्कुल चित्त पड़े हमीर के पास आकर समजू जाकर खड़ी होगई। उसका गुस्सा अभी शात नही हुआ था। ठीक इसी स्थान पर दुष्ट हमीर ने उसके जीवनसाथी पर पीछे से हमला करके मार दिया था। आज उसके बैर का बदला ले लिया। आज उसी स्थान पर उसने अपने पति के हत्यारे को मौन

'कौन है ?'

प्रत्युत्तर में उसी वेग से जवाब मिला :

'तेरा बाप।'

समजू ने आवाज से ही पता लगा लिया कि यह हमीर बोरिचा है।

सनातन का खून कर देने के बाद बोरिचा बड़ा गाफिल रहने लगा। अब उसको किसी प्रकार का डर नहीं था। जैसे किसी तेंदुए के मुँह मानव का खून लग जाने पर वह खून का आदी हो जाता है, उसी प्रकार हमीर बोरिचा इस सारे रास्ते में खूँख्वार होगया था। उसमें भय जैसी कोई वस्तु शेष नहीं थी। एक बार भय सी वस्तु दिल में से निकल जाने के बाद उसकी खूँख्वारता बढ़ती जाती है, उसी प्रकार बोरिचा की खूँख्वारता बराबर बढ़ती जा रही थी। अपना आतंक जमाने के लिए धीरे-धीरे बोरिचा ने राहगीरों पर अब हमले करने शुरू कर दिये थे। बन्दूक दिखाकर उसने अबतक रात में कुछ-एक राहगीरों से पैसे भी लूट लिए थे तथा किसी-किसी से गहने की गठरी भी छीन ली थी। सारे परगने में किसी की हिम्मत नहीं थी कि हमीर के साथ कड़ककर बात कर सके। जिसने ऐसी हिम्मत की हमीर उसका घर नष्ट-भ्रष्ट कर देता था। फिर किसकी माँ ने दूध पिलाया जो हमीर की ताकत को चुनौती देता।

अतः घाटी में उसको ललकारने वाले इस नए आदमी का पता लगने पर उसे बहुत आश्चर्य हुआ। इसीलिए बिना किसी प्रकार की रुकावट के उसने अपने घोड़े को आगे बढ़ाया।

जैसे ही उसने घोड़े को आगे बढ़ाया वैसे ही उसके कानों में चुनौती आई।

'अरे हत्यारे ! यदि एक भी कदम आगे बढ़ा तो बिंध जायगा।'

अब हमीर ने घोड़ा रोका। उसकी समझ में नहीं आया कि उसको आगे होकर रोकने वाला यह कौन है। वह उसको पहचाने कि उसे फिर ललकारा गया :

'हमीरा ! सावधान हो जा !'

'परन्तु तू कौन है यह तो बता।' हमीर ने परिचय चाहा।

'मैं कौन हूँ ? तू मुझको नहीं जानता। मैं तेरा काल हूँ।'

'हाँ अब अधिक स्पष्ट करने की जरूरत नहीं है।'

हमीर को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसे अंधकार में उसको रोकने की हिम्मत करने वाली एक स्त्री है। उसके मन का अहम् जागा कि एक स्त्री की उसके सामने क्या हिम्मत ! इसलिए वह बोला :

'समजूड़ी ! तू क्योंकर इतनी कठिनाई उठा रही है ?'

'अपने स्वर्गीय पति की आत्मा को शांति देने के लिए।' लापरवाही से समजू ने बोरिया को कहा।

'वह तो न जाने कब का ही परमधाम पहुँच गया।' कहकर हमीर खिलखिला कर हंसा। इस भयकर हास्य की गूंज इस भयंकर घाटी में प्रतिध्वनित होकर थोड़ी देर में समाप्त होगई।

'मैं तेरी तरह धोखेबाज नहीं कि पीठ से आक्रमण करूँ।'

'अरी मूर्खा अब मूर्खता छोड़ अन्यथा तू अपने बच्चे को निराश्रित कर देगी।'

'बच्चे की देखरेख करने को तो अभी और है। बोरिया ! भला इसमें है कि तू अपने बीवी-बच्चों को अन्तिम बार याद कर ले। मैं तुझे समय देती हूँ।'

'समजू भला इसमे ही है कि तू मेरा रास्ता छोड़ दे अन्यथा स्त्री-हत्या का मुझे पाप भोगना पड़ेगा।'

'यह तेरी हिम्मत नहीं। मैं आखिरी बार कह देती हूँ। मैं तुझे समय देती हूँ कि अपने कन्धे से जामगी उतारकर यदि फायर करना हो तो करले। दिल मे यह चाह नही रह जाय कि मैंने फायर नहीं किया था। मैं तुझे चुनौती देकर हमला करने आई हूँ।'

हमीर का हास्य-प्रधान स्वभाव बिगड़ गया। उसका शरीर तांबे सा लाल हो गया। उसने कहा :

'अरी मूर्खता रास्ता छोड।'

'मूर्खता मतकर, अधीरता छोड़कर जो तुझे करना हो वह करले।'

'रांड़, मरने ही आई है।·········ऐसा ही है ?'

'यह तो अभी समय बतायगा कि कौन मरता है और कौन [illegible] रहता है।'

हमीर ने कंधे से जामगी उतारी। उसके [illegible] समजू को निशाना बनाकर फायर किया। इसके साथ ही समजू ने [illegible] चुकाया और दूनाली बन्दूक संभाल ली और इसकी [illegible]। [illegible] साथ ही दूनाली की गोली हमीर बोरिया की छाती [illegible] करती हुई, तिरछी होकर जमीन से टकराकर [illegible]। [illegible] होकर जमीन पर गिर पड़ा। उसके प्राण मुँह में आ [illegible]। [illegible] बिल्कुल चित्त पड़े हमीर के पास आकर समजू [illegible]। [illegible] गुस्सा अभी शांत नहीं हुआ था। ठीक इसी स्थान [illegible] के [illegible] जीवनसाथी पर पीछे से हमला करके मार दिया था। [illegible] बदला ले लिया। आज उसी स्थान पर उसने अपने पति के हत्यारे को [illegible]

के घाट उतार दिया था। हमीर कुछ बोलना चाहता था किन्तु उसकी जीभ मोटी बनकर तालुए से चिपक गई थी। उसके चहरे पर अब भी क्रोधाग्नि व अतृप्ति के भाव उभरे हुए थे। उसकी आँखों से अंगारे निकल रहे थे। हमीर एक भी शब्द नहीं बोल सका था। उसकी दयामयी आँखें एक बार उसकी हत्या करने वाली समजू पर गईं तथा दूसरे ही क्षण उसके प्राणपखेरू उड़ गए।

समजू ने बड़ी सावधानी से हमीर का शव टटोलकर देखा और विश्वास कर लिया कि उसकी छाती की धड़कनें बंद हो चुकी हैं। ऐसा करने के बाद उसने हमीर की लाश को तरशींगड़ा की घाटी में डाल दिया तथा उसने अपना रास्ता लिया। वह ऊपर चढ़कर अपने सामने की पहाड़ी पर आई जहाँ उसने बावली को बाँध रखा था। उसकी पीठ से गरम-गरम खून बहने लगा। ज्योंही उसने अपनी पीठ पर हाथ फेरा तो उसने देखा कि उसके बायें बाँह से खून टपक रहा था। उसका यह अनुमान था कि उसने हमीर की जामगी का निशाना बचा लिया है परन्तु सही बात तो यह थी कि जामगी से उसकी बाँई बाजू घायल हो चुकी थी। उसने जल्दी से बावली पर सवारी की और तेजपुर को चल पड़ी।

रात्रि ऐसे हजारों कृत्यों की साक्षी बनकर बड़ी तेजी से बीत रही थी आज बावली भी पलक मारते ही तेजपुर पहुँचने का प्रयास कर रही थी। आज मानो उसके पर आ गए हों। इस प्रकार वह धरती पर टापें मारती हुई, छलागें मारती जा रही थी।

हवा सांय-सांय करके चल रही थी। मंद पवन के कारण समजू के बाँए बाजू का घाव भी ठण्डा होने लगा और धीरे-धीरे दर्द भी बढ़ने लगा। लगातार ठंडे मंद पवन के कारण उसके शरीर का खून ठंडा होने लगा। अपनी स्थिति का ध्यान आते ही उसके मन में एक खटका हुआ कि कहीं रास्ते में ही न गिर पड़ूँ। अभी उसके अन्तर में यह हार्दिक अभिलाषा थी कि एक बार रसीला और अपने लाड़ले का मुँह देख ले और उसने घोड़ी को सचेत करने के लिए एड़ लगाई। घोड़ी एड़ी की मार से तिलमिला उठी क्योंकि आजतक उसे किसी ने ऐसी एड़ नहीं मारी थी। अपनी समग्र शक्ति इकट्ठी करके बावली हवा से बातें करने लगी। सनातन ने कभी उसे इतना तेजी से नहीं दौड़ाया था। किन्तु आज रसीला ने उसके खानदान को चुनौती दी थी। इस कारण आज बावली को अपना पानी भी बतलाना था।

मध्यरात्रि बीत चुकी थी। खून में तरबतर समजू को लेकर बावली सेठ के मकान पर पहुँची। दरवाजे पर एक साथ खटखटाहट हुई और जयसिंह भाई ने खिड़की खोली तो समजू बोली : 'खिड़की नहीं दरवाजा खोलो।'

उसकी आवाज मे बडी आकुलता थी। उसको साँस तेजी से आ रहे थे। बोलते बोलते उसकी जबान टूटती जा रही थी। जयसिंह भाई ने मकान के दरवाजे तुरन्त खोले कि बावली झट से समजू सहित बरामदे मे आकर रुकी।

प्रताप और रसीला बावली के टापा की आवाज सुनकर दरवाजे तक आए। रसीला ने लालटेन की रोशनी तेज की। समजू की बांई बाजू से खून टपक रहा था। उसकी आँखें खुलती और बद हो रही थीं। बडी तेज गति से लगातार दौडती रहने के कारण बावली हाँफ रही थी। अबतक भी वह स्थिर रूप से खडी नही हो पा रही थी। वह इधर उधर पाँव पछाड रही थी। जयसिंह भाई ने बावली को पुचकारा, उसकी लगाम पकडकर उसकी गर्दन पर थपकी मारी और उसे शात किया। घोडी पर से समजू की देह को हटाकर कमरे मे लाया गया।

रसीला को सारी परिस्थिति समझने म देर नही लगी। किन्तु प्रताप अपनी माता को इस अनोखे भेष म नही पहचान सका। पर जैसे ही उसकी समझ म सारी परिस्थिति आई उसकी आँखो से आँसू बहने लगे।

श्वास बैठने पर तनिक शान्ति अनुभव करती हुई समजू ने रसीला की ओर आँख उठाई। रसीला इस समय हवा कर रही थी। समजू बोली

'बहिन अब मुझे शाति मिली है। आज मेरा कलेजा ठण्डा हुआ। घाटी में आते देखा तथा वही ढेर कर दिया ।

समजू हमीर से हुई लडाई का वर्णन रसीला को सुना रही थी पर वह साफ नही बोल पा रही थी। परन्तु चतुर रसीला का बात समझने म कुछ भी दिक्कत नही हो रही थी। एक गहरा साँस लेकर समजू कहने लगी

'बहिन, मैंने बडी मर्दानगी से उसे मारा है छलकपट से नही। ललकार कर मैंने उसे कहा, करले पहले फायर और हमीर ने अपनी जामगी लम्बी करके मेरे बाँए कन्धे पर मारी । तदुपरान्त मैंने दूनाली क एक ही फायर से उस हरामी का सदा के लिए ढेर कर दिया।'

इतना कहकर समजू ने एक गहरा साँस लिया। अब उसकी नाडी टूट रहीं थी। उसका सारा शरीर काँप रहा था।

बाडे म घोडी बाँधते हुए जयसिंह भाई को रसीला ने आवाज दी और कहा 'तालुके जाकर डॉक्टर को बुला लाओ।'

'किसके लिए ?'

'पहले स्वस्थ हो जा फिर बात करूँगी।

'अब मुझे किसके लिए स्वस्थ होना है, अब मुझे क्या करना है ?'

'इस प्रताप के लिए।' रसीला ने अपनी बाजू म खडे प्रताप की ओर

इशारा किया।

'वहिन यह तो मैंने तुम्हें सौंप दिया है। अव मेरा इस पर कोई अधिकार नहीं है। आज तक मैंने एक वात जो मन में रखी है आज उसे भी स्पष्ट कर देना ही ठीक है।'

समजू ने अपनी वेदना को रोकने के लिए एक गहरा सांस लिया और फिर कहने लगी :

'वहिन तुम्हारा व मेरा खून एक है।'

रसीला समजू की आँखों में आँख मिलाकर कहने लगी :

'यह कैसे वहिन ?'

आखरी साँस लेते समय अपनी माँ की वुराई करने का मेरे हृदय में वड़ा गहरा दुःख है। इससे मेरा हृदय वड़ा डाँवाडोल हो रहा है किन्तु यदि मैं आज वात स्पष्ट न कर दूँ तो यह संभव है कि मेरे लाड़ले को किसी दिन दुःख उठाना पड़े।'

रसीला वात को पुनः अंतर में छिपाती हुई समजू से कहने लगी :

'समजू सच वात कहने में कोई पाप नहीं ? वहिन जो वात वतानी हो जल्दी से वता दे !'

गले के थूक से जीभ को गीला करके समजू वोली : 'सेठजी जिस प्रकार मुझ पर मोहित हो गये थे और इससे हम एक संवंध में वँधे, उसी प्रकार तुम्हारे पिताजी अपनी जवानी में मेरी माँ पर आसक्त हो गए थे। मैंने तुमने विभिन्न माताओं के स्तन पान किए किन्तु खून तो एक ही है। तुम्हारा वचपन वम्वई में वीता तथा मेरा वचपन खुले जंगल में।'

'समजू ·····वहिन समजू·········।' कहते-कहते रसीला का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वह आगे नहीं वोल सकी।

'वहिन, यह तो आन्तरिक भेद है। इस भेद को या तो मैं जानती हूँ या ऊपरवाला किन्तु जव तुम्हें अपनी कोख से पैदा किया लाड़ला देकर ही जाने को तैयार हो चुकी हूँ तव इस समय अव तक की छिपी इस वात को स्पष्ट किए विना मेरा मन नहीं माना, इससे यह सव कहा। वैसे यह दुनियाँ वड़ी रँगीली है। इस संसार में इस प्रकार के लाखों मानवों की कथायें छिपी पड़ी हैं। किन्तु इन वातों को पचा जाने की तो हिम्मत इस धरती माँ की है, हमारी क्या शक्ति है !'

लगातार वोलने से समजू थक गई। उसके भाल पर मोती से श्वेत विन्दु चमकने लगे। रसीला अनिमेष नेत्रों से समजू को देख रही थी। आँख की पलकों को हटाकर समजू वोली :

'मैं तुमसे क्षमा-याचना करने तथा सारी वात स्पष्टरूप से कहने के लिए अव तक रुकी रही हूँ। अव क्षमा माँगू, जिससे यदि नरक में भी होऊँ तो

शांति मिल सके अन्यथा सात जन्म में भी शांति मिलना असम्भव है।'

इतना कहकर समजू ने अपना बेकार हो चुका हाथ दाहिने हाथ से मिलाया और दोनों हाथ जोड़कर वह कहने लगी :

'मुझसे एक…… अपराध बन पड़ा है। तुम्हारे स्नेह की गंगा के बहते निर्मल-जल के प्रवाह से मैंने गड्ढा बनाकर प्रेम का पानी पीया है, इससे तुम्हें गहरा दुःख हुआ। बस मेरा यह अपराध तुम क्षमा करना।'

उसका गला बैठ गया। उसकी मुंद रही आँखों के तेज को रमीला गीली आँखों से देखती रही। गहरे दुःख के आवरण को तोड़ते हुए रमीला कहने लगी :

'बहिन, तुमने हमारी लाज रखी है। यद्यपि समजू तू आज देवीरूप बनकर जा रही है। परन्तु तुमने घर के दरवाजे खुले रखे हैं। तेरे भोग, बलिदान और आत्मसमर्पण ने आज सनातनसेठ की लज्जा रखी है। पर इसने भी तूने एक और सुन्दर काम किया है जो अति प्रशंसनीय है कि तूने इस सारे परगने को दुःखी कर देने वाले राक्षस को यमलोक भेज दिया है। बहिन तू तो वास्तव में मरकर भी जी गई।'

किन्तु रमीला के अंतिम शब्द सुनने के लिए समजू नहीं ठहरी। उसके प्राणपखेरू तो पहले ही उड़ गये थे। रमीला ने जब अपनी बात समाप्त कर समजू की ओर देखा तो उसका सुन्दर-सुडौल शरीर चेतनाहीन होकर चिरशांति में सोया हुआ था।

प्रभात की सुखद सुन्दरवेला में श्मशान में आमने-सामने दो चितायें धधक रही थीं। धधकतीधरा के दो पात्र समजू और कोदिया पंचतत्त्व में विलीन हो रहे थे।